मन परदेसी

कर्तार सिंह दुग्गल

मन परदेसी



मन परदेसी जे थीये सब देस पराया

—गुरुनानक

(यदि मन परदेसी हो जाए तो सब देश पराया हो जाता है।)

ज़ेबा के नाम

मन परदेसी



"मेरे सिरताज ! मेरे सिरताज !! मैं क्या करूं ? मैं कहां जाऊं ??"

इस समय कब्रिस्तान में कोई औरत ! बूढ़े मजावर को जैसे अपनी आंखों पर विश्वास न हो रहा हो ! अंधेरा हो रहा था। कब्रिस्तान में तनकर खड़े पेड़ों की परछाइयां कब की रुक गई थीं। जाड़े की शाम का क्या है, आंख झपकी और रात हो जाएगी। घुप अंधेरा। आजकल रातें भी तो अंधेरी हैं। मजावर को याद आया कि यह तो अमावस की रात थी।

'करमदीन ! तुम कहीं ख्वाब तो नहीं देख रहे ?' और फिर मजावर मग़रिब की नमाज़ के लिए अपने पीर के मज़ार पर सजदे में गिर गया। हुजरे में तो दिन चढ़े भी रात ही रहती थी। दूर-दूर तक फैले हुए क़ब्रिस्तान की ओर उसकी पीठ थी।

शहर का रईसी कब्रिस्तान था। सब कब्रें चूने-पत्थर की। यह और बात है कि पिछले कुछ महीनों में जैसे मुर्दामर्दी मची हुई थी, कयामत आनेवाली थी। हर रोज़, हर दूसरे रोज़ कोई-न-कोई जनाज़ा लाया जाता। जब से साम्प्रदायिक दंगे हुए थे, शायद ही कोई दिन खाली जाता हो। जनाज़ों पर जनाज़े। मजावर दुरूद पढ़-पढ़कर थक-हार जाता था।

'लोग कहते हैं, देस आज़ाद हो गया है। नौज यह आज़ादी ! एक-दूसरे को छुरे घोंपने की आज़ादी ! एक-दूसरे को लूटने की आज़ादी ! एक-दूसरे का घर जलाने की आज़ादी ! एक-दूसरे की बहू-बेटियों की इज़्ज़त लूटने की आज़ादी !

'तोबा ! तोबा !! यह कुछ कभी नहीं सुना था। यह कुछ कभी नहीं देखा था। और रेडियो वाले कल भौंक रहे थे—जिस तरह चुपचाप, हंसते-खेलते; जिस तरह बिना हिंसा के, खून का एक कतरे बहाए बगैर, महात्मा गांधी ने देस आजाद करवा लिया है, इसकी मिसाल और कहीं नहीं मिलती। कुफ़ है, महज़ कुफ़। सारी दुनिया को ये लोग धोखा दे सकते हैं, क़ब्रिस्तान के चौकीदार से कोई कैसे छिपाए, दिन-रात जो क़त्ल हो रहे हैं। क़ब्रें खोदनेवालों को फ़ुरसत नहीं। क़ब्रिस्तान में तिल धरने की जगह नहीं बची।

'मैं तो कहता हूं, इन चूने-पत्थर की क़ब्रों पर 'कराह' फेर देना चाहिए ताकि औरों के लिए जगह बन सके। पैग़म्बर ने खुद कहा था कि क़ब्र कच्ची होनी चाहिए। आठ-दस बरस में फिर एकसार हो जाए। नाम-निशान बाक़ी न रहे। अगर पहले नहीं तो अब उन्हें करना होगा। अगर शहर में यूंही छुरेबाज़ी होती रही—हिन्दू मुसलमानों को काटते रहे, मुसलमान हिन्दुओं को छुरे घोंपते रहे तो फिर आज़ाद हिन्दुस्तान और आज़ाद पाकिस्तान, आज़ाद क़ब्रिस्तान बन जाएंगे।

'यह अंधेर कभी नहीं सुना था, कभी नहीं देखा था कि पड़ोसी, पड़ोसियों को काटने-मारने लगे। पहले जनाज़ा लाया जाता था, आधे उसमें मुसलमान होते थे, आधे हिन्दू होते थे। आजकल क्या मजाल कि कोई चोटी वाला नज़र आ जाए ! लाख लानत। इसीको तो कहते हैं क़यामत ! क़यामत कोई और थोड़े ही होती है ! जब भाई अपने भाई की परवाह नहीं करेगा—पड़ोसी भाई ही तो होते हैं—तब क़यामत आ जाएगी। यही मेरे मुरशद ने कहा था। नीली कमली वाले मेरे पीर-दस्तगीर ने ! सदके जाऊं उसके ! मेरे मौला ने हिन्दू-मुसलमान में कभी फ़र्क़ नहीं किया था। हर किसीको एक नज़र से देखता ! तभी तो उसके मज़ार पर हिन्दू शीरनियां चढ़ाने आते थे। सिख सजदे करते थे। अब कोई इधर नहीं फटकता, जब से पाकिस्तान का हल्ला मचा है। बनता रहे पाकिस्तान, पाकिस्तानियों का ! अपना घर, अपना देस भी कोई छोड़ सकता है ! कोई घर भी छोड़ जाए, अपना क़ब्रिस्तान कैसे छूट सकता है ?'

मजावर, नमाज़ पढ़ते हुए, सारा वक़्त कुछ इस तरह सोचता रहा,

सोचता रहा। इन्हीं विचारों में डूबा हुआ था कि मगरिब की नमाज़ ख़त्म हो गई। 'लाख लानत ! लाख लानत !!' अपने-आपको लानत भेजता हुआ मजावर, हुजरे में से बाहर निकल आया। यह भी कोई नमाज़ हुई ! ध्यान कहीं-का-कहीं और अल्लाह के हुजरे में उठक-बैठक कर ली।

'यही तो बाबा नानक ने कहा था—बाबा नानक शाह फ़कीर; हिन्दू का गुरु, मुसलमान का पीर।—यही तो बाबा नानक ने सुलतानपुर के मौलवी से कहा था। मन उसका बछेरी में था और मस्जिद में नमाज़ पढ़ रहा था। बाबा नानक ने कहा—मैं तुम्हारे साथ क्या नमाज़ पढ़ता ? नवाब कहने लगा—तो फिर मेरे साथ नमाज़ पढ़ लेते। बाबा नानक ने उसका मुंह भी बंद कर दिया—तुम तो काबुल में घोड़े ख़रीद रहे थे।

'करमदीन ! तेरा भी यही हाल है ! तेरे सजदे भी झूठे ! बस, दिखावा ! बस, ख़ानापुरी ! सजदा हो तो उस बीबी की तरह, जैसे गिरी हुई है, क़ब्र के ऊपर ! बाहें फैलाकर, जैसे सारी-की-सारी क़ब्र को अपने बाज़ुओं में भर लिया हो। सिर से पांव तक सफ़ेद चादर में लिपटी हुई। यह तो कोई शेख़ों में से लगती है ! शेख़ों की ही तो उधर क़ब्रें हैं—सारी-की-सारी चूने-पत्थर की। हर एक पर संगमरमर के ग़ुम्बदे !

'हैं ! यह तो रो रही है। यह तो कोई बड़ी दुखियारी है। फ़रियाद कर रही है। विलाप कर रही है। हिचकियां भर रही है। बार-बार अपना माथा क़ब्र पर पटकती है। इसका घरवाला होगा ! उसको पुकार रही है—मेरे सिरताज ! मेरे सिरताज !! मैं क्या करूं ? मैं कहां जाऊं ?'

अंधेरा होने लगा था। इधर-उधर वीरान क़ब्रिस्तान को देखकर, औरत जैसे घबरा-सी गई हो। आजकल कोई दिन हैं, अकेले बाहर निकलने के ? और फिर इस वक़्त ? सफ़ेद चादर में लिपटी बेगम ने सोचा कि वह सामने हुजरे में से मजावर को अपने साथ ले लेगी। वह उसे घर तक पहुंचा आएगा। आजकल बेचारी किसी औरत का अकेले बाहर निकलने का ज़माना नहीं है।

और फिर वह सोचने लगी, इससे तो चाहे उसे कोई मार ही डाले। इससे तो चाहे कोई हिन्दू 'हर-हर महादेव' कहकर उसपर तलवार का वार करे, और वह झुलस जाए। इससे तो चाहे कोई सिख अपनी कृपाण से

उसका झटका कर जाए। अब जीने को क्या रखा है?

वह सोचती, अपने शौहर की क़ब्र पर फ़रियाद करके, आंसू बहाकर, शायद उसका जी हल्का हो जाएगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ था। उसके कलेजे में वैसी-की-वैसी आग धधक रही थी। वैसे-के-वैसे जैसे कोई उसका कलेजे नोच रहा हो। लहू-लुहान हुई पड़ी थी। उसे यूं लगता, जैसे पूरे-का-पूरा उसका कोई अंग किसीने कैंची से कतर लिया हो। जैसे किसी मस्जिद की कोई मीनार गिर जाए। जैसे उसका सारा ताना-बाना उलझ गया हो। आहत-सी औंधी पड़ी थी। मुंह-सिर झुलसा हुआ। वह तो अब किसी-के सामने खड़ी तक नहीं हो सकती थी। वह तो अब किसीको मुंह दिखाने लायक नहीं थी।

हुजरे के पास वह पहुंची, तो मजावर के पांव तले से जैसे जमीन निकल गई हो। यह तो बेगम मुजीब थी। बड़े शेख़—अल्लाह उनकी रूह को बख्शे—उनकी बीवी! कई बरस हो गए, जब वह अल्लाह को प्यारे हुए थे। बड़ा ख़ुदापरस्त बंदा था। नमाज-रोजा का पक्का। लोग उसका नाम लेकर राह पाते थे। सारा शहर उसकी इज्जत करता था। क़ौमपरस्त। आजादी का दीवाना। फ़िरंगी का वैरी। तो भी तहसीलदार और थानेदार उसके घर का पानी भरते थे। अंग्रेज कलक्टर उसके बंगले में आता था। उसकी मेम की, एक बार बेगम मुजीब के साथ बैठे हुए, तसवीर छपी थी। मोमिन लोग बेशक कहते—मुसलमान पर्दादार औरत को किसी फ़िरंगन के साथ यूं बैठकर तसवीर नहीं छपवानी चाहिए थी। लेकिन बेगम मुजीब तो अपने शौहर के साथ दिल्ली, कलकत्ता, लाहौर और पेशावर तक हो आई थी। इतना बड़ा लीडर था उसका घरवाला। कई लोग तो यह भी कहते थे कि गोरे उससे डरते थे। इतना माना हुआ वकील था। जिस मुक़दमे को हाथ में लेता, उसकी कभी हार न होती। बंगला कितना बड़ा बनवाया था। कितने एकड़ जमीन घेर रखी थी। आगे-पीछे मजिस्ट्रेटों और पुलिस अफ़सरों की कोठियां थीं।

जैसे रो-रोकर बेगम मुजीब का गला बैठ गया हो। उसके गले में से आवाज नहीं निकल रही थी। एक बार उसने कोशिश की, दूसरी बार कोशिश की। और फिर मजावर आप-ही-आप बोल उठा,

"बिसमिल्ला ! बिसमिल्ला !! बेगम साहिबा हैं ! अपने शेख साहब के घर से ! मैं आपके साथ चलता हूं । आजकल अकेले बाहर निकलने के कौन-से दिन हैं ?"

और फिर करमदीन अपनी टूटी हुई जूती पांव में अटकाकर बेगम मुजीब के साथ हो लिया । चलने से पहले, उसने बरामदे के कोने में रखे डंडे को उठा लिया । यह डंडा उसके पीर मुरशद का था । करमदीन को जब भी हुजरे से बाहर जाना होता, यह डंडा जरूर अपने हाथ में ले लेता । उसके मुरशद का डंडा उसके हाथ में हो तो क्या मजाल कोई उसकी ओर देख भी जाए—चाहे कोई हिन्दू हो, चाहे कोई सिख हो, चाहे कोई और ।

"बुरा वक़्त आ गया है ।" बेगम मुजीब के साथ चलते हुए मुजावर आप-ही-आप बोल रहा था, "बुरा वक्त आ गया है । इस दरगाह पर हिन्दू चादरें चढ़ाया करते थे । सिख सलाम करने आया करते थे । सबके मन की मुरादें पूरी होती थीं । जो कोई भी आता, कभी खाली हाथ नहीं लौटता था । मुसलमानों से ज्यादा तो हिन्दू, सिख इस मज़ार पर आते थे । अब कितने महीने हो गए हैं । कभी कोई भूलकर नहीं आया । आज-कल पता नहीं कैसे उनके काम चल जाते हैं ! कैसे टूटी गिरहें जुड़ती हैं ! कैसे मन की मुरादें पूरी हो जाती हैं !

" जिन दिनों, उधर पंजाब में अकालियों की पकड़-धकड़ हो रही थी, मैंने आज तक किसीको बात नहीं बताई । कई बरस हो गए हैं—दो सिख भाई मेरे इस हुजरे में आ छुपे थे । बाल खोलकर उन्होंने पीछे गिरा लिए । दोनों वक़्त भांग घोटकर खुद भी नशा करते, मुझे भी नशा कराते । मैंने उन्हें नमाज पढ़ना सिखा दिया था । रमजान के दिन थे, सुबह सहरी करते, शाम को मेरे साथ रोजा खोलते । छह, आठ हफ्ते यहां पड़े रहे । किसी-को मैंने पता नहीं लगने दिया । कई बार पुलिस 'सासन-सध' 'सासन-सध' करती आई । पूछताछ करके लौट गई । मैं हर किसीसे कहता कि सरहद वाले पीर की दरगाह के मजावर हैं । सुनकर चुप हो जाते । बड़े खुशमिजाज सरदार थे । कुरबानी के पुतले । जान जैसे हथेली पर रखी हो । अपने देश के लिए कोई कुरबानी कर सकते थे । जब मुंह खोलते, यही—

कहते, फ़िरंगी को यहां से खदेड़ना है, यही हमें लड़ाता है, यही हिन्दू-मुसलमान में फ़साद कराता है। सारे हिन्दुस्तानी भाई-भाई हैं…"

मजावर यूं बोल रहा था कि बेगम मुजीब ठोकर खाकर एक ओर औंधी जा गिरी।

२

बेगम मुजीब की जवान-जहान, कालेज में पढ़ रही, परियों जैसी खूबसूरत लड़की सीमा ने किसी सिख लड़के से ब्याह कर लिया था। बेगम मुजीब बेहाल थी। जिस समय उसे तार मिला, उसकी आंखों में से जैसे आंसुओं की धारा फूट निकली हो। मछली की तरह वह तड़प रही थी। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था, क्या करे, क्या न करे। बेचारी बेसहारा विधवा!

कई बरस हुए, उसका शौहर चल बसा था। ऊंची हस्ती। सारे देश में उसका नाम था, इज्ज़त थी। बेगम मुजीब ने रत्ती भर परवाह नहीं की। भला-चंगा था। शाम को उसे दिल का दौरा पड़ा, रात को सिधार गया। बेगम मुजीब ने अपने मन को समझा लिया था—खुदाया! तेरे बच्चे सलामत रहें, अल्लाह का दिया बहुत कुछ है। एक बेटा, दो बेटियां! भरा-पूरा परिवार—सुघड़ और सुशील। तुझे अल्लाह ने क्या नहीं दिया! बंदे को उसका शुक्र अदा करना चाहिए, उसकी रज़ा में रहना चाहिए।

और बेगम मुजीब ने, रब को जो मंज़ूर था, सिर-आंखों पर ले लिया। तीन बच्चों की मां, उसकी जवानी चाहे ढल चुकी थी, लेकिन सिर का बाल एक भी सफ़ेद नहीं हुआ था। अधेड़ उम्र की कहकशां, उसके चेहरे पर एक बेपनाह हुस्न था।

लेकिन अब तो एक दिन में वह निढाल हो गई थी; जैसे उसकी सारी शक्ति जाती रही हो। सीमा का तार देखकर, जैसे उसके कलेजे में किसी ने गोली दाग दी हो। वह सामने दीवान पर औंधी जा गिरी। यह तो

अल्लाह का शुक्र था कि उसकी छोटी बेटी अभी घर में थी, पढ़ने नहीं गई थी। उसने अपनी अम्मी को संभाल लिया। सामने कोठी से, डाक्टर गोपाल को बुलवाकर टीका लगवाया। एक टीका, फिर दूसरा टीका।

डाक्टर गोपाल को बाहर गेट तक पहुंचाकर लौटते हुए, ज़ेबा अपने-आपमें कहने लगी—'शीमा आपा को अगर इश्क करनी ही थी तो किसी हिन्दू को चुन लेती। डाक्टर गोपाल कितना अच्छा आदमी है।'

फिर उसने सोचा—'प्यार सिख से हो और कोई हिन्दू के साथ कैसे भाग जाए ?' और ज़ेबा के मुंह का स्वाद कड़वा-कड़वा हो गया।

'लेकिन हर बात के लिए कोई वक्त होता है। आजकल भला कोई ज़माना है, कोई मुसलमान लड़की किसी ग़ैर-मुस्लिम से शादी कर ले ? और फिर सिख के साथ ? तोबा ! तोबा ! !' ज़ेबा चाहे स्कूल में पढ़ती थी, लेकिन उसकी सोच उम्र से कहीं आगे थी।

यूं सोचते-सोचते वह कोठी में लौट आई। उसने देखा, उसकी अम्मी की जैसे आंख लग गई हो। आंखें मीचे, वह पड़ी हुई थीं।

आंख कैसे लगती ? बेगम मुजीब ने तो जानबूझकर पलकें मूंद ली थीं। उसकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी कि अपनी छोटी बेटी की ओर देख सके। जिस लड़की की बड़ी बहन ने यूं मुंह काला करवाया था, अब छोटी को कौन पूछेगा ? उसके साथ कौन ब्याह करेगा ? इस्लाम को छोड़कर किसीका किसी सिख के पीछे चल देना, उसे विश्वास नहीं हो रहा था। और फिर आजकल, जब सिखों ने पूर्वी पंजाब में मुसलमानों के गांव-के-गांव लूट लिए थे। गांव-के-गांव तबाह कर दिए थे। हज़ारों को मौत के घाट उतार दिया था। हज़ारों की इस्मत लूटी थी। इधर से जा रहे मुहाजरों की ट्रेनों पर टूट-टूट पड़ते थे। और सरहद के पार, उस तरफ़ बस लहू से लथपथ खाली गाड़ियां पहुंचती थीं। मास्टर तारा-सिंह ने भरे लाहौर शहर में तलवार नंगी करके मुसलमानों को ललकारा था। बेगम मुजीब ने सुन रखा था कि खूंखार सिख हथियार लिए हुए से पूर्वी पंजाब में फिर रहे थे। कहीं किसी मुसलमान की भनक पड़ जाए, तो 'मानस-गंध, मानस-गंध' कहते टूट पड़ते थे। पंजाब ही क्यों, उन्होंने तो दिल्ली में भी अपना नंगा-नाच शुरू कर दिया था।

आजकल किसी मुसलमान लड़की का, किसी सिख के साथ अपनी रज़ामंदी से व्याह कर लेना एक अनहोनी वात थी। कुफ़ था। कुफ़ तो हमेशा था, लेकिन आजकल तो यह अल्लाह का क़हर नाज़िल कराने वाली बात थी।

और फिर बेगम मुजीब मन-ही-मन पछताने लगी। उसे अपने पाकिस्तानी रिश्तेदारों का कहना मान लेना चाहिए था। बंटवारे से कितने दिन पहले उसका पाकिस्तानी देवर बार-बार उसे संदेश भेजता रहा। उसकी ननद मिन्नतें करती रही, बंटवारे से कुछ दिन पहले आप उसे लेने के लिए आई, 'कोई अपना घर भी छोड़ता है ?' हमेशा बेगम मुजीब यही कहती रही। उसका सबसे बड़ा बेटा लंदन में डाक्टरी पढ़ रहा था। वह पाकिस्तानी बनने के लिए तैयार नहीं था।

बेगम मुजीब का देवर, लाहौर में इंजीनियर था। उसकी इच्छा थी कि अगर हमेशा के लिए नहीं, तो दंगे-फ़सादों के चंद-दिन बेगम मुजीब उनके यहां चली आए। लेकिन वह नहीं मानी। बार-बार यही कहती, 'अगर लाहौर ही बंटवारा-कमीशन ने भारत को दे दिया तो फिर क्या होगा ?'

अब बंटवारा-कमीशन का फ़ैसला भी हो चुका था। लाहौर पाकिस्तान के हिस्से में आ गया था। पाकिस्तान के चप्पे-चप्पे में से हिन्दू-सिखों को बटोरकर हिन्दुस्तान खदेड़ दिया गया था या फिर उन्हें ख़त्म कर दिया गया था। पाकिस्तान सचमुच पाक होगा। सब अहले-सुन्नत। कोई दूसरा नहीं। बेशक कुछ ईसाई थे, लेकिन ईसाई तो अहले-किताब हैं। उनकी और बात है। वह तो फ़िरंगी का मज़हब है। फ़िरंगी ने ही पाकिस्तान बनाया था वरना हिन्दू तो सारे-के-सारे हिन्दुस्तान को हथियाना चाहता था। लोग कहते, 'गांधी बड़ा काइयां है, कट्टर हिन्दू। मुसलमान क़ौम, जिसने सैकड़ों बरस हिन्दुस्तान पर राज किया था, फिर उसे हिन्दुओं का गुलाम बनाना चाहता था। कोई बात भी हुई !'

सीमा अगर दिल्ली में होती तो कोई उसे समझाने-बुझाने भी जाता। इन दिनों कोई अमृतसर कैसे जा सकता है ? पंजाब तो आजकल जैसे क़त्लगाह बना हुआ हो। पश्चिमी पंजाब में हिन्दू-सिखों का बीज-नाश

किया जा रहा था, पूर्वी पंजाब में मुसलमानों के खून की होली खेली जा रही थी। अमृतसर कोई नहीं जा सकता था। ट्रेनों पर हमले हो रहे थे। चुन-चुनकर मुसलमानों को कत्ल किया जा रहा था। पता नहीं सीमा अकेली कैसे वहां पहुंची थी? इससे तो अच्छा होता, कि उसे रास्ते में ही कोई पकड़कर खत्म कर देता। उन्हें यूं जलील तो न होना पड़ता। हजारों मुसलमान लड़कियां शहीदी का जाम पी गई थीं। यह भी उनमें शामिल हो जाती।

'अब मैं इस देस में नहीं रहूंगी।' बेगम मुजीब सोच रही थी—'बेशक जायदाद है, भट्ठी में जाए। बेशक रिश्तेदार हैं, जहन्नुम में जाए। उधर पाकिस्तान में भी तो रिश्तेदार हैं। और बनाए जा सकते हैं। एक बेटी तो भाग गई। पता नहीं, दूसरी क्या कर बैठे? इस्लाम जैसा मजहब बार-बार नहीं मिलता। हाथों में आई जन्नत कोई कैसे गवा दे? जब मेरी ननद इस्मत लाहौर से मुझे लेने आई थी, तो मुझे उसके साथ चले जाना चाहिए था। पर जाती कैसे? दोनों बेटियां, इधर पढ़ रही थी। सीमा कालेज में थी, शैबा स्कूल में!

'कैसे जाती? कैसे जाती?' इतना बड़ा बंगला है यहां। इतनी सारी दुकानें किराये पर चढ़ी हैं। बहनें हैं, भाई है। सारा शहर मुझे जानता है। हर गली में कुदसिया बेगम को याद किया जाता है। सारा मुहल्ला मुझ-पर जान छिड़कता है। सुबह-शाम 'कुदसिया बीबी, कुदसिया बीबी' कहते लोगों की जबान नहीं थकती। यहां हमारा कब्रिस्तान है, जिसमें मेरा शौहर दफन है, ससुर दफन है, सास दफन है। पिछली बार चुनाव में मैंने कांग्रेस को वोट दिया था। खुद, महात्मा गांधी के नाम पर्ची डाली, दूसरों से डलवाई। इस उम्र में आकर खुद हिन्दी पढ़ना शुरू किया, अपने बच्चों को हमेशा हिन्दी पढ़ने के लिए कहा। पड़ोसी के साथ रहना हो तो पड़ोसी की जबान सीखने में क्या हर्ज है?

'लेकिन अब मैं इस देस में नहीं रहूंगी। हिन्दी! हिन्दू!! हिन्दुस्तान!!'

३

'मेरी प्यारी अम्मी !' कुछ दिनों के वाद सीमा की अपनी मां के नाम चिट्ठी आई। 'आपको मेरा तार मिला होगा। मैं सोच सकती हूं कि आपको कैसा सदमा पहुंचा होगा। यह जानकर कि मैंने इन्द्रमोहन से व्याह कर लिया है, हमारे घर में कुहराम मच गया होगा। लाख-लाख आप लोग मुझे लानतें सुना रहे होंगे। मुझे इस वात का एहसास है, कि मैं आपके लिए मर गई हूं। अव मेरी उस घर में कोई जगह नहीं है। आप लोग कभी मेरा मुंह देखने के लिए तैयार नहीं होंगे। मेरी वहन, मेरे भाई मुझसे छूट गए हैं। मैं उनसे वहुत दूर निकल आई हूं। जो फ़ैसला मैंने किया है, उसके लिए मैं यह सारी क़ीमत चुकाने के लिए तैयार हूं।

'मुझे यह भी डर है कि आप मेरी यह चिट्ठी पूरी पढ़े विना, शायद चूल्हे में फेंक दें। लेकिन मेरी एक ही तमन्ना है, एक वेटी की अपनी मां से यह एक आख़िरी चाहत है कि आप इस चिट्ठी को जरूर पढ़ें। इसके वाद, जो फ़ैसला आप मुनासिव समझें, कर लें। मुझे कोई शिकायत नहीं होगी। कोई गिला नहीं होगा।

'इन्द्रमोहन को आप जानती हैं, एक वार हमारे यहां आया था। एक रात हमारे यहां रहा भी था। मेरे साथ पढ़ता था। हमारी दोस्ती की चारों ओर चर्चा थी। हमारे कालेज में हर कोई यही कहता था कि हम किसी दिन भी व्याह करवा लेंगे। चाहे इसमें कोई सच्चाई नहीं थी। लोगों का कोई मुंह थोड़े ही पकड़ सकता है।

'इन्द्र के साथ मुझे हमदर्दी थी। उनका घर पाकिस्तान में लूटा गया था। उनके गांव को जलाकर ख़ाक में मिला दिया गया था। उसके वूढ़े मां-वाप को क़त्ल कर दिया गया था। उसकी जवान-जहान वहन को फ़सादी अगवा करके ले गए हैं। अभी तक उसकी कोई ख़वर नहीं मिली। चाहे इन्द्र ने मुझसे कभी कहा नहीं, लेकिन मुझे यूं लगता, जैसे इन्द्र मुझमें अपनी वहन को देखता था। अम्मी ! शायद आपको याद हो, एक वार मैंने आपको वताया था, इन्द्र की वहन का नाम सीमा है। शायद मेरा नाम सीमा होने की वजह से, इन्द्र का मुझसे इतना प्यार था।

'हमने आम हिन्दुस्तानी लड़के-लड़कियों की तरह एक-दूसरे को बहन-भाई नहीं बनाया था। हम एक-दूसरे के दोस्त थे। हर शाम हमारी एकसाथ गुजरती थी। मुझे यह सब कुछ कभी अजीब नहीं लगा। आखिर मैं शेख मुजीब की बेटी हू। मेरे अब्बा हुजूर की नजरों में हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई सब बराबर थे।

'आप यह भूली नहीं होंगी कि अब्बा पहली बार नाभा मे क़ैद हुए थे। सिखो का चलाया हुआ कोई आदोलन था। कई महीने उन्हें फिरगी की जेल में काटने पड़े—अपने पजाबी हम-वतनों के लिए, जिन्होंने जलियानवाला बाग मे फिरगी की गोलिया सीनो पर झेली थी। हिन्दू-मुसलमान-सिखों ने मिलकर अग्रेजो को ललकारा था। सबका लहू मिलकर अमृतसर की नालियो मे बहा था।

'मेरे अब्बा रोज़ा-नमाज के पक्के थे। लेकिन सारी उम्र उन्होंने काग्रेस का साथ दिया। सारी उम्र वे देश की आजादी के लिए लड़ते रहे। हिन्दू-मुसलमान एकता के लिए जान देते रहे।

'मैं यह कभी नहीं भूली कि मैं उस अब्बा की बेटी हू। बेशक काग्रेस के साथ उनका मतभेद हो जाता। कई बार लोगों ने उन्हें फिरकापरस्त भी कहा। लेकिन उन्होंने महात्मा गाधी का साथ कभी नही छोड़ा। बरतन-से-बरतन टकराता ही है। गलतफहमिया हो जाती हैं। लेकिन मरते दम तक वे कौमपरस्त रहे। इकलाब जिन्दाबाद का नारा उनके होंठो पर था जब वे अल्लाह को प्यारे हुए।

'अम्मी! मुझे अब्बा का जनाज़ा कभी नही भूलेगा। कैसे हिन्दू उनकी बेवक्त मौत पर रो रहे थे! कैसे सिख आगे बढ़-बढ़कर उनकी मैयत को कधा दे रहे थे! लाख मुसलमान पड़ोसी बुदबुदाते रहे, अब्बा हुज़ूर को मेरठ के शहरियों ने तिरगे मे लपेटकर दफनाया था। हिन्दू, मुसलमान और सिख—सभीको यही जिद थी।

'अम्मी! मैं उस अब्बा की बेटी हू, और अब मैं आपको बताने जा रही हू कि मैंने कैसा शौहर चुना है। कैसा जीवनसाथी मैंने ढूढ़ा है, जिसके साथ मैं ज़िदगी गुजारने जा रही हू। मैं किस बाप की बेटी हू और किस शौहर की बीवी हू!

'आपको शायद याद होगा, उस दिन इन्द्र हमारे यहां मेरठ आया था। रात को हमारे यहां रुका भी था। अगले दिन शाम की गाड़ी से हम दिल्ली लौट रहे थे। हम लोग मेरठ से ट्रेन में बैठे, पहले दर्जे के हमारे पास टिकट थे। गाड़ी चलने से पहले चार-छः नौजवान हमारे डिब्बे में घुस आए। कालेज के लड़के मालूम होते थे। देखने में शरीफ़, अंग्रेज़ी बोल रहे थे। आते ही बातें करने लगे।

'गाड़ी चली ही थी कि इन्द्र टायलेट में गए। गाड़ी प्लेट-फ़ार्म से बाहर निकल आई थी। यार्ड से भी बाहर। काफ़ी रफ़्तार पकड़ चुकी थी। और फिर मेरी ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की सांस नीचे रह गई। मैंने देखा, दो लड़के टायलेट के सामने जाकर खड़े हो गए। उन्होंने टायलेट को बाहर से बंद कर दिया। और बाक़ी मुझपर टूट पड़े। 'पाकिस्तान ज़िंदाबाद' के नारे लगाते हुए मुझसे उन्होंने बेहूदगी करनी शुरू कर दी। कोई मेरे गाल नोचता, कोई मेरी चोटियों को। उन्होंने मेरे कपड़े उतार दिए। जो नहीं उतरे, उन्हें फाड़ दिया। और फिर वे अपनी मनमर्ज़ी करने लगे। जैसे हलकाए हुए कुत्ते हों।

'मैं बार-बार उनसे कहती रही कि मैं मुसलमान हूं। मैं बार-बार अब्बा का नाम लेकर उन्हें बताती रही। लेकिन उन्होंने एक नहीं सुनी। यही कहते रहे, अगर तुमने शोर मचाया, कोई गड़बड़ की तो तेरे उस सिख को भी जान से मार डालेंगे। तुझे भी ख़त्म कर देंगे। आपकी बेटी मेरठ से लेकर दिल्ली तक पाकिस्तान के नाम पर मुसलमान गुंडों की बर्बरता सहती रही। दिल्ली के पास, जब गाड़ी धीमी हुई तो वे लोग छलांगें लगाकर गाड़ी से उतर गए। जाते हुए मेरे गले में पड़ा हुआ लाकेट भी उतारकर ले गए।

'जो कपड़े बचे थे, मैंने अपने-आपको उनसे ढका। इतने में इन्द्र भी टायलेट से बाहर निकल आया था। हम एक-दूसरे के मुंह की तरफ़ नहीं देख पा रहे थे। दिल्ली से पहले गाड़ी कितनी ही देर सीटियां बजाती रही, चीख़ती-चिल्लाती रही। घुप अंधेरी रात थी। हमारी समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि क्या करें, क्या न करें। यही डर था कि गुंडे कहीं फिर डिब्बे में न आ घुसें, हमने अंदर से दोनों दरवाज़ों को बंद कर

लिया।

'कहानी यहीं खत्म नहीं होती। उस रात दिल्ली पहुंचकर हम अपने-अपने हॉस्टल की जगह, होटल में रुके। इन्द्र बार-बार अपने-आपको कोसने लगता। आखिर वह मुझे अकेला छोड़कर टायलेट में क्यों गया? कभी कहता—क्योंकि मैं सिख था, इसलिए इसकी सजा उसकी मुसलमान दोस्त को भुगतनी पड़ी। मैं जान पर खेल जाता—अगर मैं बाहर होता, और वे तुम्हारी तरफ बुरी नजर से देखते—यूं लगता है, टायलेट में खतरे की ज़ंजीर काम नहीं कर रही थी। इन्द्र बार-बार उसे खींचता रहा।

'अगली सुबह हम एक लेडी डाक्टर के यहां गए। इन्द्र की जिद थी। मुझे तो इसकी कोई जरूरत महसूस नहीं हो रही थी। लेडी डाक्टर ने हमारी कहानी सुनी और बड़े ग़ौर से मुझे देखा। बार-बार यही कहती रही, खतरे की कोई बात नहीं।

'खतरे की बात क्यों नहीं थी? कुछ हफ्ते बीते तो मुझे महसूस हुआ कि कोई गड़बड़ जरूर है। मेरी तबीयत खराब रहने लगी। हर वक्त मेरा जी मतलाता रहता। और फिर मेरा डर ठीक निकला। किसके आगे मैं अपना दुःख रोती? उन दिनों आपके यहां इस्मत फूफी आई हुई थी। सारा दिन पाकिस्तान के गुण गाती रहती। आपको अपने साथ लाहौर ले जाने के लिए मना रही थी।

'बस, इन्द्र ही मेरा हमराज था। एक के बाद एक, हमने कई जगह कोशिश की। कोई लेडी डाक्टर हमारी मदद करने को तैयार नहीं हुई। हम लोग आगरा भी गए। शायद छोटी जगह, कोई डाक्टर मान जाए। इन्द्र मुझे इस बला से छुटकारा दिलवाने के लिए कुछ भी खर्च करने को तैयार था। लेकिन कोई कामयाबी नहीं हुई। बस, एक ही चिन्ता उसे खाए जा रही थी, कहीं मेरी सेहत को कुछ हो न जाए।

'दिन बीतते गए। हफ्ते बीतते गए। फिर एक दिन मैं इन्द्र के मुंह की तरफ देखती रह गई; वह मुझे परेशान देखकर कहने लगा—मैं इस बच्चे की ज़िम्मेदारी लेने के लिए तैयार हूं।—मैंने सुना और मेरे हाथ-पांव ठंडे हो गए। इन्द्र की यही जिद थी—हमें जो कुछ करना था, कर चुके।

अब और दर-दर की ठोकर हम नहीं खाएंगे। अब और मैं तुम्हें डाक्टरों की नज़रों में ज़लील नहीं होने दूंगा—एक कुंवारी लड़की, जिसके पेट में बच्चा था! हर डाक्टर फ़ीस लेती। मेरा मुआयना करती और जब हम उसे बताते कि मैं कुंवारी हूं, यूं मेरी तरफ देखती जैसे मैंने कोई पाप किया हो। कूड़े का ढेर। किसीको मेरी आप-बीती पर यक़ीन न आता। मेरी कहानी सुनकर, इन्द्र को कोई मुंह लगाने के लिए तैयार न होता। हर कोई यही सोचता, कुसूर उसीका था। एक दिन तो एक डाक्टर ने हमें धमकी दी—अगर आप एक मिनट और मेरे क्लिनिक में नज़र आए तो मैं आपको पुलिस के हवाले कर दूंगी।

'उस दिन इन्द्र ने पक्का फ़ैसला कर लिया कि वह मेरे साथ ब्याह कर लेगा। चाहे कोई भी क़ीमत देनी पड़े, वह मुझे और ज़लील नहीं होने देगा।

'अम्मीजान! आज मैं उस इन्द्र की बीवी हूं।

'मुझे अभी आपको और बहुत कुछ बताना है। डाक का वक़्त हो गया है, इसलिए यह चिट्ठी यहीं ख़त्म करती हूं। आपकी बेटी, सीमा।'

४

बेगम मुजीब अभी चिट्ठी पढ़ ही पाई थी कि शेख़ मुजीब का बड़ा भाई शेख़ शब्बीर दनदनाता हुआ उसके कमरे में आ घुसा। लाल-पीला हो रहा था। उसे अभी-अभी ख़बर मिली थी। बेगम मुजीब ने चिट्ठी को अपने तकिया के नीचे छिपा लिया। उसका जेठ निहायत दकियानूसी विचारों का जागीरदार था, कट्टर फ़िरकापरस्त।

"मैं न कहता था कि लड़कियों को पढ़ाने की कोई ज़रूरत नहीं। इन्हें किसीके पल्ले बांधकर अपनी जान छुड़ाओ। अब तुमने देख लिया कि आजकल की औलाद क्या गुल खिलाती है? एक तुम्हारा मियां, मुंह-ज़ोर था, सारी उम्र अपने-आपको धोखा देता रहा। हिन्दू का पिट्ठू बना

रहा। हिन्दू-मुस्लिम एकता ! देख लिया न हिन्दू-सिखों की दोस्ती का नतीजा ? इस लड़की के तौर-तरीके तो मुझे कभी एक आख नही भाए। पहले, इसे दिल्ली पढ़ने के लिए भेजा ही क्यो गया ? क्या यहां अपने शहर में कोई कालेज नही था ? और लोगों की बेटिया क्या तालीम नही पाती ? कोई बात हुई कि मुझे जो मजमून पढना है, वह यहां पढाया नही जाता। देख लिया तुमने कि वह कौन-सी पढाई करने गई थी ? कौन-सा मजमून पढने गई थी ?

"मेरी बेटी होती तो मैं गोली से उडा देता। अब भी मैं कौन-सा उसे माफ़ करूगा ? अपने खानदान की आबरू, मैं जान पर खेलकर भी, उसके उस 'सिख' से बदला लूगा। अगर उसकी कोई बहन है तो उसे निकालकर लाऊगा। अगर उसकी कोई मां है तो उसे अगवा करवाऊगा। चाहे मुझे हजारो न लुटाने पड़े। हमारे शहर के गुडे दूर बंबई और कलकत्ता तक वार करते हैं। ढेरों रुपये का चदा मैं उन्हें देता हू। आज एक बरस से ऊपर हो गया है। कितनी हिन्दू और सिख लडकियो की उन्होंने इज्जत लूटी है। बदजात लडकिया चू तक नही करती। मुह से शिकायत तक नही करती। हिन्दू धर्म भी कोई धर्म है, जैसे रद्दी की टोकरी हो! सब तरह का कूडा इसमें समा जाता है।

"मैं कहता हू कि पहला कुसूर तेरे शौहर का है। 'महात्मा गाधी ! महात्मा गाधी' रटता रहता था। अब गाधी को बुलाकर लाओ कि छुडाए तुम्हारी बेटी को किसी सिख दरिन्दे के चगुल से ! बडा 'हिन्दू-मुस्लिम एकता' की डीगें हाकता था। जब जवाहरलाल की बहन, विजय लक्ष्मी डाक्टर महमूद से ब्याह करना चाहती थी, उसने आप बीच में पडकर लडकी को रोक दिया, तब कहा गई थी उसकी हिन्दू-मुस्लिम एकता ? मुसलमान लडकी हिन्दू से ब्याह कर सकती है, हिन्दू लडकी मुसलमान से नही ब्याही जा सकती—आखिर क्यों ?"

इतने में बेगम मुजीब की जेठानी आ गई। बाहर-आगन में ही माथा पीट रही थी। कमरे में घुसते ही उसने दहाडना शुरू कर दिया। बाल नोच रही थी और छाती पर घूसे मार रही थी। जैसे घर में किसीकी मौत हो गई हो। बार-बार सीमा को बुरा-भला कह रही थी। उसे इस

तरह रोते-चिल्लाते देखकर, बेगम मुजीब की आंखों में भी आंसू उमड़ आए। उसने भी रोना शुरू कर दिया। यह देखकर उसकी जेठानी, बेगम मुजीब के गले से लिपटकर और ऊंचा रोने लगी। विलाप करने लगी। सारे घर में कुहराम मच गया। नौकर-चाकर इकट्ठे हो गए। ज़ेबा छल-छल आंसू बहाती, एक कोने में आकर खड़ी हो गई।

और फिर पड़ोसियों का जमघट लग गया। दूर-पास के रिश्तेदार इकट्ठा हो गए। घर में जैसे मातम छा गया। बेगम मुजीब की समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि क्या करे और क्या न करे! पहली बार उसने देखा कि उसके घर के दुःख-सुख में उसका कोई हिन्दू पड़ोसी शामिल नहीं हुआ था, जान-पहचान का कोई सिख नहीं आया था। सारे-के-सारे मुसलमान थे। क्या दोस्त-रिश्तेदार और क्या अड़ोसी-पड़ोसी!

बेगम मुजीब के सामने बैठकर अजीब-अजीब कहानियां गढ़ी जा रही थीं। कभी कहीं खुसर-फुसर होती, तो कभी कहीं। और फिर लोग बेगम मुजीब के घर में बैठकर, उसके सामने कुछ इस तरह के ताने-बाने बुनने लगे। सुन-सुनकर उसके पांव तले से ज़मीन निकल जाती।

"यहां, इस घर से लड़की को अगवा किया गया है।"

"हिन्दू और सिख गुंडे आए। घर में औरतें अकेली थीं। छुरा दिखाकर बड़ी बहन को मोटर में बिठाकर ले गए।"

"लड़की खुद भागी है। लड़के के साथ उसकी आशनाई थी। मां मानी नहीं, उसके सिर पर खाक डालकर चली गई।"

"वह तो कब की ताक में थी। घर के सारे गहने साफ़ करके निकली है।"

"और बैठी भी जाकर अमृतसर है, जहां आजकल कोई पहुंच ही न पाए।"

"आजकल अमृतसर की तरफ़ कोई मुसलमान मुंह कर सकता है? किसीको जान नहीं चाहिए!"

और फिर शेख़ मुजीब के बड़े भाई की सलाह से पड़ोसियों, रिश्तेदारों और दोस्तों ने फ़ैसला किया कि थाने में रपट लिखाई जाए—मुसलमान लड़की को हिन्दू-सिख गुंडे अगवा करके ले गए थे। लड़की के साथ घर का

सारा जेवर भी लूटकर ले गए थे। और फिर यह भी फ़ैसला हुआ कि एक प्रतिनिधि-मंडल दिल्ली जाकर रोए-पीटे। क्या पता, कुछ सुनवाई हो जाए! लड़की के अब्बा के कई साथी कांग्रेस सरकार मे ऊंचे पदों पर थे। खुद जवाहरलाल उसे जानते थे।

बिट-बिट, बेगम मुजीब हर किसीके चेहरे की ओर देख रही थी। उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। उसकी आंखों के आगे चक्कर-चक्कर, अंधेरा-अंधेरा-सा छा रहा था। बेगम मुजीब को लगता, जैसे वह किसी गहरे कुएं मे उतरती जा रही हो। उसका दिल बैठता जा रहा था। कुछ देर के बाद उसका सिर एक ओर लुढक गया। वह बेहोश हो गई।

सबके हाथ-पांव फूल गए। कोई उसकी हथेलियां रगडने लगा तो कोई उसके मुंह पर पानी के छींटे मार रहा था। कोई डाक्टर को बुलाने दौड़ा। घर मे अफ़रा-तफरी मच गई। कुछ देर बाद जब बेगम मुजीब ने आंख खोली तो उसने देखा, उसके पलंग के पास कुर्सी पर डाक्टर गोपाल की जगह डाक्टर सलीम बैठा था। सडक पार डाक्टर गोपाल का क्लिनिक था। हमेशा वही उनके यहां इलाज करता था। अभी तो उस दिन इनके घर से होकर गया था। लेकिन अब एक हिन्दू डाक्टर उनके लिए पराया हो गया था। तीन किलोमीटर दूर से डाक्टर सलीम को बुलाया गया था ताकि एक मुसलमान मरीज का एक मुसलमान डाक्टर इलाज करे।

बेगम मुजीब ने इधर-उधर नजर घुमाकर देखा, कालू कहीं दिखाई नहीं दे रहा था। कालू उनका हिन्दू नौकर था। उसकी मां इनके यहां काम किया करती थी। उसका बाप सारी उम्र इनके यहां नौकरी करता रहा। दोनों इनके घर मे ही मरे थे। कालू इनके घर मे बच्चों की तरह पला था। बच्चों के साथ खेलकर बडा हुआ था। शेख साहब ने लाख कोशिश की थी कि चार अक्षर पढ जाए, लेकिन कमबख्त की किस्मत में पढ़ना नहीं लिखा था। और आजकल वह ऊपर का काम करता था, जैसे उसका बाप सारी उम्र करता रहा। कालू, इधर-उधर कहीं दिखाई नहीं दे रहा था। कालू तो बेगम मुजीब के साथ परछाईं की तरह रहता था। क्या मजाल जो पल के लिए आंख से ओझल हो जाए। ख़ास तौर

की दीवारें खड़ी करता रहा हो, एक झटका लगा, और सब-की-सब ढह गई।

फिर बेगम कश्मीर की ख़बरें पढ़ती। पाकिस्तानी कबाइलियों का मुक़ाबला, कश्मीरी मुसलमान अपने हिन्दू और सिख भाइयों के साथ मिलकर कर रहे थे। कंधे-से-कंधा मिला लुटेरों के साथ जूझ रहे थे। उधर महात्मा गांधी नवाखली और बिहार में गांव-गांव फिरकर फ़सादियों को लज्जित कर रहे थे। मुसलमान, अल्पसंख्यकों की हर तरह से सहायता की जा रही थी। उनको फिर से उनके गांवों को बसाया जा रहा था। जिनके घर जला दिए गए थे, सरकार उनके लिए नये घर बनवा रही थी। जो लुटे गए थे, उनको हरजाना दिया जा रहा था। जगह-जगह अमन कमेटियां बन रही थीं। मस्जिदों की मरम्मत हो रही थी। मदरसों की मदद की जा रही थी। मुसलमान बच्चों के वजीफ़े लगाए जा रहे थे।

उस दिन सुबह यू० एन० ओ० में शेख़ अब्दुल्ला ने बयान दिया था—'कश्मीर भारत का अटूट अंग है। कश्मीर के लोगों का भारत में शामिल हो जाने का फ़ैसला आख़िरी है। हम पाकिस्तानी हमलावरों से कश्मीर का चप्पा-चप्पा ख़ाली करवाकर सांस लेंगे।'

अहिंसा के दूत महात्मा गांधी ने कश्मीर की लड़ाई को उचित ठहराया था। यह लड़ाई न्याय के लिए लड़ी जा रही थी। झूठ और फरेब, हिंसा और जुल्म से यह जंग थी। सोच-सोचकर बेगम मुजीब का सिर चक्कर खाने लगता। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था, क्या ठीक है, क्या ठीक नहीं।

टहलते-टहलते बेगम मुजीब नौकरों के क्वार्टर की ओर जा निकली। कालू के कमरे का दरवाजा खुला था। सामने खिड़की भी खुली थी। जाने से पहले कमरे को साफ़ करके गया था। सफ़ाई का दीवाना—हिन्दू। क्या मजाल जो कागज़ की एक कतरन भी कहीं नज़र आ रही हो। कहीं धूल-धब्बा नहीं। बेगम हैरान रह गई। अपने कमरे के एक कोने में कालू के भगवान की मिट्टी की मूर्ति वैसी-की-वैसी पड़ी थी। मूर्ति के पास अगर-बत्ती और दियासलाई भी पड़ी थी। इन्हें अपने साथ लेकर नहीं गया था। फिर बेगम मुजीब को ध्यान आया कि हिन्दुओं में शायद एक जगह पर

स्थापित मूर्ति को उठाया नहीं जाता।

कालू के भगवान की मूर्ति को देखकर बेगम मुजीब एकाएक भावुक हो गई। आप-ही-आप उसके कदम आगे बढ़े, और पता नहीं कब उसने दियासलाई जलाई, और अगरबत्ती को दिखाकर मूर्ति के सामने टिका दिया। बिल्कुल उसी तरह, जैसे कालू किया करता था।

कालू के भगवान की मूर्ति के सामने सुलग रही अगरबत्ती के धुएं में बेगम मुजीब को एक पुराना दृश्य दिखाई देने लगा। इसी कमरे में कालू का जन्म हुआ था। उसके बाप ने नाचते-उछलते हुए यह खबर आकर उन्हें दी थी। और सब घरवाले नये जन्मे बच्चे को देखने आए थे। जैसे जोंक-सी हो। जन्म के समय बड़ा कमज़ोर था। शायद पूरे दिनों का नहीं था। लेकिन शेख़ साहब ने उसकी देखभाल का खास ध्यान दिया और उसे बचा लिया और फिर कैसे वह घर के बच्चों के साथ खेल-खेलकर बड़ा हुआ। सीमा जितना। हमेशा उसे छेड़ा करता—मैं तुमसे पूरे पन्द्रह दिन बड़ा हूं, तुम मुझे भाईजान कहा करो। अपने बच्चों की तरह ही तो बेगम मुजीब ने उसे पाला था। और कैसे वह इस घर पर जान देता था! क्या मजाल कि कोई तिनका भी इधर-उधर हो जाए। क्या मजाल कि कोई नौकर घर का कोई नुकसान करे। खाली कमरे में बत्ती नहीं जल सकती थी। बेकार नल नहीं बह सकता था। जब कोई बाहर निकले, पंखा बन्द करके निकले। फसाद के दिनों में वह कैसे तड़पता था! हिन्दुओं के साथ हिन्दू, और मुसलमानों के साथ मुसलमान। जहां किसीको मुसीबत में देखता, वहीं जा पहुंचता। हमेशा कहता, कालू नाम होने का यही तो फायदा है। हिन्दू समझते हैं कि मैं हिन्दू हूं और मुसलमान समझते हैं कि मैं मुसलमान हूं।

"लेकिन तुम हो कौन?" एक दिन बेगम मुजीब ने उससे पूछा।

"न मैं हिन्दू हूं, न मुसलमान," वह छूटते ही बोला, जैसे रटा-रटाया हुआ जवाब दे रहा हो। "हिन्दू मां-बाप के घर जन्मा। मुसलमान मालिक के टुकड़ों पर पला। मैं न हिन्दू हूं, न मुसलमान, मैं तो बस हूं इक इंसान।"

कालू के कमरे से लौटते हुए बेगम मुजीब को अचानक ध्यान आया कि सीमा ने लिखा था कि वह उसे एक और चिट्ठी लिखेगी। अभी तक

उसकी चिट्ठी नहीं आई थी। आजकल की अफ़रा-तफ़री में डाक का भी क्या एतबार। पता नहीं, कहां गाड़ी रोक ली जाए! पता नहीं, किस गली में डाकिया को छुरा घोंप दिया जाए।

अभी बेगम मुजीब अपने कमरे में पहुंची ही थी कि शेख़ मुजीब का बड़ा भाई उस दिन की तरह दनदनाता हुआ उसके कमरे में आ धमका। "बीबी! तुम्हें चुल्लू-भर पानी में डूब मरना चाहिए," वह चिल्लाया और अपने हाथ में पकड़े हुए उर्दू के एक अख़बार को घुमाकर अपनी भावज की ओर फेंका। बेगम मुजीब अपने जेठ के तमतमा रहे लाल सुर्ख़ चेहरे की ओर देख रही थी। अब और कौन-सी मुसीबत आई थी! उसने न अख़बार उठाने की कोशिश की, न पढ़ने की। कोई फ़िरकापरस्त चीथड़ा था। "इस लड़की ने तो हमारी नाक काट दी। अगर तुझे एक सिख के साथ व्याह करना ही था तो कर लेती। अगर तुझे यह झक मारनी ही थी तो यह झक मार लेती। तुझे मज़हब बदलने की क्या ज़रूरत थी? तुझे सिख बनने की क्या मुसीबत थी? कचहरी में जाकर सिविलमैरेज करवा लेते। कल जब उसका चाव ठंडा पड़ जाता, जब सिखों की करतूतें देख-देखकर उसका मन भर जाता, तो अपने घर लौट आती। कचहरी में अर्ज़ी डालकर, तलाक़ ले लेती। इस लड़की ने तो बेड़ा ही डुबो दिया है।

"पहले सिख बनी। फिर बाक़ायदा आनन्द-कारज करवाया। शेख़ मुजीब अहमद की बेटी की सारी करतूत इस अख़बार में छपी है। कच्चा चिट्ठा। बाप चार बार हज कर चुका था। उमरा तो उसने कई बार किया होगा। और बेटी अपने बाप-दादा के मज़हब को लात मारकर चली गई। हम तो किसीको मुंह दिखाने लायक नहीं रहे। मैं तो इस शहर में और नहीं रह सकता। किस मुंह से मैं मस्जिद में नमाज़ पढ़ने जाया करूंगा? आज जुम्मा है, मैं जमात में खड़ा होकर सजदा नहीं कर सकता। तोबा! तोबा!! यह कैसी ज़हरीली नागिन हमने इस घर में पाली थी! कुछ तो उसे लिहाज़ होता, अपने अब्बा का! कुछ तो उसे ध्यान होता, अपने इतने बड़े ख़ानदान का! कुछ तो वह सोचती कि हमारे आंगन में अभी एक और बैठी है! उस जैसी। जवान-जहान। उसे कौन मुंह लगाएगा? अख़बार में अच्छी हमारी मिट्टी पलीद की गई है। शेख़ मुजीब

हिन्दू-मुस्लिम एकता का हामी था। सारी उम्र महात्मा गांधी का चमचा बना रहा। कांग्रेस का पिट्ठू। और अब उसकी बेटी ने सिख धर्म कबूल करके अपने अब्बा के ख्वाब को पूरा कर दिया है। सिख लड़के से ब्याह कर अपने अब्बा के अरमान पर फूल चढ़ाए हैं! मैं तो रास्ते में वकील से मिलता आया हूं। सरकार ने नया कानून बनाया है। इधर हिन्दुस्तान में भी और उधर पाकिस्तान में भी। फ़साद के दौरान जिस किसीका मजहब बदला गया है, उसे नहीं माना जाएगा। जिस किसीका जबरदस्ती ब्याह हुआ है, उसे मंसूख़ कर दिया जाएगा। सब मुसलमान लड़कियां जो इधर भगाई गई हैं, अपने घरों को लौटा दी जाएंगी। सब हिन्दू और सिख लड़कियां जो उस तरफ अगवा की गई हैं, अपने मां-बाप के पास भेज दी जाएंगी। मैं तो कहता हूं, बस अर्जी-भर देने की देर है। पुलिस की टुकड़ी जाएगी और लड़की को बरामद करके अपने कब्ज़े में कर लेगी। मैं भी शेख शरीफ़ का बेटा नहीं जो चार दिनों में अपनी लड़की को निकालकर तेरे कदमों पर न डाल दूं। वकील तो कहता है, इधर अर्जी देंगे, उधर पुलिस को हुक्म मिल जाएगा। अगर किसीकी मुट्ठी गर्म करने की जरूरत हुई तो वह भी कर दिया जाएगा। मैं खुद पुलिसवालों के साथ अमृतसर जाऊंगा। मुझे डर है कि कहीं वह सिख का बच्चा, लड़की को इधर-उधर न छुपा दे। सुना है कि अगवा की गई लड़कियों को आगे-पीछे कर दिया जाता है। जब पुलिस के छापे की लोग सुनते हैं, तो इस तरह की लड़कियों को बाहर खेतों में छुपा दिया जाता है। ढूंढना मुश्किल तो होगा, लेकिन कोशिश करने से क्या नहीं हो सकता!"

"भाईजान! सीमा को ढूंढने की आपको तकलीफ नहीं करनी होगी," इतनी देर से अपने जेठ का लैक्चर सुन रही बेगम मुजीब आखिर बोली, "यह उसकी चिट्ठी है, आप पढ़ लें।"

"सीमा की चिट्ठी?" शेख शब्बीर हैरान हो कर चिट्ठी पढ़ने लगा। जैसे-जैसे चिट्ठी पढ़ता जाता, उसके चेहरे का रंग उड़ता जा रहा था। और फिर वह दरवाज़े के पीछे, कोने में पड़े हुए सोफे पर जैसे धंस गया हो। चिट्ठी पढ़ते-पढ़ते जैसे उसके होश उड़ गए हों।

"अम्मी! अम्मीजान!" इतने में जेबा कमरे में आ घुसी, "अम्मी-

जान ! अम्मीजान ! कालू के कमरे में जो मूर्ति है न, उसके सामने आप-ही-आप अगरबत्ती जलती रहती है। आज उसे गए हुए कितने दिन हो गए हैं। अगरबत्ती, आप-ही-आप हर रोज़ सुबह जल उठती है। सारे नौकर कमरे में इकट्ठा होकर यह अचरज देख रहे हैं। अब तो अड़ोसी-पड़ोसी भी आ रहे हैं···अरे ताऊ आए हैं। माफ़ करना।" अपने ताऊ को कोने में बैठे, सीमा की चिट्ठी पढ़ते हुए देखकर ज़ेबा झेंप गई।

६

शेख़ शब्बीर सीमा की चिट्ठी पढ़ते हुए मानो उसमें समूचा डूब गया हो। कुछ देर के बाद बेगम मुजीब ने देखा कि चिट्ठी उसके हाथ से गिर गई थी और उसका मुंह खुले-का-खुला रह गया था। फटी-फटी आंखों से वह अपनी भावज की ओर देख रहा था। उसके चेहरे पर एक अजीब-सी भयानकता उभर आई थी। "भाईजान, भाईजान ! यह आपको क्या हो रहा है !" बेगम मुजीब चिल्लाई। ज़ेबा कमरे में से जा चुकी थी।

शेख़ शब्बीर शहर का एक अमीर मुसलमान था। ढेर-सारी ज़मीन, रिहाइश के लिए पुरानी हवेली ! अड़ोस-पड़ोस में अच्छा नाम था। लाखों रुपये की आमदनी। घर में किसी चीज़ की कमी नहीं थी। शहर के मुसलमानों का वह चौधरी था। अपनी प्रतिष्ठा के लिए वह हर किसीकी मदद करता रहता था। कांग्रेस वालों के साथ कांग्रेसी, फ़िरक़ापरस्तों के साथ फ़िरक़ापरस्त। हर किसीको खुश रखता। हर किसीकी रुपये-पैसे से मदद करता। और राजनीतिज्ञ, जब तक उन्हें पैसा मिलता रहे, वह इस बात की चिन्ता नहीं करते कि देनेवाला कौन है, क्या करता है, उसका पैसा कहां से आता है। हज़ारों रुपये उसने कांग्रेस को चंदा दिया होगा और हज़ारों रुपये उसने लीग जैसी कट्टर फ़िरक़ापरस्त पार्टियों को। हर कोई उसे अच्छा-अच्छा कहता। सबकी नज़रों में वह एक रौशन-दिमाग़, सर-मायादार था। अब, जब से साम्प्रदायिक दंगे शुरू हुए थे, वह फ़सादियों

की सरपरस्ती कर रहा था, पैसे से, हथियारों से। और अगर जरूरत पड़े तो अपने किले जैसी हवेली में उन्हें सिर छिपाने के लिए ठिकाना भी देता था।

जिन मुसलमान गुंडों ने सीमा की इज्जत लूटी थी, वे तो शेख़ शब्बीर के 'भुगतान' में थे। उन्हें तो वह कई महीनों से बंधा हुआ माहाना दे रहा था। हर किसीको उसने देसी रिवाल्वर खरीदकर दिए थे। शेख शब्बीर को अच्छी तरह याद था कि इस घटना के बाद उन्होंने पूरा किस्सा आकर उसे सुनाया था। उन्होंने तो वह लॉकेट भी लाकर उसे दिया था। शेख़ शब्बीर ने जरूर उसे कहीं संभालकर रखा होगा। बार-बार कहते, "आज एक सिखनी की ऐसी-तैसी की है।" हर कोई बढ़-चढ़कर शेखियां बघार रहा था। कोई कहता, उसके भाई को टायलेट में बंद करने की योजना उसकी थी। कोई कहता, लड़की पर पहले उसने हाथ डाला था। कोई कहता, अगर वह उसके तमाचा न जड़ता तो वह काबू में आनेवाली थोड़े ही थी। कोई कहता कि वह तब मानी, जब उसने छुरा निकालकर उसकी छाती पर रखा। कोई कहता कि उसके हाथ में रिवाल्वर देखकर उसके सोते सूख गए थे। बार-बार कह रही थी—मैं मुसलमान हूं। बार-बार अपने अब्बा का नाम बता रही थी, जो उन्हें याद नहीं आ रहा था। हर कोई कहता—सिखनी थी, सिखनी। उसकी चोटी पंजाबी लड़कियों की तरह थी। उसके जोबन का उभार पंजाबी लड़कियों जैसा था। *पंजाबियों जैसे गेहुआ रंग। पंजाबियों जैसे दांत, ज्यों मोतियों के दाने हों।* ऊंची, लम्बी, अकेले-अकेले हममें से हर एक को पछाड़ देती। ये तो हम छह थे जो उसने हार मान ली। पहले तो एक शेरनी की तरह मुकाबला करती रही। नाखूनों से खरोंचती रही। दांतों से काटती रही। 'बदतमीज़! बदतमीज़!' कहती रही। फिर शायद थक गई, शायद हार गई, शायद *डर गई, शायद सकते में आ गई, शायद बेसुध हो गई।* उसने अपने-आपको हमारे हवाले कर दिया। जैसे मास का एक लोथड़ा हो और हममें से जिस किसीका जी चाहा, हम अपनी मनमर्जी करते रहे।...

"नहीं! नहीं!! नहीं!!!" चीखता हुआ, शेख़ शब्बीर, एकदम उठकर अपने सिर के बाल नोचता हुआ, बाहर निकल गया।

बेगम मुजीब, 'भाई जान ! भाई जान !' कहती हुई गेट तक उसके पीछे गई। लेकिन उसने इसकी एक न सुनी। पता नहीं वह क्या बोलता जा रहा था ! उसकी समझ में कुछ नहीं आया।

हाथ मलती हुई वह कोठी में वापस आई। कमरे में घुसते ही उसने देखा कि ज़ेबा फर्श पर गिरी चिट्ठी को पढ़ रही थी। उसने अपनी जवान-जहान बेटी से कुछ नहीं कहा। ज़ेबा ने चिट्ठी पढ़कर अपने पास रख ली। बेगम मुजीब ने न उससे वह चिट्ठी कभी मांगी, न उसे ज़ेबा ने वह चिट्ठी कभी वापस की।

उस शाम बेगम मुजीब अपने जेठ के यहां गई। टेलीफ़ोन पर किसी ने बताया था कि उन्हें तेज़ बुख़ार है। बुख़ार का प्रभाव दिमाग़ पर हो गया था। आप-से-आप वह बोलता जा रहा था। डाक्टर ने उसके सिर पर बर्फ़ की पट्टियां रखने के लिए कहा था लेकिन इसका कुछ फ़ायदा नहीं हुआ था।

बेगम मुजीब परेशान थी। यह बुख़ार कोई मामूली बुख़ार नहीं था। जिस हालत में, उसका जेठ सुबह उसके घर से निकला था, उसे तो कुछ भी हो सकता था।

शाम को जब बेगम मुजीब ने उसके कमरे में क़दम ही रखा तो शेख़ शब्बीर ने अपने तकिया के नीचे से सीमा का लॉकेट निकालकर उसके मुंह पर दे मारा। "तुम अपनी बेटी का लॉकेट लेने आई हो। यह लो उसका लॉकेट।" अंगारों की तरह दहकती हुई लाल-लाल आंखें, मुंह में से झाग निकल रही थी। न जाने वह क्या बके जा रहा था। उसकी बीबी, बच्चे, अड़ोस-पड़ोस वाले जो कोई भी उसकी बीमारी का सुनकर इकट्ठा हुए थे, एक-दूसरे के मुंह की ओर देख रहे थे। फिर शेख़ शब्बीर ने छल-छल आंसू रोना शुरू कर दिया। बेगम मुजीब को अपने पास बिठाकर, वह दहाड़ें मारता हुआ रो रहा था।

एक बार फिर डाक्टर को बुलाया गया। एक बार फिर उसे टीका लगाया गया। कहीं रात ढल जाने पर चैन आया और उसकी आंख लग गई।

हर कोई बेगम मुजीब से उस लॉकेट के बारे में पूछता। लॉकेट;

बेशक सीमा का था, लेकिन उसके ताऊ के पास कैसे जा पहुंचा, इस रहस्य का किसीको पता नहीं था, बेगम मुजीब को भी नहीं।

जब उसका जेठ सो गया तो बेगम मुजीब घर लौट आई। शेख शब्बीर का घर शहर में था। बेगम मुजीब का बंगला सिविल लाइन में। घर पहुंची तो देखा कि सीमा की दूसरी चिट्ठी आई हुई थी।

'अम्मीजान! मैं आपको इतने दिन चिट्ठी नहीं लिख पाई,' बेगम मुजीब ने अपने-आपको कमरे में बंद कर लिया और सीमा की चिट्ठी पढ़ने लगी। 'इसकी जगह कि लोग आपको मेरे बारे में कहानियां गढ़-गढ़कर सुनाएं, मैंने फैसला किया है, और इसमें इन्द्र मेरे साथ सहमत है, कि अपनी शादी की सारी कहानी आपको बता दूं।

'जैसे पंजाब के हालात आजकल चल रहे हैं, शरणार्थी अभी तक आ रहे हैं, महाजर अभी तक जा रहे हैं। अभी तक लूट-खसूट हो रही है। अभी तक औरतों को अगवा किया जा रहा है। अभी तक पड़ोसी पड़ोसियों का कत्ल कर रहे हैं। *अभी तक आगजनी हो रही है। अभी तक गाड़ियां* लूटी जा रही है। अमृतसर में, जिसे गुरु की नगरी कहते हैं, हर चौथे आदमी के हाथ मुझे खून से रंगे दिखाई देते हैं। हर शरणार्थी जो वाघा की सरहद पार करके आता है, जैसे उसका कोई-न-कोई अंग कटा हुआ हो। कोई बेटियां गंवाकर आए हैं, कोई बेटे। कोई माएं जान पर खेल गई हैं, कोई बाप अपनी कुरबानी देकर अपने बच्चों को बचा लाया। जो लखपति थे, दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं। बड़े-बड़े जमींदार भूखे मर रहे हैं, *पैसे-पैसे को तरस रहे हैं।*

'इस हालत में मेरा आपसे इजाजत मांगना और आपका इसलिए रजामंद होना नामुमकिन था। और फिर मेरे पास वक्त ही कहां था, जो आपकी रजामंदी का इंतजार करती? मैं तो हर रोज़...।

'मुझे मालूम है कि यह जानकर कि मैंने एक गैर-मुसलमान से शादी कर ली है, आपका दिल टुकड़े-टुकड़े हो गया होगा। मुझे साफ दिखाई दे रहा है कि आपकी आंखों में से आंसुओं की धारा बह रही है। लेकिन *अम्मी! जो कुछ भी हुआ, मैं खुश हूं, बहुत खुश, शायद अल्लाह की यही* मर्जी थी।

'चार दिन, और मुझे पंजाबी बोली अच्छी लगने लगी है। इनका लहजा अब मुझे अजीब-अजीब नहीं लगता। मैंने शलवार-कमीज़ पहनना सीख लिया है। अब मैं पंजाबी खाना पकाना भी सीख रही हूं। लस्सी और मक्खन; पनीर और साग! हमारे यहां गोश्त बहुत कम पकता है, चावल बहुत कम खाए जाते हैं। अब मुझे इनकी कभी ज़रूरत भी महसूस नहीं होती। औरत कैसे अपने-आपको हालात के मुताबिक ढाल लेती है!

'हमारी शादी की यहां चारों ओर चर्चा है। अख़बारों में हमारी तसवीरें छपती रहती हैं। लोगों ने जैसे हमें सिर पर उठा लिया हो। इन्द्र को यहां नौकरी मिल गई है। रहने के लिए घर मिल गया है। यहां खालसा कालेज में शरणार्थी कैम्प खुला हुआ है। हम दोनों इसमें काम करते हैं। चाहे इस ओर भी बड़े ज़ुल्म हुए हैं, लेकिन मैं तो सुन-सुनकर हैरान होती रहती हूं। और जो अत्याचार उस ओर हिन्दू-सिखों पर मुसलमानों ने ढाए हैं, दोनों ओर हमने अपना मुंह काला कर लिया है। कोई किसीको दोषी नहीं ठहरा सकता।

'कुछ भी हो, मैं खुश हूं, बहुत खुश! यह जानते हुए भी कि आप सब मुझसे छूट गए हैं, मैं इन्द्र जैसे शौहर की बीवी बनकर अपने-आपको खुश-किस्मत समझती हूं। जैसे मुझे जन्नत मिल गई हो।

'अम्मी! अब मैं उस दिन का इंतज़ार कर रही हूं, जब मैं इन्द्र के साथ अपनी मां के घर में कदम रख सकूंगी। इन्द्र जैसे इंसान के साथ ब्याह करने के फ़ैसले में, मुझे यक़ीन है कि मेरे अब्बा की रज़ामंदी मेरे साथ है। आपकी बेटी—सीमा।'

७

"लेकिन सीमा को सिख बनने की क्या ज़रूरत पड़ी थी?" उस दिन सुबह नाश्ते के लिए अम्मी के साथ मेज़ पर बैठी हुई जेबा, बातों-बातों में तुनक गई। एक ज़हर-सा था उसके लहज़े में। उस दिन सीमा का जन्म-

दिन था और बेगम मुजीब को अपनी बिछुड़ी हुई बेटी याद आ रही थी। उसकी आवाज़ भर्रा रही थी। और वह देखकर ठिठक-सी गई कि ज़ेबा एकदम आग-बगूला हो गई थी। इतनी जोर से उसने अपने चाय के प्याले को मेज़ पर पटका कि प्याला टुकड़े-टुकड़े हो गया।

"सीमा की चिट्ठी पढ़कर भी तुम यह कह सकती हो?" कुछ देर बिट-बिट ज़ेबा के मुंह की ओर देखकर, बेगम मुजीब ने उसे याद दिलाया।

"उसकी चिट्ठी एक फरेब है, एक धोखा है।" ज़ेबा की आंखों में जैसे खून उतर आया हो।

"क्या मतलब?" उसकी अम्मी तड़प उठी।

"यह सब मक्कारी है। एक कहानी गढ़ी गई है, हमारी हमदर्दी जीतने के लिए।"

"तुम यह क्या बके जा रही हो?" बेगम मुजीब को गुस्सा आ रहा था।

"अगर हालात आम दिनों जैसे होते, तो मैं आपको दिखा देती कि यह सरासर कुफ्र है। सीमा हमें उल्लू बना रही है।"

"हालात आम दिनों जैसे होते तो जो कुछ उस मासूम-जान पर बीती, यह जुल्म होना ही क्यों?" बेगम मुजीब की आंखें सजल हो रही थीं।

"हालात के ज़िम्मेदार हिन्दुस्तानी हिन्दू हैं।"

"कोई भी हो, बुरी बात बुरी है।"

"कुछ भी हो, सीमा की कहानी कोरा झूठ है। जैसे किसी घटिया नावल का कोई किस्सा हो।"

बेगम मुजीब, घोर उपेक्षा से ज़ेबा की ओर देख रही थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह सीमा के लॉकेट के बारे में उसे कैसे बताए, जो उसका ताऊ कहीं से ढूंढ लाया था।

लेकिन लॉकेट शेख़ शब्बीर के हाथ कैसे लगा? बेगम मुजीब कुछ समझ नहीं पा रही थी। कई दिनों से वह यह सोच-सोचकर परेशान हो रही थी। उधर उसके जेठ की तबीयत अभी तक खराब थी। उसे भी

ज्यादा नहीं कुरेदा जा सकता था।

अभी उन्होंने नाश्ता किया ही था कि डाक आ गई। डाक में सीमा की चिट्ठी थी। कालू सीमा के पास पहुंच गया था। सीमा बहुत खुश थी। 'ऐसे लगता है, जैसे यो ही पुराना घर हो!' उसने लिखा था।

जेबा ने जैसे ही सुना, वह और गुस्से में आ गई। क्रोध में उसके मुंह से झाग बहने लगी। उसके होंठ कांप रहे थे। वह समझ नहीं पा रही थी कि वह अपने गुस्से पर कैसे क़ाबू पाए! बेगम मुजीब के मुंह का जायका भी कड़वा-कसैला हो रहा था। यह हो क्या रहा था? उसके घर में ही हिन्दुस्तान और पाकिस्तान बन गया था। उसके परिवार को दो भागों में बांटा जा रहा था। आख़िर कालू उनके घर का ही तो आदमी था। उन्होंने तो उसे कभी नौकर की तरह नहीं जाना था। क्योंकि देश का बंटवारा हो गया था, कालू भी अपनी सारी पुरानी मुहब्बत, सारी वफ़ा को भूलकर अपने 'भारत' में जा बैठा था।

"यह सब साजिश है सीमा आपा की! वही उसे समझाकर गई होगी। वही उसके कान भरकर गई होगी। नहीं तो कालू को इतनी अक़्ल कहां? कैसे अपने क्वार्टर को बुहार गया है! अपना भगवान भी पीछे छोड़ गया।" जेबा आप-से-आप बोलती जा रही थी, "खुद ही चुपके से जाकर तांगा ले आया। खुद ही सामान लादा और किसीको बताए बिना स्टेशन चला गया। क्या हममें से किसीका उसे लिहाज नहीं था? क्या हममें से किसीके लिए उसे हमदर्दी नहीं थी? आंख की शर्म भी तो कोई चीज होती है। मैं बार-बार मिन्नतें करती रही, आपने उसे समझाया; लेकिन उसने परों पर पानी नहीं पड़ने दिया। अगर उसे अपने ठिकाने का पता न होता तो क्या वह घर छोड़कर जा सकता था? आख़िर उसे हुआ भी क्या था? उसे किसीने क्या कहा था? किसीने बुरा-भला नहीं कहा। आख़िर उसका हमें यूं छोड़कर चल देना, इसका मतलब क्या है?"

अपनी बेटी की नाराजगी देखकर, बेगम मुजीब सोच में पड़ गई। क्या पता जो जेबा कह रही थी, वह ठीक ही हो। मेरठ से दिल्ली जा रही, खचाखच भरी गाड़ी में यूं किसी लड़की की इस्मत लूटना कोई मानने

वाली बात नहीं लगती थी। बेशक उन दिनों हालात असाधारण थे। लेकिन यूं किसीकी इज्जत पर डाका डालना, एक फ़िल्मी कहानी-सा लगता था। और फिर कालू का बिना कहे-सुने चल देना; बेगम मुजीब की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। कालू तो सारी उम्र उसके इशारे पर चलता रहा था। क्या मजाल जो कभी सामने से जवाब दिया हो। लेकिन उस दिन तो वह नज़र से नज़र नहीं मिला रहा था। 'बेगम साहब, यही समझो कि कालू मर गया है,' बार-बार यह कह रहा था।

लेकिन कालू को कैसे भुलाया जाए? अपनी संतान को बेगम मुजीब भूल सकती थी, लेकिन कालू को भूलना मुश्किल था। जब से वह गया था, कई समस्याएं बेगम मुजीब के लिए खड़ी हो गई थीं। नौकर का नौकर और बेटे का बेटा। जब कालू इस घर में था, तो उसने कभी महसूस नहीं किया था कि वह अकेली है। अबला औरत! घर का राशन, कपड़ा-लत्ता उसके साथ जाकर खरीद लाता। दुकानों का किराया इकट्ठा करता। जायदाद का कोई-न-कोई मुकदमा लगा ही रहता था। कचहरियों की हाज़िरी भरना भी उसके ज़िम्मे था। फिर घर की सफाई, बाग़-बगीचे की देख-भाल और सारा छिट-पुट काम उसने संभाला हुआ था। क्या मजाल जो एक सुई भी इधर-से-उधर हो जाए।

अब, जब से वह गया था, गली के बच्चे, बगीचे के अमरूद तोड़-तोड़कर खाते रहते थे। दिन में सड़क पर घूमते ढोर बंगले के लॉन की घास को मुंह मारने लगते। ग्वाले ने दूध में पानी मिलाना शुरू कर दिया था। उसे बुरा-भला कहने वाला कोई न था। माली गायब रहने लगा था। जमादार इधर कोठी में दाखिल होता, उधर निकल जाता। न ढंग से झाड़ू देता, न फर्श रगड़ता। वही खानसामा था, लेकिन अब उसके पकाए खाने में स्वाद नहीं रहा था। जब कालू था, तो मेज पर खाना वक्त पर आ जाता था। खाना परोसने से पहले किस सलीके से वह उसे सजाता था!

उधर ज़ेबा थी, जैसे सीमा से उसे खुदा-वास्ते का वैर हो। घर में कोई उसका नाम नहीं ले सकता था। हर वक़्त उसकी बुराइयां करती रहती। उसे शिकायत थी कि सीमा ने अपने सोने के कमरे में जो कैलेण्डर

टांगा हुआ था, उसमें कृष्ण वंसी वजा रहा था। उसके शृंगार-मेज़ की दराज में कई तरह की बिंदिया निकली थीं। कालेज में ज़रूर माथे पर बिन्दी लगाती होगी। आम तौर पर उसकी दोस्ती हिन्दू लड़कियों से होती थी, कमला और विमला, मोहिनी और कल्याणी, सुन्दरी और सरोज; किस-किसका नाम कोई गिनवाए? पिछले रमज़ान उसने एक भी रोज़ा नहीं रखा था। ईद वाले दिन ईदी इकट्ठी करके अपनी हिन्दू सहेलियों के साथ सिनेमा देखने सबसे पहले चल दी थी। उसकी अलमारी में से ढेर सारी हिन्दी की किताबें निकली थीं।

ज़ेबा ने धीरे-धीरे, सीमा की ओर से अपनी मां का दिल बिलकुल खट्टा कर दिया। उसकी चिट्ठियां आतीं, पर वह जवाब न देती। फिर उसकी चिट्ठियां आनी बंद हो गईं। जैसे-जैसे कालू के चले जाने से समस्याएं पैदा होतीं, वह भी उसके मन से उतरता जा रहा था।

उधर अपने जेठ का, शहर में उसे बड़ा सहारा था। उसकी तबीयत दिन-पर-दिन गिरती जा रही थी। शेख़ शब्बीर को आगरे के मानसिक रोगों के अस्पताल में भी दिखा लाए थे। कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा था। कभी मुसलमानों को बुरा-भला कहने लगता, कभी हिन्दुओं को। कभी पाकिस्तान को सलावतें सुनाने लगता, कभी हिन्दुस्तान को। बेगम मुजीब ने आज़माकर देखा था कि जब भी वह उसे मिलने के लिए जाती, उसकी हालत और बिगड़ जाती थी। और बुरी तरह से इधर-उधर की हांकने लगता था। न सिर, न पैर। अब इनके यहां वह कभी नहीं आता था। पहले जब आता था, तो दस काम संवारकर जाता था। हर बात में बेगम मुजीब उससे सलाह लेती, फिर कोई काम करती थी। अब कोई नहीं था जो उसको घर के बारे में मशवरा दे।

लंदन में रहने वाला उसका बेटा टस-से-मस नहीं हुआ था। उसकी बहन ने किसी इधर-उधर के आदमी से ब्याह कर लिया था, यह उसकी राय में एक ज़ाती मामला था। अगर उसने ग़लती की थी, तो खुद भुगतेगी। अगर उसने ठीक किया है तो सुखी रहेगी। हर कोई अपने दुःख-सुख का आप ज़िम्मेदार होता है। बेगम मुजीब ने परेशान होकर उसे इतनी लंबी चिट्ठी लिखी थी, उसका दो सतरों का जवाब आया, जैसे

कुछ हुआ ही न हो।

अपने पाकिस्तानी रिश्तेदारों ने बस इतना ही लिखा था, कि अब छोटी को तो किसी तरह बचाकर ले आओ, नहीं तो वह भी किसी हिन्दू के साथ फेरे ले लेगी।

ज़ेबा को, ज़ुबैर चाचा की यह चिट्ठी पढ़कर, चारों कपड़े आग लग गई थी। इससे तो जाहिद भाईजान कहीं अच्छे थे। बड़े प्यार से उन्होंने लिखा था कि जब ज़ेबा मैट्रिक पास कर ले तो आगे पढ़ाई के लिए उसे लंदन भेज देना।

बेगम मुजीब को हैरानी इस्मत की ओर से हो रही थी। पाकिस्तान बनने से पहले तो वह इसे उधर ले जाने के लिए इतनी बेचैन थी, मगर अब इतना बड़ा तूफान इसके सिर से गुजर गया था, बस एक-आध चिट्ठी लिखकर खामोश हो गई थी, जैसे भारतीय भावज के साथ उसका कोई रिश्ता ही न हो। शायद इसलिए कि उसके घरवाला फौज का अफसर था, और पाकिस्तान की हिन्दुस्तान के साथ खटपट जारी थी।

बेगम मुजीब की समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि क्या करे, क्या न करे! कहा जाए, कहा न जाए!

८

यही बात थी। कश्मीर में लड़ाई छिड़ जाने के कारण, इस्मत खामोश हो गई थी, नहीं तो वह अपनी भावज पर जान देती थी। न वे लोग इधर आ सकते थे और न ही पत्र-व्यवहार कर सकते थे। उसका घरवाला फ़ौज में कर्नल था। फ़ौजियों पर खास तौर पर पाबंदियां लगाई गई थीं।

फिर उधर से कोई आया, जिसके हाथ इस्मत ने अपनी भावज को चिट्ठी भेजी—सीमा की हरकत पर वह सख्त परेशान थी। सीमा ने सारे खानदान की इज्जत को डुबो दिया था। और ख़ास तौर पर इस

वक़्त, जवकि मुसलमान क़ौम ने लाख कुरवानियां देकर पाकिस्तान वनवाया था। उसका एक सिख से व्याह करना, पूरे पाकिस्तान के मुंह पर चपत लगाने के वरावर था। क़ायदे-आजम का फ़रमान था कि पाकिस्तान में कोई सिख नजर नहीं आना चाहिए।

इस्मत ने अपनी भावज को लिखा कि उसके मियां कर्नल इरफ़ान ने, मोटर में अपनी एक दोस्त को अमृतसर भेजा था। वह सीमा से मिला भी था। उसने वहुत कोशिश की कि सीमा किसी तरह उसके साथ लाहौर चली जाए। इस्मत ने अपनी चिट्ठी में वार-वार लिखा था कि वह लाहौर में, अपने चाचा-चाची, फूफा-फूफी और वाक़ी रिश्तेदारों से मिल जाए। लेकिन उसने एक ही ज़िद पकड़ी हुई थी—'मैं लाहौर तव आऊंगी जव मेरे साथ 'इन्द्र' भी आ सकेगा।'

इस्मत के मियां ने उधर अपने तौर पर पूछताछ की थी। उसकी इत्तिला थी कि इन्द्रमोहन का वाप कट्टर अकाली था। मुसलमान मुजाहिदों ने उनकी सारी जायदाद जलाकर ख़ाक कर दी थी। उनके घर की ईंट-से-ईंट वजा दी थी। उसके माता-पिता मारे गए थे। उसके वाक़ी परिवार का, किसीको कुछ पता नहीं था। लोग कहते, उसकी एक वहन थी—पाकिस्तान में किसीके साथ उसकी आशनाई थी। वह पाकिस्तान में ही अपने मनपसंद लड़के के यहां टिक गई। उसकी किसी और को ख़वर नहीं थी। इन्द्र वच गया, क्योंकि वह दिल्ली में पढ़ रहा था।

इस्मत को यही अफ़सोस था कि सीमा लाहौर जाने को राज़ी नहीं हुई। 'एक वार वह मेरे यहां आ जाती, तो फिर मैं उसे यहां से जाने ही न देती। किसी-न-किसीके साथ उसका निकाह पढ़वा देती।' इस्मत ने लिखा था, 'ख़ैर, मेरी कोशिश अभी जारी है। हम लड़की को निकलवाकर ही सांस लेंगे। इरफ़ान ने क़सम खाई है कि वह सीमा को एक सिख के घर नहीं वसने देगी, चाहे जो कुछ हो जाए।'

कुछ दिनों के वाद इस्मत की फिर चिट्ठी आई। वड़ी खुश-खुश लग रही थी। कह रही थी—अव कुछ दिनों की वात है। फिर सीमा हमारे यहां आ जाएगी। पाकिस्तान और भारत में समझौता हुआ था। अगवा

की गई हिन्दू-सिख लड़कियों को उधर से निकालकर इधर भेजा जा रहा था। जिन मुसलमान लड़कियों के साथ इस ओर जबरदस्ती ब्याह करवा लिए गए थे, उन्हें बरामद करके, पाकिस्तान भेजा जा रहा था। और कर्नल इरफ़ान ने मिल-मिलाकर सीमा का नाम अगवा की गई औरतों को बरामद करने वाले विभाग को पहुंचा दिया था। उन्होंने वायदा किया था कि वह सीमा के घर छापा मारकर उसे निकलवा लाएंगे। उस विभाग के लोग पूर्वी पंजाब में, किसी शहर, किसी गांव में जा सकते थे। अपने साथ स्थानीय पुलिस को लेकर, जिस घर में कोई मुसलमान लड़की होती, उसका घेरा डाल देते और फिर भारतीय पुलिस की मदद से लड़की को अपने कब्ज़े में कर लेते। 'अब किसी भी दिन सीमा यहां लाहौर आ जाएगी।' इस्मत ने लिखा था, 'आप मेरी अगली चिट्ठी का इन्तज़ार करें। कुछ दिनों में मैं आपको खुशखबरी दूंगी।'

लेकिन कई दिन बीत गए, इस्मत की कोई चिट्ठी नहीं आई। बेगम मुजीब की बुरी हालत थी। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। वह सब कुछ जो इस्मत कर रही थी, उसे करना चाहिए था या कि नहीं? कभी यह सोचकर वह खिल-सी जाती कि उसकी बेटी सीमा अपनी फूफी इस्मत के पास पहुंच जाएगी। कभी यह सोचकर कि वह पाकिस्तानी बन जाएगी, उसका दिल डूबने लगता। पाकिस्तान को अपना सकना, उसके लिए अभी तक संभव नहीं था। उसका घरवाला हमेशा पाकिस्तान के विरुद्ध बोलता रहा, हमेशा उसने अन-बंटे भारत का साथ दिया था। बेगम मुजीब सोचती कि वह अब कैसे पाकिस्तान को कबूल कर ले? लेकिन फिर यह सोचकर कि उसकी बेटी ने एक गैर-मुसलमान के साथ उसकी रज़ामंदी के बिना ब्याह कर लिया था। उसका मन डांवाडोल हो जाता। उसके कदम डगमगाने लगते। उसकी पलकें मुंद जातीं। न इधर की, न उधर की। अपने-आपको परिस्थितियों के हवाले कर देती। जैसे कोई बिना पेंदे का लोटा हो। जैसे एक खोखली शहतीर समुद्र की लहरों में हिचकोले खा रही हो। कभी इधर, कभी उधर। जिधर रेला ले जाता, उधर ही वह जाती।

कितने दिन हो गए, इस्मत की लाहौर से कोई चिट्ठी नहीं आई थी।

कोई पता नहीं चला कि सीमा का क्या हुआ था। वेगम मुजीव को डर खाए जा रहा था। सीमा साधारण लड़कियों जैसी नहीं थी। वह तो अपने इरादे की वड़ी पक्की थी। एक वार जिसका हाथ थाम ले, अपने अव्वा की तरह उसे कभी छोड़ने वाली नहीं थी। उसे ख़तरा था कि सीमा कोई ख़रावी न कर वैठे।

वेगम मुजीव से ज्यादा जेवा परेशान थी। हर रोज़ वेतावी से इस्मत फूफी की चिट्ठी का इंतजार करती। स्कूल से लौटते ही, पहली वात मां से पूछती—लाहौर से कोई चिट्ठी आई ?

चिट्ठी तो कोई नहीं आई थी। जैसे-जैसे दिन गुज़र रहे थे, वेगम मुजीव की परेशानी वढ़ रही थी। जेवा वेचैन थी। उधर कश्मीर में लड़ाई जारी थी।

"आख़िर कश्मीर पर हिन्दुस्तान का क्या हक़ है ?" एक दिन वैठे-वैठे जेवा के मुंह से यह वात निकली। अभी-अभी वह अख़वार पढ़ रही थी।

"क्या मतलव ?" वेगम मुजीव ने आग ववूला होकर अपनी वेटी के मुंह पर चपत दे मारी। पांचों की पांचों उंगलियां उसके गाल पर खुभ गई।

"इसमें क्या शक है ? भारत की यह सीनाजोरी है।" जेवा जैसे चिढ़कर वकने लगी। "हिन्दुस्तानी हिन्दुओं का कश्मीर को अपने साथ मिला लेना एक धोखा है। जव यह फ़ैसला हुआ कि मुसलमान वहु-गिनती वाले इलाके पाकिस्तान में शामिल किए जाएंगे, तो कश्मीर को पाकिस्तान में शामिल होने से रोकना, फ़रेव है, कुफ्र है—पाकिस्तान के साथ।"

"कश्मीर के महाराजा ने, हिन्दुस्तान में शामिल होने का ऐलान किया है।" वेगम मुजीव वेटी को समझा रही थी।

"क्या इस तरह का फ़ैसला करने का अधिकार हैदरावाद के निज़ाम को दिया जाएगा ? क्या जूनागढ़ का फ़ैसला हिन्दू नेता मानने के लिए तैयार हैं ?" जेवा हमेशा की तरह जहर उगल रही थी।

"कश्मीर का फ़ैसला शेख़ अव्दुल्ला ने किया है। उसके दल ने किया है।"

"शेख़ अब्दुल्ला नेहरू के हाथों में एक कठपुतली है। जो कुछ नेहरू कहता है, वही वह बोलता है।" ज़ेबा बहस जारी रखे हुए थी।

"मैं पूछती हूं, तुझे यह अजीब-अजीब बातें कौन सिखाता रहता है? शेख़ मुजीब की बेटी होकर तुम तो यूं सोचने लगी हो, जैसे किसी मुस्लिम लीगी के घर में कोई जन्मा-पला हो।"

"मैं मुसलमान हूं, अम्मी!" ज़ेबा बड़े अहंकार से ऐलान कर रही थी। "अपने अधिकारों के लिए हम मुसलमान नौजवान लड़के-लड़कियां जान की बाज़ी लड़ा देंगे।"

बेगम मुजीब ने अपनी बेटी की ओर एक नज़र देखा और फिर अपनी आंखें फेर लीं। *यह तो और-की-और ज़बान बोल रही थी। यह तो* और-की-और तरह सोच रही थी। बेगम मुजीब को लगा, जैसे ज़ेबा उनसे बहुत दूर निकल गई थी, उससे, अपने अब्बा से। वह तो अपनी एक बेटी के लिए रो रही थी, सीमा का ग़म उसे खाए जा रहा था, इधर दूसरी भी उसे छोड़कर कहीं-की-कहीं जा पहुंची थी। मां-बेटी में कोई बात मेल नहीं खाती थी। सीमा ने इस्लाम को छोड़ा था, ज़ेबा अपने देश से बेवफ़ाई कर रही थी। अपने बाप के आदर्शों से मुंह फेर रही थी।

उस शाम के बाद मां-बेटी में जैसे एक खाई-सी पैदा हो गई। वे एक-दूसरे से दूर-दूर रहने लगीं। बिना मतलब के कोई बात नहीं। और फिर यह खाई दिन-पर-दिन बढ़ने लगी। एक छत के नीचे रहते हुए, एक मेज़ पर खाते हुए, उनमें मां-बेटी जैसी कोई बात बाक़ी नहीं रही थी।

इस्मत की ओर से कोई ख़बर नहीं आई थी। एक दिन बैठे-बैठे ज़ेबा फिर उत्तेजित हो उठी।

"मैं कहती हूं, सीमा आपा को कोई और झूठ नूझा होता, कि मेरे पेट में मुसलमान फसादियों का बीज था और एक सिख ने मेरे साथ ब्याह करने का फ़ैसला कर लिया, यह कोई मानने वाली बात है?"

"ज़ेबा! ज़ेबा!! ख़ुदा के वास्ते मुझे और न सताओ," बेगम मुजीब उसे हाथ जोड़ रही थी।

"चलो, यह भी मान लिया कि उसके पेट में पराया बीज था।" ज़ेबा बदतमीज़ी पर तुली हुई थी, "क्या आजकल के ज़माने में उसे निकलवाया

से आसान शर्तों पर क़र्ज़ दिए जाएं। नये कारख़ानों और मिलों के लिए उन्हें लाइसेंस दिए जाएं। नहीं तो हिन्दुस्तानी मुसलमान हिन्दू का ग़ुलाम होकर रह जाएगा। हमेशा उसके रहम पर पड़ा रहेगा। दो वक़्त की रोटी के लिए भी उसे उसके मुंह की तरफ़ देखना पड़ेगा।"

वेगम मुजीव सोचती कि जो महमूद कह रहा था, वह विल्कुल सच था। यह सव कुछ देश के हक़ में है।

"हिन्दुस्तानी मुसलमानों को हिन्दुस्तान में जीना और मरना है। यह ज़रूरी है कि वे मुंह उठाकर पाकिस्तान की तरफ़ देखना वंद करें।"

"आप ठीक फ़रमा रही हैं अम्मीजान! लेकिन जव तक हमें हमारे अधिकार नहीं मिलते, हमारी नज़र पाकिस्तान की ओर जाएगी ही। पाकिस्तान को देखकर हमारा हौसला वढ़ता है। पाकिस्तान दुनिया के दूसरे मुल्कों की तरह एक मुल्क नहीं है। पाकिस्तान, मुसलमान क़ौम के सपनों की तावीर है। कुछ दिन वीतने दें, पाकिस्तान एक ज़ियारत-गाह वन जाएगा—एक चश्मा, जिसके आवे-हयात से दुनिया-भर के मुसलमान अपनी आक़वत संवारेंगे। क़ायदे-आज़म जैसा लीडर किसी क़ौम को कहीं सदियों में नसीव होता है। पाकिस्तान की तरफ़ तो हमें देखना ही होगा।"

"तो क्या तुम्हारी अपने देश के लिए कोई ज़िम्मेदारी नहीं?" वेगम मुजीव ने हैरान होकर पूछा।

"अपना देश!" महमूद एक ज़हर-वुझी हंसी हंसा। "अम्मीजान! हिन्दुस्तान को दो क़ौमों की थियूरी पर वांटा गया है—हिन्दू और मुसलमान! जव तक हिन्दुस्तान में वाक़ी वचे मुसलमानों को यहां के हिन्दू इज़्ज़त और आवरू के साथ जीने नहीं देते, हम यहां रहेंगे या नहीं, इस वात का फ़ैसला नहीं हो सकता।"

वेगम मुजीव फटी-फटी आंखों से उसके मुंह की ओर देख रही थी।

"भारतीय मुसलमान अंग्रेजों की ग़ुलामी की वेड़ियां उतारकर हिन्दू की ग़ुलामी मोल लेने के लिए तैयार नहीं। हमें ज़रूरत पड़ी तो हम इसके लिए लड़ेंगे। हमें ज़रूरत पड़ी तो हम इसके लिए कुरवानियां देंगे। अपने-आपको हम इसके लिए तैयार कर रहे हैं।"

"भारत के सारे मुसलमान आज एक-मत हैं।" महमूद की आवाज ऊंची हो रही थी।

"तो बेटा, तेरा मतलब यह है कि जेबा का अब्बा सारी उम्र अपने-आपको धोखा देता रहा?"

"हां; हिन्दू के फ़रेब का शिकार। महात्मा गांधी जैसा कट्टर हिन्दू, इस देश में कोई पैदा नहीं हुआ। महात्मा गांधी जैसा घुटा हुआ सियासत-दान कौन होगा? वह तो कभी पाकिस्तान न बनने देता अगर सरदार पटेल और नेहरू ने उसे मजबूर न किया होता। हिन्दुस्तानी मुसलमानों की सब मुसीबतें उसीकी पैदा की हुई हैं। कहीं किसी आज़ाद, कहीं किसी क़िदवई, कहीं किसी ज़ाकिर हुसैन को अपने पीछे लगाए रखता है। उनका इरादा यह है कि भारत के मुसलमानों को बांध के रख दो। इनसे इनकी ज़बान छीन लो, नौकरियों में इनके साथ भेद-भाव करो। काम-धन्धे, व्यापार में तो ये पहले ही मार खाए हुए हैं। वक्त के साथ आप-ही-आप हिन्दू-धारे में खो जाएंगे। एक क़ौम की क़ौम को नकारा करने का यह एक मंसूबा है।"

"मुझे तुम्हारी बात समझ में नहीं आ रही है।" बेगम मुजीब, उनमीं-उनमीं-सी, फटी-फटी आंखों से महमूद को देख रही थी।

"अम्मीजान! मोटी बात यह है कि आपकी बेटी को स्कूल में हिन्दी पढ़ाई जाती है कि नहीं? आज जेबा उर्दू से ज़्यादा हिन्दी जानती है। हर किसीको हाथ जोड़कर नमस्ते करती है। मुसलमान लड़कियों की तरह गर्दन झुकाए बांह उठाकर आदाब करते मैंने उसे कभी नहीं देखा। लखनऊ रेडियो से कभी 'नात' और 'हम्द', क़व्वालियां और ग़ज़लें ब्राडकास्ट की जाती थीं। आजकल आपको कहीं इक्का-दुक्का उर्दू का प्रोग्राम सुनने को मिलता है। आल इंडिया रेडियो के समाचारों की उड़ान हर रोज़ मुश्किल होती जा रही है। कोई कह रहा था कि रेडियो वाले आजकल हिन्दी में खबरें नहीं सुनाते, छब्बनों में हिन्दी सुनाते हैं। मेरे तो पल्ले कभी कुछ नहीं पड़ता। मैं तो दोनों वक्त पाकिस्तान से ख़बरें सुनता हूं।"

बातों-बातों में पसीना पोंछने के लिए महमूद ने जेब में से रूमाल

निकाला और वेगम मुजीव देखती-की-देखती रह गई कि सौ-सौ के नये नोटों की गड्डी उसके सामने फ़र्श पर जा गिरी। महमूद ने जल्दी से उसे उठाकर अपनी जेव में रख लिया।

और फिर महमूद किसी वहाने उठ खड़ा हुआ। इतने में उसे लेने के लिए एक मोटर आ गई। वेगम मुजीव ने देखा—जहाज़ जैसी मोटर चमचम कर रही थी। एक नौजवान लड़का उसे चला रहा था। मोटर में एक-दो लड़के, एक-दो लड़कियां वैठी हुई थीं।

उस दिन के वाद वेगम मुजीव ने ज़ेवा को जैसे विल्कुल माफ़ कर दिया हो। कैसे इस्लाम और पाकिस्तान पर किताबें इकट्ठा करती रहती थी! लाहौर रेडियो के उर्दू प्रोग्राम कितने प्यारे होते थे! सुवह-शाम ज़ेवा आप भी सुनती, अपनी अम्मी को भी सुनवाती।

आजकल वेगम मुजीव को लाहौर रेडियो से तलावते-क़ुरान शरीफ़ सुनकर जैसे चैन-सा महसूस होने लगता। उसकी जिन्दगी में अचानक इतनी उलझनें आ गई थीं; अल्लाह का नाम सुनकर जैसे उसे एक तसकीन-सी मिलती। और फिर क़व्वालियां और नातें, जैसे ही एक वार सुनने वैठती, उसका रेडियो के पास से उठने को मन न करता। और इधर अपने देश का रेडियो था, हर वक़्त पक्के गाने और कठिन हिन्दी, या फिर भारत की योजनाएं। इस तरह का राग अलापता रहता। किसीके पल्ले कुछ न पड़ता।

और फिर किसीके हाथ, लाहौर से इस्मत की चिट्ठी आई। चिट्ठी पढ़कर ज़ेवा को जैसे आग लग गई।

अमृतसर की पुलिस ने, पाकिस्तान से भेजी गई पुलिस की टुकड़ी द्वारा सीमा को वरामद करने की इजाज़त नहीं दी। अमृतसर शहर और निकट के गांव में से ट्रकें भरकर, अगवा की गई मुसलमान लड़कियों को वे ले गए थे; पर सीमा के घर की ओर जाने के लिए स्थानीय पुलिस राज़ी नहीं हुई थी। एक ही ज़िद कि वी० ए० पास लड़की का कोई अपहरण नहीं कर सकता। और फिर सीमा की मां अभी हिन्दुस्तान में थी। उसकी एक वहन हिन्दुस्तान में थी। उसका एक भाई लंदन में था, लेकिन हिन्दुस्तान का शहरी था। लाखों रुपये की उनकी जायदाद थी—इधर

हिन्दुस्तान में। इनके खानदान में, पाकिस्तान बनने के बाद कोई भी तो उधर नहीं गया। बेशक कुछ रिश्तेदार उधर पाकिस्तान में थे, लेकिन वे तो पहले ही उधर रह रहे थे।

लेकिन इस्मत ने लिखा था—'मेरा शौहर भी हार मानने वाला नहीं है। उसने पाकिस्तान की पुलिस में से किसीको तैयार किया है। अगली बार जब वह अमृतसर गए तो किसी-न-किसी तरह सीमा को जबरदस्ती उठाकर ले आएंगे। एक बार वह सरहद से पार आ गई तो फिर हम उसे संभाल लेंगे।' इस्मत को पूरा भरोसा था कि वह इस साजिश में कामयाब हो जाएगी।

लेकिन वह सफल नहीं हुई। इतने दिन बीत गए थे। यूं लगता, सीमा के चारों ओर इस्पात का एक जंगला बना दिया गया था। उसे कोई हाथ नहीं डाल सकता था। इधर उसने अपने अम्मी को चिट्ठी लिखना भी बंद कर दिया था। वास्तव में स्वयं बेगम मुजीब का जी नहीं चाहता था कि उससे कोई वास्ता रखे।

बेगम मुजीब का मन खट्टा हो चुका था। कई दिनों से वह महसूस कर रही थी कि उसका शौहर शायद गलत राह पर था। उसकी बेटी ज़ेबा जो कुछ कहती थी, वही ठीक था। और फिर ज़ेबा और उसके मिलने-जुलने वाले लड़के-लड़कियां हर रोज उसके कान भरते रहते। आजकल उनका बेगम मुजीब के घर आना-जाना लगा ही रहता था।

और फिर शेख शब्बीर का इलाज कर रहे डाक्टर ने मशवरा दिया कि उसे पाकिस्तान भेज देना चाहिए। हो सकता है कि उसकी बीमारी का इसीमें इलाज हो। बेगम मुजीब सोचती कि वह भी पाकिस्तान चली जाएगी। जहन्नुम में जाए जायदाद। जान है तो जहान है। इधर भारत में तो, उसे यूं लगता था कि कहीं उसका भी वही हाल न हो जो उसके जेठ का हो रहा था। कभी तोला, कभी माशा। कभी एक पलड़ा भारी हो जाता, कभी दूसरा। कभी हिन्दुस्तान, कभी पाकिस्तान। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

१०

पक्का फ़ैसला था कि बेगम मुजीब पाकिस्तान चली जाएगी। उस अपनी जायदाद के ग्राहक भी ढूंढ़ने शुरू कर दिए थे। कुछ सौदे भी चुके थे। कुछ रक़मों की पेशगी भी ले ली थी।

ज़ेबा खुश थी। बहुत खुश। उधर इस्मत के मानो ज़मीन पर पांव नहीं टिक रहे थे। ज़ुबैर खुश था। अपनी भावज की ओर से अब वह सुर्खरू हो जाएगा। भारत में जब कहीं साम्प्रदायिक दंगे होते, पाकिस्तान का कोई लीडर जब भारत के विरुद्ध बयान देता, उसे बेगम मुजीब की और भी चिन्ता होने लगती थी।

शेख़ शब्बीर ने अपनी लाखों की जायदाद कौड़ियों के भाव बेच डाली थी। उसने अपने नगदी को, अपने सोने-चांदी को उधर पाकिस्तान भिजवाने का डौल भी कर लिया था। लेकिन सवाल यह था कि वह जाएगा कहां? किस शहर में जाकर बसेगा? पाकिस्तान के किसी शहर में तिल धरने की जगह नहीं थी। इधर से गए शरणार्थी अभी तक सड़कों पर पड़े हुए थे। उन्हें फिर से बसाने की किसीको चिन्ता नहीं थी। दस दिन, महीना, दो महीने, वे चाहें तो अपने किसी रिश्तेदार के यहां टिक सकते थे, लेकिन उसके बाद क्या करेंगे, बेकार बैठे तो कारूं का खज़ाना भी ख़त्म हो जाता है। आख़िर उन्हें कोई धंधा पकड़ना होगा। खेती-बाड़ी के लिए तो ज़मीन चाहिए। यह सब कुछ कहां से आएगा? ज़मीनें उधर बांटी जा चुकी थीं। मकान अलाट हो चुके थे। और अभी लाखों लोग बेघर थे। कोई उनकी बात तक नहीं पूछ रहा था।

लेकिन शेख़ शब्बीर ने फ़ैसला कर लिया था। उसके घरवाले सोच रहे थे कि अगर भूखों भी मरना है तो पाकिस्तान में जा मरेंगे। अब वे और भारत में नहीं रह सकते थे। शेख़ शब्बीर की हालत दिन-पर-दिन बिगड़ती जा रही थी।

उधर बेगम मुजीब के लंदन-स्थित पुत्र ने जब यह सुना कि उसकी मां पाकिस्तान जाने की सोच रही थी, उसने चिट्ठी लिखी और बेगम मुजीब को समझाया कि वह यह भूल कभी न करे। पाकिस्तान के हालात बड़े

खराब थे। जो लोग वहां महाजर बनकर गए थे, वे पछता रहे थे। पाकिस्तान के पंजाबी किसीके पांव नहीं जमने दे रहे थे। यू० पी० वालों को तो वे ख़ास तौर पर 'भैये' कहकर छेड़ते थे। उनका मज़ाक उड़ाते थे।

बेगम मुजीब की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। इधर ज़ेबा थी कि हर समय पाकिस्तानी लड़कियों के फैशन के गुण गाती रहती। ढेरसारी शलवार-कमीज़ें उसने सिलवा ली थीं। पाकिस्तानी पायचों की 'पौंडियां', पाकिस्तानी कमीज़ों के घेरे। पाकिस्तानी रंग। चुनरियों पर पाकिस्तानी बेल-बूटे। "लाहौर के अनारकली बाज़ार में एक दुकान का नाम 'पाज़ेब' है। एक का नाम 'कहकशां' है।" एक दिन बैठे-बैठे ज़ेबा अपनी मां से कहने लगी।

पिछले कुछ दिनों से बेगम मुजीब हर रोज़ अपने शौहर की क़ब्र पर जाकर घंटों अपने-आपसे बातें करती रहती। अपना दुखड़ा रोती। कहीं उसे अपनी समस्या का हल मिल जाए। उसकी गहरी अंधेरी दुनिया में कहीं रोशनी की कोई किरण दिखाई दे जाए।

कहीं उसका विश्वास नहीं टिक रहा था। जैसे घुप-अंधेरी रात छाई हो। उसे दिखाई नहीं दे रहा था। उसे कुछ सुनाई नहीं दे रहा था। जब से शेख़ शब्बीर बीमार पड़ा था, वह बिल्कुल बेसहारा हो गई थी। कोई नहीं था जो उसे सलाह दे। कोई नहीं था जिसके मशवरे पर उसे भरोसा हो। ज़ेबा बेशक बड़ी हो रही थी, लेकिन थी अभी लड़की ही। उसकी किसी बात पर मां का मन नहीं टिकता था। जो कुछ वह बोल रही होती, एक क्षण-भर के लिए उसे ठीक-ठीक लगता लेकिन फिर वह डांवाडोल हो जाती।

और फिर जैसे एक वज्रपात हुआ हो। एक दिन, तीसरे पहर जब बेगम मुजीब सोकर उठी तो किसी काम से वह गोल कमरे की ओर गई। उसने पर्दा हटाया और उसकी आंखें फटी-की-फटी रह गई। सामने सोफ़े पर महमूद बैठा था, और उसके गोद में सिर रखे हुए ज़ेबा लेटी थी। उन्हीं कदमों से वह अपने कमरे में लौट आई और औंधे मुंह अपने पलंग में जा धंसी।

कुछ देर बाद ज़ेबा उधर आई और उसने देखा कि अम्मी तो बेहोश पड़ी थी। उसकी जीभ दांतों में आ गई थी। और उसमें से ख़ून बह रहा था। पलंग की चादर पर एक बड़ा-सा धब्बा पड़ गया था। बेगम मुजीब के हाथ-पांव ठंडे पड़ गए थे। मुड़ गए थे। ज़ेबा ने अम्मी के दांतों को अलग किया। उसके मुंह में पानी डाला। उसके हाथ-पांव की मालिश की। कितनी ही देर तक वह अपनी मां से जूझती रही। फिर कहीं जाकर उसकी चेतना लौटी।

बेगम मुजीब होश में तो आ गई लेकिन उसकी आंखों में से अविरल अश्रुधारा फूट रही थी। बार-बार वह ज़ेबा की ओर देखती जैसे उसने उसके साथ घोर अन्याय किया हो, और ज़ेबा की ढिठाई की यह हद थी कि अपने परों पर पानी नहीं पड़ने दे रही थी। बार-बार कहती, 'अम्मी, आपको ग़लतफ़हमी हुई है। मैं महमूद से अपनी आंख में लोशन डलवा रही थी।' लेकिन मां अपनी आंखों पर विश्वास करती या अपनी बेटी की हठधर्मी पर?

बेगम मुजीब की समझ में कुछ नहीं आ रहा था, क्या करे! कहां जाए! आख़िर उसने फ़ैसला किया कि चाहे कुछ हो, वह पाकिस्तान चली जाएगी। ज़ेबा को किसीके हवाले करके सुर्ख़रू हो जाएगी। जहां तक उसका अपना सवाल था, शौहर की मौत के बाद, एक औरत अपने बेटे की ज़िम्मेदारी होती है। अगर ज़रूरत हुई तो वह लंदन भी जा सकती थी।

बेगम मुजीब स्वयं दिल्ली गई ताकि पाकिस्तान जाने के लिए परमिट बनवा लाए। एक दिन के लिए गई, उसे कई दिन लग गए। परमिट बनने में देर लग रही थी। हर रोज़ टेलीफ़ोन पर ज़ेबा को बताती रहती कि देर क्यों हो रही थी, क्या अड़चन थी। आख़िर कह-सुनकर उसने अपना और अपनी बेटी का परमिट बनवा लिया।

इतने दिन टाल-मटोल हो रही थी, जब बनने लगा तो एक किसीके टेलीफ़ोन करने पर मिनटों में बनकर तैयार हो गया। उस शाम बेगम मुजीब जब अपने घर लौटी तो ज़ेबा मुंह फुलाए बैठी थी। कह रही थी कि मैं तो पाकिस्तान नहीं जाऊंगी। पीछे हिन्दुस्तान में बाक़ी बचे मुसलमानों

की जगह भारत में है। पाकिस्तान की अपनी समस्याएं क्या कम हैं? उस देश पर और बोझ नहीं डालना चाहिए। और फिर भारत के सारे मुसलमान तो पाकिस्तान जा नहीं सकते। अगर ऊपरी तबके के लोग चले गए तो निचले तबके के गरीब अनपढ़ मुसलमानों का कौन सहारा होगा?

"हमने कोई किसीका ठेका लिया है?" बेगम मुजीब नाराज होकर बोली। लेकिन ज़ेबा अपनी ज़िद पर अड़ी हुई थी। टस-से-मस नहीं हो रही थी।

बेचारी विधवा औरत! बेगम मुजीब को अपनी जवान-जहान पढ़ी-लिखी लड़की के सामने हार माननी पड़ी। और उसने अपने बंद किए हुए सन्दूक खोलने शुरू कर दिए। बेशक शेख शब्बीर और उसका परिवार चला जाए, बेगम मुजीब सोचती, उसके भाग्य में मेरठ में ही मरना लिखा हुआ है। यही उसकी कब्र बनेगी।

बहुत दिन नहीं बीते थे कि शहर में सनसनी फैल गई। कालेज के मुसलमान लड़कों के एक ठिकाने पर छापा मारकर पुलिस ने हथियार भी बरामद किए थे और लिट्रेचर भी जो मुसलमान, अल्पसंख्यकों को भड़काने के लिए तैयार किया गया था। कुछ लड़के भाग गए थे। जो पकड़े गए थे, उनमें महमूद भी था।

ज़ेबा से किसीने कहा था कि उसे पाकिस्तान खिसक जाना चाहिए। महमूद या उसके साथियों पर जब पुलिस सख्ती करेगी, तो वह सब कुछ बक देंगे। और इसमें कोई संदेह नहीं था कि ज़ेबा उनकी पार्टी की एक मुख्य सदस्या थी। हर साज़िश में शामिल वह होती थी। हर कार्यवाही में वह भाग लेती थी।

अब ज़ेबा ज़िद करने लगी कि उन्हें पाकिस्तान चले जाना चाहिए। इससे पहले कि उनके परमिट की तारीख निकल जाए, उन्हें भारत छोड़ देना चाहिए।

"यह देश मुसलमानों के रहने के हरगिज काबिल नहीं।" उठते-बैठते ज़ेबा अपनी मां के कान भरती रहती। "जब पाकिस्तान बना ही इस उसूल पर है कि मुसलमान एक अलग कौम है, और उनके लिए एक अलग

देश बना है तो फिर किसी मुसलमान का भारत में रहने का कोई मतलब नहीं है।"

"लेकिन यह बात मुस्लिम-लीगी कहते हैं, हिन्दुस्तानी कोई नहीं कहता, कांग्रेसी कोई नहीं कहता, महात्मा गांधी कभी नहीं कहता, जवाहर-लाल कभी नहीं कहता कि हिन्दू और मुसलमान दो अलग-अलग क़ौमें हैं।" बेगम मुजीब अपने शौहर के बोल याद कर रही थी, "भारत में हिन्दू और मुसलमान दोनों रहेंगे। दोनों बराबर के शहरी हैं। भारत एक सैक्यलूर लोक-राज होगा।"

"सब कहने की बातें हैं।" ज़ेबा अपनी मां को बहस में हमेशा हरा देती। "सब कहने की बातें हैं। जगह-जगह मुसलमानों के क़त्ल हो रहे हैं। आर० एस० एस० वाले और जनसंघी मुसलमानों के ख़ून के प्यासे हैं। और कुछ बरस, और फिर भारत में कोई मुसलमान दिखाई नहीं देगा। या सारे हिन्दू हो जाएंगे या हिन्दुओं जैसे। हिन्दी भाषा बोलेंगे, हाथ जोड़कर नमस्ते किया करेंगे। मुसलमान लड़कियां माथे पर बिंदियां लगाएंगी और हिन्दू और सिखों के लिए बच्चे पैदा किया करेंगी। जैसे अमृतसर में मेरी एक बहन कर रही है।"

बेगम मुजीब ने तैयारी फिर शुरू कर दी। फिर सामान बांधना शुरू कर दिया। इतने में उनकी जान-पहचान का एक पुलिस अफ़सर आया और बेगम मुजीब को मशवरा देने लगा, "अगर हो सके तो ज़ेबा को कुछ दिनों के लिए इधर-उधर कर दें।"

जवान-जहान लड़की को कहां छिपाती? बेगम मुजीब ने फ़ैसला किया कि वह कल की जाती, आज पाकिस्तान चली जाएगी।

रात की गाड़ी उन्हें पकड़नी थी कि शाम को ख़बर आई, महात्मा गांधी की छाती में किसीने तीन गोलियां दाग कर उसे ख़त्म कर दिया था। क्योंकि वह मुसलमानों का पक्ष लेता था। क्योंकि उसने पाकिस्तान को, करोड़ों रुपये का उनका हिस्सा दिलवाया था, क्योंकि उसने पाकिस्तान को कोयला दिलवाया था, जिसकी कमी के कारण वह देश हाथ-पर-हाथ धरकर बैठ गया था। एक कट्टर हिन्दू ने उसे गोली से उड़ा दिया था।

बेगम मुजीब का सामान—वैसे-का-वैसा बंधा—धरा-का-धरा रह गया।

११

महात्मा गांधी की हत्या का समाचार सुनकर ज़ेबा पर जैसे एक जादू का सा प्रभाव हुआ हो। क्या मजाल जो किसीको गांधीजी के बारे में कोई अपशब्द मुंह से निकालने दे। बापू की एक बहुत बड़ी तसवीर मंगवाकर उसने अपने कमरे में लगा ली थी। प्रायः उस तसवीर के सामने फूल रखे रहते। खुशबूदार गुलाब की कलियां, मोतिया के हार। अपने-आपसे महात्मा गांधी की बातें किया करती। कोई बापू के विरुद्ध एक शब्द कहता तो उसकी आंखों में आंसू भर आते।

गांधी की अंतिम यात्रा में मां-बेटी दोनों शामिल हुईं। लाखों लोग थे। उनमें वे भी थीं। हज़ारों आंखें रो रही थीं। उनमें उनकी पलकें भी नम थीं।

उस दिन से ज़ेबा महात्मा गांधी को हमेशा 'बापू' कहकर याद करने लगी। महात्मा गांधी को 'बापू' कहती और उसके होंठों से एक बेटी का प्यार, एक बेटी का आदर, एक बेटी की श्रद्धा झर-झर पड़ती। उसने तो अपने अब्बा के प्रति कभी इतना सत्कार नहीं दर्शाया था। गांधीजी को 'बापू' कहकर याद करते हुए, शेख मुजीब की बेटी ज़ेबा को यूं लगता, जैसे समूचा भारत उसका अपना घर हो। वह अपने आंगन में खेल रही थी, खा-पी रही थी, परवान चढ़ रही थी। महात्मा गांधी की अस्थियां जब विसर्जित की जा रही थीं, तो वह अपनी कुछ सहेलियों के साथ इलाहाबाद गई। जब लौटी तो कितने ही दिनों तक बेगम मुजीब को समय पर बापू के प्रति लोगों की अपार भक्ति और श्रद्धा की कहानियां सुनाती रही।

इस तरह दिन, महीने, साल बीतने लगे।

आजकल शहर में जिन मुसलमान पर्दानशीन औरतों को ज़ेबा पढ़ाने

जाया करती थी, उनसे कुछ और तरह की बातें करने लगती, जिन्हें सुन-सुनकर वे हैरान होती रहतीं। वह तो अपने अब्बा शेख़ मुजीब की भाषा बोलने लगी थी।

आजकल ज़ेबा उन्हें बताया करती—हमारे देश में मुसलमानों के आने से पहले भी एक से ज़्यादा धर्म होते थे। उन लोगों में भी ग़लत-फ़हमियां हुआ करती थीं। असल में सब धर्म एक जैसे होते हैं। सब धर्म बराबरी और सच का प्रचार करते हैं। ईमानदारी की ज़िन्दगी जीने की प्रेरणा देते हैं। बाहर से आए मुसलमान शासकों को इस बात का एहसास था कि कोई धर्म न तो जड़ से मिटाया जा सकता है और न कोई हमलावर किसी देश के लोगों पर उनकी रज़ामंदी के बिना ज़्यादा दिन राज्य कर सकता है। इसलिए ज़्यादातर मुसलमान हुक्मरान हिन्दू धर्म की इज्ज़त करते थे।

इस्लाम और हिन्दू धर्म को क़रीब लाने में सूफ़ियों और संतों ने बड़ी मदद की। इनमें ख़्वाजा कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी ने दिल्ली में, बाबा फ़रीद शकरगंज ने अजोधन (पंजाब) में और हज़रत मोइनुद्दीन चिश्ती ने अजमेर (राजस्थान) में अपने-अपने केन्द्र बनाकर प्रचार शुरू किया। इधर चैतन्य महाप्रभु, भक्त कबीर और गुरु नानक जैसे कई और संतों ने उनके स्वर-में-स्वर मिलाया। उन्होंने कहा—जात-पांत सब झूठ है। सब बन्दे एक ख़ुदा की औलाद हैं। ईश्वर की भक्ति ही आदमी को पार उतार सकती है।

आपसी मेल-जोल की इस लहर को अकबर के राज्य में बढ़ावा मिला। अकबर ने सब धर्मों की अच्छी-अच्छी बातों को अपनाया। हर मज़हब में दूसरे किसी मज़हब से टकराव वाली बातों को नज़रअंदाज़ किया। अबुलफ़ज़ल ने अकबर के सिद्धान्त को इस तरह बयान किया है: 'एक ही अलौकिक सौंन्दर्य है, जो अलग-अलग ढंग से जलवा दिखाता है।'

अकबर से पहले उसके दादा बाबर ने अपने बेटे हुमायूं को इस तरह की ही हिदायत की थी :

१. कभी मज़हबी तास्सुब में मत पड़ना। अपनी प्रजा के धर्म और

रीति-रिवाजों का खयाल रखना।

२. गोहत्या से परहेज करना। इस तरह यहां के लोग तुम्हारे शुक्र-गुज़ार होंगे।

३. किसी धार्मिक स्थान का निरादर मत करना। हमेशा इंसाफ़ करना ताकि तुम्हारे राज्य में अमन-शान्ति बनी रहे।

४. इस्लाम का प्रचार मुहब्बत से ही हो सकता है।

तभी तो हुमायूं ने हिन्दू रानी कर्णवती की राखी कबूल की और उसे अपनी बहन बनाया। अकबर और उसके बाद मुग़ल बादशाहों की हिन्दू रानियों के साथ शादियां होने लगीं। मुग़ल महलों में हिन्दू रीति-रिवाज आ गए। एक ओर मस्जिद में अज़ान दी जा रही होती, दूसरी ओर मन्दिर में घंटे-घड़ियाल बज रहे होते। वेद और शास्त्रों के, रामायण और महाभारत के फ़ारसी में अनुवाद हुए। फारसी और अरबी ग्रंथों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद किया गया।

उस ज़माने के एक शायर ने कहा है

'चश्मे वहदत से गर कोई देखे
बुत परस्ती भी हक परस्ती है।'

इसी तरह १८वीं और १९वीं सदी में कई उर्दू शायरों ने हिन्दू देवी-देवताओं के बारे में लिखा। 'बेदिल' ने अपनी एक नज़म में रामचन्द्रजी का बखान किया। नज़ीर अकबराबादी ने शिव, कृष्ण और नानक के गुण गाए।

सारी खराबी शुरू हुई जब फिरंगी हमारे देश में आया। वही हममें फूट डालकर खुश था। अंग्रेज़ों के आने के बाद हिन्दू और मुसलमानों के बीच खाई डाली गई। फिर यह खाई बढ़ने लगी। कोई-न-कोई शह देकर फ़िरंगी इस आग को भड़काते रहते।

लेकिन कई सदियों से एकसाथ रहते हुए हिन्दू और मुसलमान भारत में एक-जान हो गए थे। वक्त ने उनके भेद-भाव मिटा दिए थे। समाज की भट्ठी में ढलकर वे एक क़ौम बन चुके थे। एक-से सपने, एक-से रिवाज!

हिन्दुओं की तरह अब भारतीय मुसलमानों में भी जात-पात का फ़र्क

माना जाने लगा है। सैयद ब्राह्मणों की तरह हैं और मुसलमान राजपूत, क्षत्रियों की तरह। शूद्रों की तरह किसी भंगी का मस्जिद में घुसना बुरा समझा जाता है।

इस तरह की बातों के साथ-साथ ज़ेबा उन्हें अपने देश को छोड़कर गए महाजरों की कहानियां भी सुनाती। उसके अपने ताऊ सब कुछ बेच-बाचकर पाकिस्तान चले गए थे। इधर उनका बोलबाला था, उधर दर-दर की ठोकरें खा रहे थे। कोई पूछने वाला नहीं था। न रहने के लिए घर मिल रहा था, न खेती के लिए ज़मीन। न किसी और काम-काज की जुगत बन रही थी।

क़ायदे-आज़म मुहम्मद अली जिन्नाह अल्लाह को प्यारे हो चुके थे। लियाक़त अली को रावलपिंडी के एक जलसे में गोली मार दी गई थी। वहां की सरकार ने पूरी कोशिश की थी लेकिन किसीकी समझ में नहीं आ रहा था कि एक जनता के प्यारे लीडर को क्यों ख़त्म कर दिया गया था।

जब भी कोई अन्दरूनी मामला पाकिस्तानी हुक्मरानों के सामने आता, झट अपने लोगों का ध्यान कश्मीर की ओर दिलाने लगते। भारत की झूठी-सच्ची बातें उड़ाने लगते। बार-बार अपने लोगों से कहते कि भारत ने दो क़ौमों के सिद्धान्त को नहीं माना, किसी समय भी हमला करके वह पाकिस्तान को हड़प सकता है। भारत के विरुद्ध ज़हर फैलाते और इस नफ़रत को किसी-न-किसी तरह बनाए रखते।

सबसे ज़्यादा हैरानी बेगम मुजीब को हो रही थी। उसे अपनी आंखों पर भरोसा नहीं हो रहा था। अपने कानों पर यक़ीन नहीं होता था। ज़ेबा तो अपने अब्बा से भी चार क़दम आगे निकल गई थी।

ज़ेबा और सीमा में पत्र-व्यवहार होता रहता। ज़ेबा अमृतसर जाकर अपनी बहन से एक से ज़्यादा बार मिल भी आई थी। सीमा के यहां बेटा हुआ, लेकिन बच्चा वक़्त से पहले हो गया था। डाक्टरों ने पूरी कोशिश की मगर वह बच नहीं सका।

दूसरी बार सीमा के यहां बेटी हुई। उन दिनों ज़ेबा अपनी बहन के पास ही थी। वह हैरान रह गई। बच्ची हू-ब-हू अपनी नानी की शक्ल

थी। सीमा अपने अब्बा पर थी। अब्बा जैसी नाक, अब्बा जैसा माथा। अब्बा का रंग-रूप, कोई बात भी तो उसमें अम्मी की नहीं थी। और यह बच्ची जो उसने पैदा की थी, बेगम मुजीब की तरह गोरी-चिट्टी थी। बेगम मुजीब की तरह बड़ी-बड़ी काली आँखें। बेगम मुजीब की तरह कोमलांगी, लम्बी-लम्बी उंगलियां, तीखी नाक, जब मुंह ऊपर उठाती तो बेगम मुजीब की तरह उसके गालों में गड्ढे पड़ जाते।

बेगम मुजीब गुन-गुनकर हैरान होती रहती। पता नहीं किस कोने में सीमा ने अपनी अम्मी को छिपाकर रखा हुआ था, और अपनी बेटी में फिर उसे मूर्तिमान कर दिया था।

जेबा कहती —उस बच्ची में न तो कहीं कोई मिस्र था, न कहीं कोई पंजाबी था, न कहीं कोई अमृतसरी रंग था। वह तो हू-ब-हू अपनी नानी की नवासी थी। उसे देखती तो जेबा का बच्ची के लिए प्यार छलक-छलक पड़ता।

लेकिन बेगम मुजीब थी कि टस-से-मस नहीं हुई। वह अभी तक सीमा को माफ़ नहीं कर पाई थी। अभी तक वह उसे मुंह नहीं लगा सकी थी।

१२

फिर एक बार जब जेबा अमृतसर गई, कालू को अपने साथ ले आई। वह फिर पहले की तरह घर में रच-बस गया।

महमूद उस दिन बेगम मुजीब से मिलने आया। कालू ने देखा और जल्दी से बेगम मुजीब के कमरे की ओर लपका।

"बेगम साहब, आपसे मिलने के लिए कोई लड़का आया है।"

"कौन है?"

"मैंने नाम तो नहीं पूछा, लेकिन कोई खूबसूरत-सा नौजवान है।"

बेगम मुजीब ब्लाउज और पेटीकोट में घूम रही थीं। उसने सारी

पहनी। शृंगार-मेज़ के सामने पल-भर रुककर बालों को संवारा और लोग कमरे में चली गई। महमूद को देखकर बेगम मुजीब का चेहरा उतर गया। महमूद ने उठकर ज़ेबा की अम्मी को आदाब किया।

"फरमाइए !" कुछ देर चुप बैठे रहने के बाद बेगम मुजीब ने ख़ामोशी को तोड़ते हुए कहा।

महमूद अभी भी चुप था।

"आप कब रिहा हुए ?" बेगम मुजीब ने पूछा। पुलिस के छापे के बाद कई महीने महमूद पर मुक़दमा चला और फिर सज़ा हो गई।

उसे रिहा हुए कई दिन हो चुके थे, बेगम मुजीब को इसका पता नहीं था।

"बेटा···और सब कुछ मैं समझ सकती हूं···" महमूद को 'बेटा' कहते हुए बेगम मुजीब की जीभ ज़रा लड़खड़ाई। फिर जो बात वह कहना चाह रही थी, उसके होंठों पर जैसे रुकी रह गई।

"जी, अम्मीजान !" महमूद कैसे प्यारी तरह उसे संबोधित कर रहा था। उसके बोल बेगम मुजीब की छाती में छिपी मां के तारों को झनझना गए। लेकिन फिर सहसा उसकी आंखों के सामने उस दोपहर का दृश्य घूम गया जब उसने सोफ़े पर, ठीक वहीं, जहां वह बैठा हुआ था, ज़ेबा का सिर उसकी गोद में देखा था। आंखें मूंदे, एक उन्माद में वह लेटी हुई थी। बेगम मुजीब के अंग-अंग में एक कड़वाहट घुल गई।

"और सब कुछ मेरी समझ में आ सकता है," बेगम मुजीब ने फिर बोलना शुरू किया, "पर किसी आंदोलन का हिंसा पर उतर आना माफ़ नहीं किया जा सकता।" बेगम मुजीब अपने शौहर की ज़बान बोल रही थी। महात्मा गांधी की छाया में परवान चढ़ी, वह बापू का वाक्य दोहरा रही थी।

"अम्मी ! मैं आपकी बात समझा नहीं ?" यह लड़का कितना मीठा बोल रहा था ! जब होंठ खोलता, उसके बोल बेगम मुजीब की छाती में जा लगते, जैसे किसी साज़ के तारों को कोई छेड़ रहा हो। बेगम मुजीब न चाहते हुए भी उसकी ओर देखने को मजबूर हो जाती।

गेहुआं रंग, गालों पर एक गुलाब-सा खिला हुआ, आंखों में एक

आकर्षण। माथे पर एक मजीदगी, दूर-दृष्टि की झलक। होंठों पर शहद-सा घुना हुआ; मन की बात कहने की एक ललक। एक खुशबू की तरह, जैसे वह लड़का उसके प्राणों में उतरता जा रहा हो।

एक अजीब-सा संघर्ष बेगम मुजीब के मन में चल रहा था। यह लड़का जिसने उसकी बेटी को गुमराह किया था, उसे बुरा क्यों नहीं लग रहा था?

"यह तो मैं मानता हूं कि हममें एक पूरी पीढ़ी का फ़ासला है, लेकिन अम्मी, हमने कोई ऐसी बात तो की नहीं, जिसके लिए हमें शर्मिंदा होना पड़े।" महमूद के बोलों में आदर था, श्रद्धा थी।

बेगम मुजीब के होंठों पर जैसे फिर ताला लग गया हो। इतने मिठ-बोले लड़के से विरोध प्रकट करने में उसे कठिनाई महसूस हो रही थी।

जब वह अपनी आंखों से देख चुकी थी कि ज़ेबा का सिर उसके घुटनों पर था, उसकी चोटी उसके सीने पर अलसाई हुई-सी पड़ी थी। फिर ज़ेबा क्यों बार-बार कहती थी कि उसने ग़लत समझा था? अपनी आंखों में वह सौगन्ध डलवा रही थी। क्यों ज़ेबा झूठ बोलती थी? आज तक उसने अपना क़ुसूर नहीं माना था।

क़ुसूर?

फिर ये शब्द एक प्रश्न-सूचक चिह्न बनकर बेगम मुजीब की आंखों के सामने मंद-मंद मुसकराने लगे।

और बेगम मुजीब को अपनी जवानी के दिन याद आने लगे। शेख़ मुजीब के साथ अपनी मुहब्बत का बुख़ार। तोबा! तोबा! परदेवाली हवेली में क्या-क्या बहाने उसे गढ़ने पड़ते थे। अगर उसकी अन्ना मदद न करती तो यह मंज़िल उससे कभी पार न होती। शेख़ मुजीब की वह दीवानी थी। बातें करते-करते उसके माथे पर बालों की जो लट खेलने लगती, उसे बहुत भाती थी।

"आपने मुझे मेरा क़ुसूर नहीं बताया?" बेगम मुजीब को एकाएक मौन देखकर महमूद ने प्रश्न किया।

बेगम मुजीब ने आंखें उठाकर उसके चेहरे की ओर देखा। उसके माथे पर, हू-ब-हू शेख़ मुजीब जैसी एक लट बेक़रार हो रही थी। बेगम मुजीब को

जैसे किसीने झकझोर दिया हो। उसका चेहरा तमतमा उठा। "मेरा मतलब है···", वह ख़फ़ा होकर कुछ कहना चाहती थी, लेकिन फिर उसकी ज़बान जैसे रुक गई हो।

"अम्मीजान ! अगर आपको अपनी नाराजगी जाहिर करने में कोई मुश्किल हो, तो फिर कभी सही। मेरा इरादा आपको परेशान करने का नहीं है।" महमूद में असीम धैर्य छलक रहा था।

"नहीं, नहीं, बेटे," और फिर जैसे बेगम मुजीब ने हथियार डाल दिए हों। बेगम मुजीब के मुंह से ये शब्द निकलते ही मानो वह पूरी-की-पूरी प्रेम की मूर्ति बन गई हो।

"मेरा मतलब यह है कि तुम्हारी पार्टी के दफ़्तर में, ग़ैरक़ानूनी असलहे का मिलना मुझे बहुत बुरा लगा।"

"असलहा ? अम्मीजान ! आपने सारी उम्र फ़िरंगी से लड़ाई लड़ी है। आपको पुलिस के हथकंडे मालूम नहीं ?" महमूद ने हैरान होकर कहा।

बेगम मुजीब फटी-फटी आंखों से उसके भरपूर जवानी के चेहरे की ओर देख रही थी। ऐसा मुंह कभी झूठ नहीं बोल सकता ?

"पुलिस ने हमारे दफ़्तर को घेर लिया। हम सबको पहले एक अलग कमरे में बंद कर दिया। फिर वे चारों तरफ़ तलाशी लेने लगे। कुछ देर के बाद जब उन्होंने बंद कमरे का दरवाज़ा खोला तो सामने बरामदे में रिवाल्वर और हथ-गोले पड़े हुए थे। ढेर-सारे इश्तिहार पड़े हुए थे, जो हमने कभी देखे भी नहीं थे।"

"क्या मतलब ?"

"पुलिस वाले आप ही यह सब कुछ कहीं से लाए और हमारा नाम लगा दिया। हम देख-देखकर हैरान हो रहे थे। एक-दूसरे के मुंह की ओर देख रहे थे।"

"इश्तिहार भी आपके नहीं थे ?"

"यह मैं नहीं कहता कि सारे इश्तिहार हमारे नहीं थे, लेकिन कुछ इश्तिहार जिन्हें ख़ास तौर पर मुकदमे में पेश किया गया, वे हरगिज़-हरगिज़ हमारे नहीं थे। हमने तो उन्हें पहले कभी देखा तक नहीं था।"

"इतना झूठ !"

"झूठ-सा झूठ ! उन इश्तिहारों में कुफ्र तोल रखा था। और सितम यह है कि ज़बान तक ग़लत थी।"

"फिर भी तुम लोगों को मज़ावार ठहराया गया ! जेल में ठूसा गया !"

"कैद काटना कोई इतना मुश्किल नहीं था, जितना तफ़तीश के दिनों में हमें सताया गया। अम्मीजान ! आपने हिंसा का ज़िक्र किया था, हम पर कौन-कौन-सा ज़ुल्म पुलिस ने नहीं ढाया जब हम उनके कब्ज़े में थे।"

"बेटा, मुझे बताने की ज़रूरत नहीं। फिरंगी के ज़माने में हमारे सिर पर यह सब बीत चुकी है।"

"हमारी पुलिस अब उससे भी चार कदम आगे निकल गई है।"

और फिर महमूद ने अपनी एक आस्तीन उठाकर बेगम मुजीब को अपनी बाह दिखाई। जगह-जगह घाव के निशान थे। मानो को जैसे जम्बूरों से नोचा गया हो।

"मेरे सारे जिस्म का यह हाल है।" महमूद ने कहा, "मुझे सबसे ज़्यादा पीटा गया। मुझपर सबसे ज़्यादा कहर ढाया गया ताकि मैं इस बात का इकबाल कर लूं कि ज़ेबा भी हमारे साथ थी।"

"बेटा ! तुम इकबाल कर लेते। ज़ेबा तुम्हारे साथ शामिल थी, इसमें झूठ क्या है ?"

"हा-हा अम्मीजान ! यह बात बार-बार मेरे होंठों पर आकर रुक जाती। मैं नहीं चाहता था कि ज़ेबा को भी हमारी तरह परेशान किया जाए।"

"परेशानी से कोई नहीं डरता, जितनी मुझे इस बात पर शर्म महसूस होती कि मेरी बेटी किस कुसूर पर धर ली गई थी," बेगम मुजीब ने सोचते हुए कहा।

"क्या मतलब, अम्मी ?"

"मेरा मतलब है कि किसी हिन्दुस्तानी मुसलमान का अपने मुल्क को छोड़कर पाकिस्तान की ओर देखना देशद्रोह है।"

बेगम मुजीब ने देखा, महमूद के चेहरे का रंग उड़ गया था।

१३

“महमूद आया था,” उस दिन शाम को जव ज़ेवा से वेगम मुजीव की मुलाक़ात हुई, मां ने वेटी को वताया।

ज़ेवा ने जैसे उसे सुना-अनसुना कर दिया हो।

“अम्मी ! जिन औरतों को मैं पढ़ाने जाती हूं, उनमें से एक मेवाती है,” ज़ेवा मां को वता रही थी, “मेवाती आर्यों की नस्ल से है। इनका रहन-सहन, इनके रीति-रिवाज, मुसलमान होने के वावजूद आर्यों जैसे हैं। मेवाती वारह ‘पालों’ और वावन गोत्रों में वंटे हुए हैं। इस औरत का मायका, दिल्ली के पास वल्लभगढ़ में है। इनकी शादी हिन्दू रस्मों से होती है, निकाह भी इसमें शामिल है। वारात तीन दिन लड़की वालों के घर टिकती है। एक ही गोत्र में शादी नहीं हो सकती। आम तौर पर शादियां सावन के महीने में होती हैं। ये लोग देवी-देवताओं को पूजते हैं। होली भी मानते हैं, मुहर्रम भी !”

उस शाम सोने से पहले वेगम मुजीव अपनी मेज़ की दराज में कुछ टटोल रही थी कि पुराने काग़ज़ों में से उसके हाथ एक तसवीर आई। एक क्षण के लिए उसे लगा जैसे वह महमूद की तसवीर हो। वहां रोशनी काफ़ी नहीं थी। वेगम मुजीव ने तसवीर को देखा और सिर से पांव तक कांप गई। अगले ही क्षण वह मुसकराने लगी। वह तसवीर तो उसके शौहर की थी। उन दिनों वह हू-व-हू महमूद जैसा लगता था। इकहरा वदन, ऊंचा-लम्वा कद, सांवला रंग, सोच में डूवा हुआ। जैसे नज़रें दूर किसी मंज़िल पर लगी हुई हों। वालों की एक नटखट लट माथे पर जैसे मचल-सी रही हो। उनके होंठों की वनावट एक जैसी थी; वात करने का ढंग एक सा था; वही लहजा, वही मुहावरा। वैसी-की-वैसी मीठी ज़वान। अपने ौहर को कभी उसने ख़फ़ा होते नहीं देखा था, कभी ऊंची आवाज़ में लते हुए नहीं सुना था।

इन्हीं विचारों में खोई हुई वेगम मुजीव की आंख लग गई। गर्मी के थे। ये लोग वाहर आंगन में ईंटों के फर्शी चवूतरे पर सो रहे थे। ी-अपनी मच्छरदानियों में वंद। ज़ेवा का पलंग वेगम मुजीव से काफ़ी

फ़ासले पर था। हर रोज़ सोने से पहले नहाती। बालों में कंघी फेरती। कोल्ड-क्रीम लगाती। कितनी-कितनी देर तक हाथों, गालों, मुंह-माथे की मालिश करती रहती। और फिर वैसे-के-वैसे खुले बाल, खुशबू-खुशबू अपने पलंग पर आकर लेट जाती। इधर लेटती उधर उसकी आंख लग जाती।

उस रात सोने से पहले ज़ेबा पंजाबी में कुछ गुनगुना रही थी :

'मन परदेसी जे थिए सब देस पराया।'

बेगम मुजीब की छाती में जैसे ये बोल चुभ रहे हों। "बेटी, ये बोल किसके हैं?" अम्मी ने आवाज़ देकर ज़ेबा से पूछा। आप-से-आप वह यही गुनगुनाती जा रही थी।

"बाबा नानक के ये बोल हैं अम्मीजान!" और ज़ेबा ने फिर उन बोलों को गाकर दुहराया :

'मन परदेसी जे थिए सब देस पराया।'

"बाबा नानक की यह वाणी मैं भारत के सारे मुसलमानों को सुनाना चाहती हूं। ये बोल सबको ज़बानी याद कराना चाहती हूं।" और फिर कितनी ही देर तक वह यही बोल गुनगुनाते-गुनगुनाते सो गई। बेगम मुजीब को भी यही बोल सुनते-सुनते आंख लग गई।

सावन-भादों की रात थी। आकाश पर बादल मंडरा रहे थे। बादलों में चांद आंख-मिचौनी-सी खेल रहा था, जैसे कोई मुसाफ़िर रास्ता भूल गया हो। रात कुछ और गहरी हुई और ठंडी-मीठी हवा चलने लगी। ज़रूर कहीं पानी बरसा होगा। अलीगढ़ में मेंह पड़ जाता, दिल्ली में बूंदा-बांदी हो जाती, लेकिन कितने दिनों से मेरठ वैसे-का-वैसा सूखा रह जाता। बादल आते और बिखर जाते।

सोते-सोते पानी की एक बूंद बेगम मुजीब के गाल पर पड़ी। कोई एक भूली-भटकी बूंद थी। वर्षा का कहीं नाम-निशान नहीं था। बेगम मुजीब जैसे पूरी-की-पूरी सरशार हो गई। एक स्वाद-स्वाद। आंगन के बाहर, कालू देर-रात की फ़िल्म देखकर लौटा था। 'तू कौन-सी बदली में मेरे चांद है, आ जा।' फ़िल्म का कोई गीत गुनगुना रहा था।

'क़ुदसी!'

'कौन मुजीब ?'

'हां।'

'मुजीब ! तुम यहां कैसे ?'

'तुम्हारी अन्ना ने रास्ता बताया है।'

'अन्ना बड़ी ख़राब है।'

'धीरे बोलो। आधी रात का वक़्त है। सब सो रहे हैं।'

और फिर वह उसके पलंग पर बैठ गया। दूध-सी सफ़ेद चादर पर, दूध-सी सफ़ेद चांदनी में। धूप-सी सफ़ेद मच्छरदानी का दिल-फ़रेब पर्दा। दीवानों की तरह उसके बालों से खेल रहा था! कैसे उसके रेशम के लच्छों से उसके मुंह-माथे को बार-बार ढांपने लगता। उसकी आंखों को, उसके गालों को। कभी उसके बालों को उसकी गर्दन में लपेटता, दायें से बायें, बायें से दायें और फिर उसके गोरे-चिट्टे चेहरे को, मच्छरदानी से बाहर निकालकर, चांद को दिखाता। उसका मुंह-माथा जैसे दहक रहा हो। उसकी उंगलियां जैसे मचल रही हों। उसके हाथ जैसे बेकाबू हो रहे हों। उसकी बांहें जैसे बेकरार हो रही हों। यह वह क्या कर रहा था? उसके गले का एक बंद उसने खोल लिया था। उसके कंधे अनढके थे। उसकी अंगिया के बंधन एक-एक करके खुल गए थे। आंखें मूंदे वह मदहोश पड़ी हुई थी। जैसे संगमरमर की मूर्ति हो। दूध-सी सफ़ेद चांदन में शबनम के मोतियों से उसे नहलाया जा रहा था। और फिर उसप जैसे फूल-पत्तियां बरसने लगीं। खुशबू-खुशबू-सी चारों ओर फैल गई। ए स्वाद-स्वाद में वह मदमस्त हुई जा रही थी। एक नशा-नशा, एक मधुर मादकता-सी ! वह तो जैसे आबे-हयात के किसी चश्मे में गोते लगा रह हो। मोतियों जैसा झिलमिल-झिलमिल करता पानी ! नीम-गरम-सा, जै मुहब्बत में मुग्ध होंठों का सेंक हो। और फिर चारों ओर जैसे साज़ ब उठे। तार झनझनाने लगे। कोई स्वर ऊंचा, और ऊंचा होता जा रहा था यह कौन गा रहा था ? स्वर में स्वर मिल रहे थे। एक, दो, दस, बीस-प पचास। मरद-औरतों के मिले-जुले सुर। और अब वे नाच रहे थे। दू सफ़ेद कपड़े, बांहों में बांहें, नाच-नाचकर न थकते थे, न हारते थे। ना नाचते आकाश में उड़ने लगते। नाचते-नाचते धरती पर उतर

ऊपर, नीचे। नीचे, ऊपर। तेज और तेज। माज थक-थक रहे थे। ताल टूट-टूट रही थी, लेकिन नाच की चाल वैसी-की-वैसी थी। बाहों की उठान वैसी-की-वैसी थी। अब किसीने गुलाल लुटाना शुरू कर दिया था। रंगों में से रंग उभरने आ रहे थे। लाल और नीले। हरे और पीले। रंग और रंगों की आभा, रंग और रंगों की चमक-दमक, रंग और रंगों की गहराई; वह तो डूबती चली जा रही थी—कोई उसे अपने बाज़ू में भरकर नीचे और नीचे लिए जा रहा था। जैसे कोई सोए-सोए सागर पर तैर रहा हो। थिरे-थिरे पानियों पर जैसे कोई फिसलता चला जा रहा हो। ···

अचानक किसीके चीख़ने की आवाज सुनाई दी। यह तो ज़ेबा की चीख थी। इस वक़्त। आधी रात इधर, आधी रात उधर। बेगम मुजीब झट अपनी मच्छरदानी से निकल, ज़ेबा के पलंग पर जा पहुंची। ज़ेबा घबराई हुई थी, परेशान-हाल; फटी-फटी आंखें, अपने पलंग पर बैठी जैसे अपने-आपको अपनी बाहों में छुपा रही हो।

"वह था, वह।" ज़ेबा की आवाज नहीं निकल रही थी।

"कौन था, बेटी?" बेगम मुजीब ने मच्छरदानी हटाकर ज़ेबा को अपने गले से लगा लिया।

"वह था ··· वही था।" ज़ेबा ने अपनी अम्मी की ओर घूर-घूरकर देखा।

"कौन था, बेटी? यहां तो कोई भी नहीं।"

"वह था, महमूद!" ज़ेबा ने कहा और अपनी अम्मी की गोद में सिर रखकर लेट गई। एक क्षण, और फिर वह गहरी नींद सो गई थी।

सपना था। बेगम मुजीब को यकीन था कि यह सपना था। लेकिन फिर भी वह ज़ेबा का सिर उसके तकिये पर टिकाकर, आंगन में चारों ओर देखने लगी। उसने बरामदे के कोने में झांका। फिर सामने पेड़ के पीछे। फिर दीवार की परछाईं में। कहीं भी तो कोई नहीं था। आंगन की चारदीवारी के बाहर कालू सोया हुआ था। उसकी चारपाई के पास उसका कुत्ता मोती बैठा रहता था। उधर तो कोई चिड़िया भी पर नहीं मार सकती थी।

सपना था, सपना। और फिर बेगम मुजीब अपने पलंग पर आकर

बैठ गई। वह भी तो सपना देख रही थी। कितना प्यारा था उसका सपना! बेगम मुजीब बार-बार अपने बिस्तर की चादर को हाथ लगाकर देखती। सपना था, केवल सपना।

१४

बेगम मुजीब को महमूद अच्छा-अच्छा लगने लगा था। क्यों? इसका कारण वह स्वयं नहीं जानती थी। अकेली, खिड़की में खड़ी वह अपने मन को टटोल रही थी।

लेकिन वह लड़का था किसका? बेगम मुजीब ने एक-दो बार जेबा से उसके बारे में बात शुरू की। लेकिन वह तो जैसे उसका नाम तक सुनने को तैयार न हो। उस दिन मां-बेटी में बदमज़गी भी हो गई थी। मेज पर खाना खाते हुए, बातों-बातों में महमूद का जिक्र आ गया। बेगम मुजीब ने कहा, "मुझे तो यह लड़का बड़ा अच्छा लगता है।"

"तो फिर अम्मी! आप ही क्यों नहीं ···" पता नहीं क्या बकने लगी थी। आजकल जेबा बहुत मुंहजोर होती जा रही थी। उसे जैसे एकदम क्रोध आ गया हो। वह खाना बीच में ही छोड़कर, मेज से उठ गई।

इस तरह की परिस्थितियों में बेगम मुजीब का एक नौजवान लड़के के बारे में सोचना, बेशक उसे अजीब-अजीब-सा लग रहा था। पर सच्चाई यह थी कि खिड़की में अकेली खड़ी, बंगले के विशाल लॉन को देखते हुए वह महमूद के बारे में सोच रही थी।

कालू घर के पिछवाड़े, आंगन में ग्वाले को छेड़ रहा था, "तुम कहीं दूध में 'हिन्दू पानी' मिलाकर तो नहीं लाते हो? चुटिया वाले का कोई भरोसा नहीं। हमारी बेगम साहिबा का ईमान कहीं ख़राब न कर देना। पानी मिलाना हो तो मुसलमानी-मटके में से निकालकर मिलाया कर।"

"लो, मुझे आगे जाकर क्या जवाब नहीं देना पड़ेगा? और फिर आजकल हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे को एक आंख देख नहीं सकते।"

ग्वाला सुन-सुनकर हँस रहा था, "मैं तो कमेटी के नल का पानी मिलाता हूं जितना भी मुझे मिलाना होता है।"

"नल की भी तो हिन्दू लोग शुद्धि कर लेते हैं।"

"मेरी गाय जो मुसलमान है, मैंने शेखों की मंडी से उसे खरीदा था।"

"गाय कैसे मुसलमान हो सकती है? यह तो पैदा भी हिन्दू होती है और मरती भी हिन्दू है।"

"तभी तो मैं कहता हूं, भैंस का दूध लिया करो। लेकिन बेगम साहिबा तो सारी उम्र गाय का दूध ही लेती रहीं।"

"शुक्र करो, महात्मा गांधी के इन चेलों ने बकरी का दूध शुरू नहीं कर दिया।"

खुद हंस रहे थे। बाकी नौकरों को हंसा रहे थे। इनमें बावर्ची था, जमादार था, माली था।

खिड़की में खड़ी बेगम मुजीब को ध्यान आया, कि उसी खिड़की में खड़े होकर वह अपने शौहर की राह देखा करती थी। उसका जीवन तो एक लम्बी प्रतीक्षा थी। इन्तजार के लमहों की जैसे एक माला पिरोई हो। हर तरह की उसमें कड़ियां जुड़ी थीं। लम्बी प्रतीक्षा की, छोटी प्रतीक्षा की, प्रतीक्षा जो कभी समाप्त न हुई, प्रतीक्षा जो एक क्षणभर के मिलन में संतुष्ट हो गई। इस खिड़की में खड़े होकर वह इंतजार करती थी, और उसकी मोटर गेट में से होती हुई पोर्च में आ रुकती थी। कभी उसकी बग्घी के घोड़ों की टाप सुनाई देने लगती। इस खिड़की में खड़े होकर, कई बार उसने पुलिस की हिरासत में उसे आते हुए देखा था। फूलों के हारों में लदा हुआ, उसे जुलूस में आते हुए देखा था। जब वह आता, इन्कलाब जिंदाबाद के नारे गूंज रहे होते, जब वह जाता, इन्कलाब जिंदाबाद के नारे गूंज रहे होते।

बेगम मुजीब, खिड़की में खड़ी, इन विचारों में डूबी हुई थी कि उसने देखा कि सामने कोठी का गेट खुला और महमूद आ रहा था। खादी का कुरता, खादी का दूध-सा सफेद पायजामा, पांव में चप्पल। गेट में घुसते ही उसने अपने बढ़े हुए बालों को सिर झटककर पीछे किया। हू-ब-हू इसी तरह उसका शौहर किया करता था। नीचे जमीन को देखते हुए, हमेशा

किसी ख़याल में खोया रहता। यूं आंखें नीचे किए हुए, सिर झुकाए कोई देखे तो वाल मुंह पर आ पड़ते ही हैं। और वह कभी हाथों से, कभी सिर झटककर उन्हें पीछे करता रहता।

'आप इन्हें छोटा क्यों नहीं करवा लेते?' वेगम मुजीव अपने शौहर से कहा करती थी।

'इसके लिए वक़्त कहां से लाऊं, वेगम?' वह जवाव देता।

'तव तो आप आज़ादी मिलने पर ही वाल कटवाएंगे?' वेगम मुजीव उसे छेड़ा करती थी।

और अगले क्षण, महमूद के साथ गोल कमरे में बैठी वेगम मुजीव उसे यह वात सुना रही थी। शर्म से महमूद का मुंह लाल-सुर्ख हो गया था। सचमुच उसके बाल कुछ ज़्यादा ही बढ़ गए थे। अपने बालों को, दायें हाथ से पीछे करते हुए वह बोला, "हमें तो आज़ादी अभी मिलनी है।"

"क्या मतलव?" वेगम मुजीव जैसे तिलमिला उठी हो।

"अम्मी! वेचारे हिन्दुस्तानी मुसलमान तो कसमपुर्सी की हालत में हैं। आपको मालूम है, अलीगढ़ में हिन्दू-मुसलमान फ़साद शुरू हो गए हैं?"

"हाय अल्ला! यह कव?" वेगम मुजीव तड़प उठी। उसके मायके अलीगढ़ में थे।

"आज सुवह ही।" महमूद ने कहा। यह कहते हुए उसकी जवान रा-सी लड़खड़ाई।

"लेकिन हुआ क्या?" वेगम मुजीव परेशान थी।

"फ़िरक़ावाराना फ़साद शुरू करने के लिए, फ़सादियों की जरूरत ती है, वहाना कोई भी ढूंढ़ा जा सकता है।" महमूद वड़ी वेपरवाही से रहा था, जैसे एक फ़िरक़े का दूसरे फ़िरक़े से दंगा करना वच्चों का हो।

"कोई वारदातें हुई होंगी? मेरे तो मायके अलीगढ़ में हैं।"

"किस इलाक़े में वे लोग रहते हैं?"

"यूनिवर्सिटी के पास।"

"फिर कोई ख़तरा नहीं। फ़साद तो शहर में शुरू हुए हैं।"

"लेकिन यह आग लगी कैसे ?"

"मामला सारा पेट का है। हिन्दू चाहता है कि मुसलमान के मुंह की रोटी छीन ली जाए। अलीगढ़ के हिन्दू कहते हैं कि उनके देवी-देवताओं की पीतल की मूर्तियां जो मुसलमान कारीगर बनाते आ रहे हैं, अब वे नहीं बना सकेंगे।"

"यह भी कोई बात हुई ?"

"बस, इसी बात पर फसाद शुरू हो गए।"

"और पुलिस क्या कर रही है ?"

"उसका काम है तमाशा देखना, या फिर हिन्दुओं के साथ मिलकर मुसलमानों के घरों को आग लगाना, निहत्थे मुसलमानों को गोलियों से भूनकर रख देना।"

"यह कैसे हो सकता है ?"

"अम्मीजान ! यह हो रहा है। आपके मायके शहर की गलियां खून से लथपथ हैं। नालियों में लाशें सड़ रही हैं। कर्फ्यू में कोई बाहर नहीं निकल सकता।"

"ऐसा कभी नहीं सुना ! ऐसा कभी नहीं हुआ !"

"सारी पुलिस हिन्दू है। जो मुसलमान अफसर और सिपाही पाकिस्तान चले गए, उनकी जगह भी हिन्दुओं से भरी जाती रही। पुलिस और फौज में अब मुसलमानों को नौकरी नहीं मिल सकती।"

"यह मैं कैसे मान सकती हूं ?"

"अम्मी ! आपको मानना पड़ेगा। आपकी बेटी बी० ए० पास करके बेकार बैठी है। आपके सामने एम० ए० पास एक नौजवान बैठा है जिसे नौकरी की तलाश है।"

"मैं तो सुन-सुनकर हैरान हो रही हूं।"

"आपका जवाहरलाल क्या और मौलाना आजाद क्या ? गद्दी पर बैठकर अपने सारे वायदे भूल गए हैं। कम-गिनती के लोगों की किसीको परवाह नहीं। इस देश में मुसलमान का जीना हराम है···"

जितनी देर और बैठा रहा, महमूद इस तरह की बातें करता रहा। सुन-सुनकर बेगम मुजीब के कान पकने लगे। उसे अपना-आप मैला-मैला

लगता। आस-पास से एक वू-सी आ रही महसूस होती। महमूद के जाने के बाद वह कितनी देर गुमसुम बैठी रही।

इतने में जेवा आ गई। अम्मी को यूं परेशान देखकर, उसने इसका कारण पूछा।

"लेकिन मैं तो बाहर से आ रही हूं, मैंने तो ऐसी कोई बात नहीं सुनी। न ही रेडियो पर कोई ख़बर थी।" जेवा हैरान हो रही थी।

"रेडियोवाले भी सरकार के नौकर हैं। जो सरकार कहती है, वही बोलते हैं।" बेगम मुजीब चिन्ताओं में डूबी हुई थी।

उसने जानबूझकर जेवा को नहीं बताया कि महमूद उनके यहां आया था, और वही उसे यह ख़बर सुनाकर गया था।

जब शाम को भी रेडियो पर इसके बारे में कोई ख़बर नहीं आई तो जेवा ने अलीगढ़ टेलीफ़ोन किया। अलीगढ़ में तो सुख-चैन था।

और मां-बेटी आराम की नींद सो गईं।

१५

अगले दिन सुबह रेडियो की ख़बरों में अलीगढ़ के दंगों का ज़िक्र था। रेडियो बोल रहा था, फ़साद पिछली रात अचानक भड़क उठे। और फिर अख़बार भी साम्प्रदायिक दंगों की कहानियां लेकर आ गए।

शहर की तंग गलियों में घर लूटे जा रहे थे। मकान जलाए जा रहे थे। बाज़ारों में छुरेबाज़ी हो रही थी। बम फट रहे थे। गोलियां चल रही थीं। कोई कह रहा था, मुसलमानों का ज्यादा नुक़सान हो रहा था; कोई कहता, ज्यादा हिन्दू मारे जा रहे थे। कोई कहता, शरारत हिन्दुओं ने शुरू की थी। कोई कहता, इस बार दोष मुसलमानों का था। शहर में कर्फ़्यू लगा दिया गया था। पुलिस गुंडों की पकड़-धकड़ कर रही थी। उनमें से ज्यादातर लोग रू-पोश हो गए थे। विद्यार्थियों में तनाव था। विश्वविद्यालय बंद कर दिया गया था। परीक्षाएं स्थगित कर दी गई थीं।

फ़ौज को तैयार रहने के लिए कह दिया गया था। राज्य के बाकी ज़िलों से पुलिस टुकड़ियां अलीगढ़ प्रशासन की सहायता के लिए भेज दी गई थीं। राज्य के कई मंत्री अलीगढ़ पहुंच रहे थे। प्रधानमंत्री ने दिल्ली में साम्प्रदायिक दंगों की भर्त्सना की थी। अलीगढ़ के शहरियों को अमन कमेटियां बनाने के लिए कहा जा रहा था।

खबरें पढ़ते-पढ़ते, अखबार उसके हाथों से छिटक गया। आज़ादी से पहले, आज़ादी के बाद, हर साम्प्रदायिक दंगा यूं ही अचानक शुरू होता। न पुलिस को इसका पता होता, न शहरियों को। और फिर हर फ़साद में जहां-तहां अल्पसंख्यक होते, उनपर बहुगिनती वाले अत्याचार करते। हिन्दू मुसलमानों पर, मुसलमान हिन्दुओं पर। कर्फ़्यू लगाया जाता। पुलिस घेराव की जाती। फ़ौज को बुलाया जाता। राज्य-सरकार के मंत्री घटना-स्थल पर पहुंचते। दिल्ली से बयान जारी किए जाते। शान्ति-समितियां बनाई जातीं। बेगम मुजीब सोचती, हमेशा यह सब कुछ होता था, फिर भी फ़साद होते ही रहते। गरीबों का खून बहता ही रहता। निहत्थे, बेक़सूर लोग मरते ही रहते।

जब फसाद रुकते, जांच-कमेटियां बिठा दी जातीं। उनके बारे में फिर कोई खबर नहीं आती थी। शायद उनकी सिफ़ारिशें दाखल-दफ़तर कर दी जातीं।

ठीक वही कुछ अलीगढ़ में हो रहा था, जो महमूद बेगम मुजीब को बताकर गया था। और वह सोच-सोचकर हैरान हो रही थी, उसकी बेटी के चेहरे पर कैसी एक घृणा-सी, एक अनमनापन-सा चित्रित हो गया था, जब पिछली शाम मां ने उससे फ़साद का ज़िक्र किया था!

सुबह-सुबह ही नाश्ता करके, बाहर निकल गई थी। उसने तो अखबार देखने की भी कोशिश नहीं की थी। बस रेडियो-समाचार ही सुने थे। यदि अलीगढ़ में साम्प्रदायिक दंगे हो रहे थे, तो मेरठ में भी चिनगारी भड़क सकती थी। बड़ी निडर लड़की थी। अब की गई, पता नहीं कब लौटेगी!

बेगम मुजीब सोचती, अगर महमूद कहीं मिल जाए तो वास्तविक स्थिति उससे मालूम की जा सकती थी। लेकिन उसे ढूंढ़ा कैसे जाए?

कालू को शायद उसका पता मालूम होगा। पूरे शहर में कौन था, जिसे कालू नहीं जानता था। और वही बात हुई, इधर बेगम के मुंह से निकला, उधर कालू साइकिल पर जाकर महमूद को बुला लाया।

जितनी देर बेगम मुजीब के यहां वह बैठा, महमूद हिन्दू-फ़िरक़ा-परस्ती की निन्दा करता रहा। क़ायदे-आज़म के गुण गाता रहा।

उसकी नज़र में, हिन्दुस्तान में मुसलमानों के साथ क़दम-क़दम पर सौतेला व्यवहार हो रहा था। साम्प्रदायिक दंगे तब तक चलते रहेंगे जब तक मुसलमानों को नौकरियों में उनका पूरा हिस्सा नहीं दिया जाता। जब तक हर तरह के उद्योग और व्यापार में उनका हौसला नहीं बढ़ाया जाता।

यह बात बेगम मुजीब की समझ में भी आ रही थी। अगर पुलिस में मुसलमान भरती किए जाएंगे तो वे अल्पसंख्यकों पर अत्याचार नहीं होने देंगे। और अगर मुसलमानों के अपने कारख़ाने और अपना व्यापार होगा तो गुंडागर्दी और आतिशज़नी से उनका भी उतना ही नुक़सान होगा, जितना और किसीका। लेकिन जो बात बेगम मुजीब को परेशान कर रही थी, वह महमूद का बार-बार पाकिस्तान का ज़िक्र करना था। जैसे किसीकी आंखें सरहद के पार लगी हों। उसे पाकिस्तानी लीडरों में कोई बुराई दिखाई नहीं देती थी। उसकी सहानुभूति पाकिस्तान की जनता के साथ थी। उस देश की हर भूल के लिए उसके पास कोई-न-कोई औचित्य था। अपने देश की हर ग़लती को वह बढ़ा-चढ़ाकर पेश करता था। उसका जिस्म भारत में था, मगर रूह पाकिस्तान में थी। इतनी देर से, उसके पास बैठे, बातें करते हुए उसने एक बार भी भारत को अपना देश नहीं कहा था।

बेगम मुजीब हैरान थी, फिर भी यह लड़का उसे नापसंद नहीं था। उसकी बातों में उसे एक तरह की दिलचस्पी महसूस हो रही थी। और फिर बेगम मुजीब ने उसे दोपहर के खाने लिए रोक लिया।

बातों-बातों में बेगम मुजीब को पता चला कि महमूद के अब्बा की शहर के बाहर ढेर-सारी ज़मीन थी। इसमें से कुछ ज़मीन सरकार ने बिजली-घर के निर्माण के लिए अपने क़ब्ज़े में लेकर लाखों रुपयों का

मुआवजा दिया था, लेकिन फिर भी सरकार पर उन्होंने मुकदमा कर रखा था। निचली अदालत में हार गए थे, अब हाई-कोर्ट में अपील कर रखी थी। उनका वकील कहता कि दो-चार लाख रुपया यह उन्हें और दिलाकर रहेगा। बाकी जमीन पर वे सब्जी उगाते थे। पिछले साल भी उन्होंने ऐसा ही किया था—और उससे पिछले साल भी। "आखिर सब्जियां ही क्यों ? और कुछ क्यों नहीं ?" बेगम मुजीब ने पूछा।

"इसलिए कि जब जी चाहे, आदमी सब्जी की फ़सल को बेचकर आगे चल सकता है।"

"क्या मतलब ?"

"क्या पता हम मुसलमानों को कब यह मुल्क छोड़ना पड़े ?"

बेगम मुजीब ने यह सुना तो उसके पांव के नीचे से मानो धरती सरक गई। कई लोग कैसी-कैसी बातें सोचते हैं ?

"हम पहले गेहूं···और धान लगाते थे। अब टमाटर, गोभी और ऐसी ही सब्जियां लगाते हैं। आज उगाओ, कल खा लो।"

महमूद यूं बोलता चला जा रहा था कि बेगम मुजीब ने उसका ध्यान बटाने के लिए उससे पूछा, "आपके दूसरे भाई-बहन क्या करते हैं ?"

"बस, एक बहन है। जिसे अम्मीजान लेकर आजकल पाकिस्तान गई हुई हैं। अगर कोई ढंग का लड़का मिल गया तो उसका रिश्ता कर देंगे।"

"लेकिन उन्हें अपने देश में कोई लड़का दिखाई नहीं दिया ?" बेगम मुजीब ने पूछा।

"अम्मी, क्या इस तरफ कोई काम का मुसलमान बाक़ी रह गया है ?"

"क्यों, मेरे सामने एक बैठा है।" बेगम मुजीब ने अर्थ-भरी नज़रों से महमूद की ओर देखते हुए कहा। जैसे वह अपने मन की बात को वह डालने में सफल हो गई हो, वह खिल-सी गई। और फिर वह उठकर बावर्चीखाने की ओर चली गई।

बेगम मुजीब की इस बात पर महमूद जैसे विभोर हो उठा। एक नशे-नशे में, मदमस्त, उसकी आखें मुंदी जा रही थीं। अकेला, बिल्कुल अकेला, गोल कमरे के सोफे पर बैठा हुआ वह सोचने लगा—'ज़ेबा के साथ उसकी

ग़लतफ़हमी अब जल्दी ही दूर हो जाएगी।' ज़ेवा की अम्मी का 'वोट' अब उसकी जेब में था। अब ज़ेवा भागकर कहीं नहीं जा सकती थी। बड़ी मुंहज़ोर लड़की थी। लेकिन हर हसीन औरत मुंह-ज़ोर होती है। हर हसीन औरत में ख़ुद-दारी होती है, ग़रूर होता है। ज़ेवा जैसी लड़की अगर उसके हाथ लग जाए तो उसके मज़े हो जाएंगे। उनकी पार्टी को बड़ा सहारा मिलेगा। यूं कुछ दिन ऐसे ही, वह बेलगाम फिरती रही तो महमूद को डर था कि वह किसी ऐरे-ग़ैरे के साथ चल देगी। एक बहन पहले ही लुटिया डुबो चुकी थी। महमूद सोचता, दोष इन लड़कियों का नहीं था। एक तो उनके अब्बा की तबीयत ही ऐसी थी, और दूसरा, बेवा औरत की औलाद बड़ी बे-काबू होती है।

महमूद देखकर हैरान रह गया। खाने की मेज़ पर बेगम मुजीब ने इतना तक़ल्लुफ़ किया हुआ था। कबाब और कोरमा। बिरयानी और दही की चटनी।

उन्होंने खाना शुरू ही किया था कि ज़ेवा आ टपकी। महमूद को खाने की मेज़ पर बैठे देखकर उसके माथे पर बल पड़ गए। कहने लगी, "मैं किसी सहेली के यहां खाने बैठ गई थी, इसलिए मुझे देर हो गई।" और फिर वह दो-चार मिनट इधर-उधर की बातें करने के बाद, अपने कमरे में चली गई।

महमूद को खाना खाकर गए हुए बहुत देर नहीं हुई थी कि बेगम मुजीब ने देखा कि खाने की मेज़ पर बैठी ज़ेवा खाना खा रही थी।

'हू-ब-हू अपने बाप पर है।' बेगम मुजीब ने मन-ही-मन कहा।

१६

खाना खाते हुए ज़ेवा को अचानक ध्यान आया कि पिछले रोज़ जब अम्मी ने अलीगढ़ के दंगों का ज़िक्र किया था, उन्हें इस बारे में महमूद ने

ही बनाया होगा। रेडियो और समाचारपत्रों के अनुसार साम्प्रदायिक दंगे पिछली रात शुरू हुए थे। उसे यह ख़बर पहले ही कैसे मिल गई, दंगे शुरू होने से पहले ही? ज़ेबा का बार-बार जी चाहता कि वह अम्मी से पूछे कि अलीगढ़ के फ़सादों की ख़बर उन्हें किसने दी थी। लेकिन फिर वह इसे टाल जाती। महमूद के लिए उसके मन में इतनी घृणा थी कि वह उसका नाम तक लेने को तैयार न थी। और इधर उसकी मां थी, मानो उसकी दीवानी हो। बुला-बुलाकर उसकी दावतें कर रही थी।

यूं लगता था, जैसे उस दिन कुछ होकर रहेगा। ज़ेबा, मेज़ पर बैठी, अकेली, खाना खा रही थी। नौकर छुट्टी कर गए थे। ज़ेबा स्वयं ही बावर्चीख़ाने में गई, और प्लेट परोसकर ले आई। मां-बेटी खाने के कमरे में अकेली थी।

"बेटी! तुम हमारे साथ ही खाना खा लेतीं! अब हर एक चीज़ ठंडी हो गई है।" बेगम ने ज़ेबा के सामने मेज़ पर बैठते हुए कहा।

"अम्मी! आपको मालूम है, यह आदमी मुझे अच्छा नहीं लगता।" ज़ेबा कहने लगी। वह कोशिश कर रही थी कि वह ख़फ़ा न लगे।

"लेकिन उसमें ख़राबी क्या है? मुझे भी तो पता चले?" अम्मी सचमुच यह भेद जानने को उत्सुक थी। कोई दिन थे, जब ज़ेबा महमूद पर फ़िदा थी। बेगम मुजीब ने ख़ुद अपनी आखों से उन्हें गोल कमरे में अटपटी हालत में देखा था।

ज़ेबा ने अम्मी के सवाल का जवाब देना उचित न समझा। खाना खाते हुए उसने जग में से पानी गिलास में उड़ेला और फिर पीने लगी।

"खाते-पीते घर का लड़का है। पढ़ा-लिखा। ऊंचा-लंबा। ख़ूबसूरत।" अम्मी बोल रही थी।

ज़ेबा चुप थी।

"आजकल अच्छे लड़के मिलते कहां हैं? ख़ुद महमूद की बहन के लिए लड़का ढूंढने वे पाकिस्तान गए हुए हैं।"

ज़ेबा वैसी-की-वैसी ख़ामोश, खाना खा रही थी। खाते-खाते, मां की ओर टुकुर-टुकुर देख रही थी।

"कितना मिठ-बोला लड़का है! कितना सलीके वाला! कैसे प्यारी

तरह मुझे अम्मी कहकर बुलाता है···"

ज़ेबा को अपनी मां पर तरस आ रहा था। यह वही मां थी जो एक दिन इसका सिर उसके घुटनों पर देखकर वेहोश हो गई थी।

"अगर तुम्हारी नज़र में कोई और है, तो मुझे वता दो—अपनी अम्मी को। मैंने कव अपने वच्चों के मामलों में दख़ल दिया है?"

"अम्मीजान! आपको क्या जल्दी पड़ी है? अगर आप मुझसे जान छुड़ाना चाहती हैं तो मैं वैसे ही घर से चली जाती हूं।"

"जो मुंह में आता है—वक देती हो। क्या फ़िज़ूल वोले जा रही हो?"

ज़ेवा हंस दी।

"मेरा मतलव है, हर काम के लिए वक़्त होता है। तुम्हारी पढ़ाई अव ख़त्म हो गई है। अव तुम्हें अगले पड़ाव की तैयारी करनी चाहिए।"

"किसीका घर वसाना चाहिए। किसीके आंगन में वच्चे खेलने चाहिएं। फिर वच्चों के वच्चे। फिर उनके वच्चे। वेचारा मेरा देश हिन्दुस्तान।"

"फिर तुम यूंही वैठी रहना। तुम्हारे जैसी जो मीन-मेख निकालती हैं, उनकी गाड़ी छूट जाया करती है। अपने पड़ोस में खान-वहादुर की वेटी की तरफ़ देखो। वाल सफ़ेद हो गए हैं और अभी तक हाथ पीले नहीं हुए। कोई वक़्त था, लड़के वाले उनकी दहलीज़ पर माथा रगड़ते रहते थे। अव कोई उधर झांकता तक नहीं।"

"तो फिर क्या हुआ, अम्मी! कम्मो आपा स्कूल में पढ़ाती है। अपने काम में खुश रहती है।"

"देखती नहीं, कैसे साइकल पर टांग चलाती, हर रोज़ स्कूल जाती है। इतने वड़े वाप की वेटी, अगर उसने व्याह कर लिया होता तो आज उसके नीचे मोटर होती। अपना घर-वार होता। नौकर-चाकर होते। मज़े करती। उसकी हमउम्र मांएं वन चुकी हैं। उनके वच्चे भी उसके स्कूल में पढ़ते हैं। उस दिन मुझे वता रही थी—'आंटी-आंटी' कहते रहते हैं।'"

ज़ेवा का खाना ख़त्म हो चुका था। अम्मी अभी वोल रही थी, और वह सामने वाश-वेसन में हाथ धोने लगी।

"अम्मी! मैं वादा करती हूं," तौलिया से हाथ साफ़ करते हुए ज़ेवा,

बेगम मुजीब की ओर आई, और उसे कंधों से पकड़कर उसकी आंखों में आंखें डालकर कहने लगी, "अम्मी ! मैं वादा करती हूं कि शादी के मामले में मैं आपको परेशान नहीं करूंगी...नहीं करूंगी।"

बेगम मुजीब की आंखों में आंसू आ गए। "बेटी, अगर तुम्हारे अब्बा आज होते तो मुझे किसी बात की फ़िक्र नहीं थी। अब जिम्मेदारियां जो मेरे सिर पर आ पड़ी हैं। बेटा कहीं बैठा है। उसकी चिट्ठी के इन्तज़ार में आंखें दुखने लगती हैं।"

अपनी मां की आंखों में आंसू देखकर ज़ेबा भी भावुक हो गई।

"लेकिन इस लड़के महमूद में ख़राबी क्या है?" अवसर देखते हुए बेगम मुजीब ने अपनी बात आगे चलाई।

ज़ेबा ख़ामोश हो गई।

"मैं जब उसका नाम लेती हूं, तुम ख़ामोश हो जाती हो। आख़िर मुझे भी तो पता चले कि असल में बात क्या है?" बेगम मुजीब दो-टूक फ़ैसले पर तुली हुई लगती थी।

"अम्मी ! मैंने महमूद को बहुत पास से देखा है। वह बहुत ग़लत आदमी है।"

"मर्द जात ! कोई-न-कोई ऐब हर एक में होता है।" बेगम मुजीब के भीतर का अनुभव बोल रहा था।

"कई ऐब होते हैं जो नज़रअंदाज़ किए जा सकते हैं, लेकिन कुछ ऐसे होते हैं जिन्हें माफ़ नहीं किया जा सकता।"

"मुझे भी तो पता चले।" अम्मी अपनी ज़िद पर अड़ी थी।

"महमूद, उसकी अम्मी, उसके अब्बा, इस देश में यूं रहते हैं जैसे परदेसी हों।"

"यह तो मुझे भी महसूस हुआ है। उन लोगों की नज़रें जैसे सरहद के पार लगी हों। लेकिन इसमें परेशान होने की बात क्या है? उन जैसे कई और हिन्दुस्तानी मुसलमान हैं। वक्त आने पर ख़ुद ही समझ जाएंगे।"

"महमूद जैसे लोग कभी नहीं समझेंगे। ये लोग तो जैसे पर तौल रहे पखेरू हों। किसी वक्त भी उड़ान भरकर सरहद पार चले जाएंगे।"

"लेकिन हमारे बहु-गिनती वालों की भी कम-गिनती वालों के हर-

हुक़ूक का ख़याल होना चाहिए।"

"यह बात मेरी समझ में कभी नहीं आई," ज़ेबा चिढ़कर बोली, "सारे हक़ कम-गिनती वालों के ही क्यों होते हैं? कोई हक़ बहु-गिनती वालों का भी होता है।"

"ज़बान को ही लो—उर्दू के मामले में हमारी सरकार की गफ़लत मुझे ज़्यादती लगती है।"

"उर्दू के बारे में गफ़लत उर्दू बोलने वालों की तरफ़ से हो रही है।"

"इसलिए कि सरकार उनपर ज़बरदस्ती हिन्दी थोप रही है।"

"यही तो मेरी शिकायत है। आख़िर बहु-गिनती वाले अपनी ज़बान की सरपरस्ती क्यों न करें? जो हक़ हम अपनी ज़बान के लिए मांगते हैं, वह हक़ हम अपने पड़ोसी को क्यों नहीं देते? इसलिए कि वो बहु-गिनती में हैं?"

"मेरी नज़र में यही एक वजह है कि हिन्दुस्तानी मुसलमान पाकिस्तान पर अपनी आंखें जमाए हुए हैं।"

"क्या पाकिस्तानी हकूमत में पंजाबी ग्रुप, पूर्वी पाकिस्तान में अपनी ज़बान नहीं ठूंस रहा?...कि अगर आप बंगला नहीं छोड़ना चाहते तो उसे फ़ारसी लिपि में लिखना शुरू कर दो। उस दिन इसी बात पर ढाका में कई बंगालियों को गोली से उड़ा दिया गया। अगर पाकिस्तानी बंगालियों को उर्दू पढ़ने के लिए मजबूर कर सकते हैं फिर अगर हमें हिन्दी सीखने के लिए कहा जाए तो इसमें कौन-सी ज़्यादती है? पाकिस्तानी कश्मीर को अपने साथ मिलाने की बात सोच रहे हैं। मुझे तो लगता है कि वो बंगाल को भी अपने हाथ से गंवा बैठेंगे।"

ज़ेबा आवेश में आ गई थी। बेगम मुजीब ने बात वहीं समाप्त कर देना उचित समझा।

अलीगढ़ में स्थिति अभी आम दिनों जैसी नहीं हुई थी। अभी रात
कर्फ्यू लगता था कि एक सुबह, जेबा अपने ननिहाल जाने के लिए तै
हो गई। अगर यह उसकी इच्छा थी तो उसे कौन रोक सकता था ?

चाहिए तो यह था कि बेगम मुजीब भी अपनी बेटी के साथ म
हो आती। लेकिन इन दिनों उसने घर छोड़कर जाना उचित नहीं सम
उसके अब्बा की, सिविल लाइन में कोठी थी। इस क्षेत्र में अमन-चैन
कोई खास खतरे की बात नहीं थी।

वास्तव में महमूद उसकी आंखों को भा गया था, और वह चा
थी कि उस लड़के को किसी तरह जेबा से बांध दिया जाए। जेबा
मान रही थी; धीरे-धीरे उसे मनाया जा सकता था। लड़कियों का
है; खाते-पीते घर का पढ़ा-लिखा, खुश-शक्ल लड़का था। किसीको
क्या चाहिए? जहां तक उसके मजहबी कट्टरपन का सवाल था, यह
अच्छा ही था कि उसके कारण उसमें और कोई दोष नहीं था। उ
मियां कई बार परेशान होकर कहा करता था—'हर हिन्दुस्तानी ि
महासभायी है, हर हिन्दुस्तानी मुसलमान मुस्लिमलीगी है।
हिन्दुस्तानी सिख, अकाली है। मुझे कांग्रेसी तो कोई इक्का-दुक्का ही न
आता है। कांग्रेसी तो बस एक गांधी है या जवाहरलाल नेहरू या
मौलाना आज़ाद, या रफी अहमद किदवई...'

उस शाम महमूद उनके यहां आया हुआ था। जब से जेबा अर्म
गई थी, वह प्राय बेगम मुजीब से मिलने आ जाता था।

जवान-जहान बच्चों की मां, बेगम मुजीब में एक अकथनीय म
था, जो उसने अभी तक संभाल-संभाल रखा था। एक सलीका,
उदारता, एक निष्कपटता। हंसती हुई मोटी-मोटी काली आंखें, वि
खुला माथा, खिला हुआ, दमक रहा। आयु के साथ बीच-बीच में पके
बाल, उसके काली लटों को जैसे दुलरा रहे हों। गोरा रंग, अभी
उसके गालों पर एक लालिमा का आभास था। ऊंची-लंबी, जैसे

कुरता। सिर पर फिसलती रेशमी चुनरी। एक ख़ुशबू-ख़ुशबू-सी उसके साथ आई, जब उसने कमरे में क़दम रखा।

महमूद पर एक जादू का-सा प्रभाव हो रहा था। एक नशा-नशा-सा उसे चढ़ता जा रहा था। चाय के बाद, बेगम मुजीब अपने हाथ से लगाकर पान उसे खिला रही थी। पान लगाते हुए, उसके साथ इधर-उधर की बातें भी करती जा रही थी। पहली बार आज महमूद का जी चाहा कि वह बस आज ज़ेबा की अम्मी को सुनता जाए, सुनता जाए। जैसे कोई संगीत के माधुर्य में एकरस हो जाता है, ऐसा उसे महसूस हो रहा था।

"क़ायदेआज़म जिन्नाह बेशक मुस्लिम लीग को क़ायम करने वालों में से थे, लेकिन वो लीगियों में सबसे ज्यादा तरक्कीपसंद थे। अगर वे ज़िंदा रहते तो पाकिस्तान को एक इस्लामी राज कभी न बनने देते। वो तो हमेशा यही कहते रहे कि पाकिस्तान बनने के बाद वहां का कोई भी शहरी अब मुसलमान, हिन्दू, या ईसाई नहीं, सब पाकिस्तानी हैं।

"१९३४ में जिन्नाह ने कहा था—'मैं पहले हिन्दुस्तानी हूं, फिर मुसलमान।' ११ अगस्त, १९४७ को पाकिस्तान की आइन साज़ एसेम्बली के सामने उन्होंने फ़रमाया—'चाहे कोई मंदिर में जाए, या चाहे मस्जिद, या किसी और जगह इबादत करे, किसीका कोई मज़हब हो, कोई जात हो, कोई अक़ीदा हो उसके बुनियादी हक़ों से इसका कोई वास्ता नहीं है। हम सब एक मुल्क के, बराबर के शहरी हैं।'

"पाकिस्तान में हर पांच बच्चों में से एक भुखमरी का शिकार हो जाता है; मैं कहीं पढ़ रही थी कि १९४९-५० में पाकिस्तान के आम आदमी को २०१० कैलोरी नसीब होती थी, अब कम होकर ये १९७० हो गई हैं। पाकिस्तान टाइम्ज़ की एक ख़बर के मुताबिक, जेहलम में किसीने अपने बेटे को बाईस रुपये में बेच डाला ताकि उसके मां-बाप चार रोज़ पेट भरकर खाना खा सकें। पश्चिमी पाकिस्तान में ६००० किसान, तेंतीस लाख खेतिहर कुनबों से ज्यादा ज़मीन दाबे बैठे हैं।

"पाकिस्तान में प्रेस की कोई आज़ादी नहीं। पाकिस्तान टाइम्ज़, इमरोज़, लैलो-निहार जैसे अख़बारों को सरकार ने अपने कब्ज़े में ले लिया है। जनरल अयूब कहता है—गरम मौसम वाले देशों में जम्हूरियत

नहीं पनपती। जम्हूरियत कम पढ़े मुल्कों में ही जिन्दा रह सकती है। पाकिस्तान के किसी वज़ीर का जब मुल्क में अनपढ़ता की तरफ ध्यान दिलाया गया तो उसने जवाब दिया—आखिर हमारे पैगंबर भी तो अनपढ़ थे।

"पाकिस्तान में पूर्वी बंगाल के साथ एक कालोनी जैसा सलूक किया जाता है, चाहे वो लोग पश्चिमी पाकिस्तान से गिनती में कहीं ज्यादा हैं। उनकी ज़बान को दबाया जा रहा है। हर साल पश्चिमी पाकिस्तान वाले पूर्वी पाकिस्तान के करोड़ों रुपये हड़प कर जाते हैं। १९४८ से १९५१ तक देश की तरक्की पर जितनी रकम खर्च की गई, उसका कुल २२·१ फीसदी हिस्सा पूर्वी पाकिस्तान के लिए रखा गया। यह लूट-खसूट वो लोग कब तक सहेंगे? किसी दिन नाव डूब जाएगी। बंगाली कभी भी पंजाबियों की अजारादारी कबूल नहीं करेंगे।

"और अब सुना है, उन्होंने अमरीका से दोस्ती गांठ ली है। दोस्ती क्या गांठी है, अपने-आपको अमरीकनों के हाथ बेच डाला है। खुराक की मदद के लिए, और हथियारों की ज़रूरत पूरी करने के लिए अपने देश को गिरवी रख दिया है। १९५० में लियाकत अली खां अमरीका दौरे पर गए। १९५१-५२ में अमरीकी डालर पाकिस्तान में पानी की तरह बहने लगे। इनके साथ सलाहकार भी आए और माहिर भी। अमरीका की विदेशी पालिसी, पाकिस्तान की विदेशी पालिसी बन गई। आज डालर पाकिस्तानी राजनीति पर पूरी तरह से हावी है। अमरीका से दोस्ती का मतलब है—अमरीका के दोस्तों के साथ दोस्ती, अमरीका की दखलंदाज़ी वियतनाम, कोरिया, फारमूसा, पश्चिमी एशिया की पालिसी से साथ पाकिस्तान की सहमति।"

जैसे कोई तसवीर बोल रही हो, महमूद उखड़ा-सा बेगम मुजीब को सुन रहा था। उसके चेहरे से उदासी टपक रही थी। बेगम मुजीब की एक-एक बात उसके दिल को छूती हुई प्रतीत होती थी। महमूद का दिमाग बेगम मुजीब की किसी बात को मानने के लिए तैयार नहीं था, लेकिन फिर भी वह यह सब कुछ सुनता जा रहा था। इनसे इन्कार करने को जैसे उसका जी न चाह रहा हो। कितनी प्यारी वह सा थी! कितना

अपनापन ! ग़जब का हुस्न होगा इस औरत में, जब वह जवान रही होगी !

महमूद कहना चाहता था, अगर कांग्रेस फ़िरक़ापरस्त नहीं है तो हर चुनाव में मुसलमानों के इलाक़ों में से मुसलमान उम्मीदवार ही क्यों खड़े किए जाते हैं ? चाहे चुनाव कमेटी के हों, चाहे एसेम्बली के, चाहे पार्लिया-मेंट के। मौलाना आजाद तक को हरियाणा की मुस्लिम वोटों से जिताया जाता है। लेकिन महमूद के जैसे होंठ न खुल रहे हों। वह अवाक्-सा बेगम मुजीब के चेहरे की ओर देखता जा रहा था, जैसे कोई दोषी किसी कटहरे में खड़ा किया गया हो।

"मैं यह मानती हूं कि इधर हम हिन्दुस्तानी भी कोई फ़रिश्ते नहीं हैं।" बेगम मुजीब महमूद की मजबूरी को भांप कर बात आगे चला रही थी, "हम शिवाजी को हमेशा एक हिन्दू सूरमा के तौर पर पेश करते रहे हैं—जो सारी उम्र मुग़लों से लड़ता रहा। और यह बात हम भूल जाते हैं कि उसके बारूदखाने का दरोग़ा मुसलमान था। महाराजा रणजीतसिंह ने मुलतान के मुसलमान बैरी के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए अपनी फ़ौज का मुसलमान जरनैल भेजा था। महाराजा रणजीतसिंह का विदेशी मामलों का वजीर मुसलमान था। कई मुसलमान बादशाहों ने हिन्दुओं के मंदिर बनवाए। दिल्ली के हुक्मरान मुहम्मदशाह ने बौद्ध गया के मंदिर के नाम जागीर लगवाई। देश में सबसे बड़ी जमींदारी दरभंगा, एक ब्राह्मण को उसकी लियाक़त के लिए अकबर ने बख़्शी थी। कश्मीर का बादशाह जैनुल-आबदीन हमेशा अमरनाथ की यात्रा पर जाता था। हैदराबाद में अभी कल तक एक दरगाह का मुतवल्ली एक ब्राह्मण था। और हैदराबाद का निजाम उस दरगाह पर हाजिर हुआ करता था।

"पंजाब में, बिहार में, बंगाल में हिन्दुओं और मुसलमानों का रहन-सहन एक-सा है। एक-जैसे वे कपड़े पहनते हैं। एक जैसे लोक-गीत, एक जैसी लोककथाएं वे सुनते-सुनाते हैं।

"मैं यह भी मानती हूं कि इधर हिन्दुस्तान में क्या और उधर पाकिस्तान में क्या, कई बार हिन्दू-मुसलमान दंगे इसलिए भी कराए जाते हैं ताकि लोगों का ध्यान सरकार की अपनी कमजोरियों से हटाया जा सके। कहीं क़ीमतें बढ़ रही हैं और कहीं बेकारी लोगों को सता रही है। कहीं

अमीर और ग़रीब में खाई बढ़ती चली जा रही है।"

शाम ढलने लगी थी। हल्का-हल्का अंधेरा होने लगा था। बेगम मुजीब हाथ बढ़ाकर बत्ती जलाने लगी थीं कि महमूद उठ खड़ा हुआ। जैसे शक्कर में लिपटी हुई कुनैन की गोलियां कोई किसीको खिला रहा हो, कुछ ऐसा महमूद को महसूस हो रहा था। आज की खुराक ज़्यादा हो चुकी थी। इससे ज़्यादा वह शायद पचा न सके। बेगम मुजीब तो अपने प्यारे अंदाज़ में बोलती चली जा रही थीं।

उनकी कोठी से एक क़दम बाहर निकलते ही, जैसे कोई जानवर बरसात में अपने ऊपर पड़ी बूंदों को झटक देता था, महमूद ने अपने सिर को दायें-बायें हिलाकर बेगम मुजीब की सारी नसीहत को भुला दिया।

'इनको अभी हाथ नहीं लगे हैं।' महमूद दिल-ही-दिल में कह रहा था। 'हाथ लगे भी हैं, लेकिन अभी समझ नहीं आई है। एक बेटी गवां बैठी है, जब दूसरी भी हाथ से निकल जाएगी तब बेगम साहिबा को अक्ल आएगी।'

१८

जेया के नाना नक़वी रोड पर रहते थे, शहर और यूनिवर्सिटी के बीचोंबीच। शहर में कर्फ़्यू लगातार चल रहा था। तनाव वैसे-का-वैसा बना हुआ था। रात के अंधेरे में उसी प्रकार गोलियां चलती थीं। उसी प्रकार आते-जाते किसी बेचारे ग़रीब को छुरेबाज़ी का शिकार बनाया जा रहा था। वैसी-की-वैसी अचानक नारेबाज़ी होने लगती : 'अल्लाह हू अकबर' और 'हर-हर महादेव'! जगह-जगह हिन्दुओं को उत्तेजित करने वाले इश्तिहार हिन्दी में लगे थे। मुसलमानों को भड़काने वाले इश्तिहार उर्दू में लगे थे। मुसलमान मुहल्लों में दीवारों पर 'पाकिस्तान ज़िंदाबाद' लिखा हुआ था। पुलिस वाले मिटाकर जाते, इधर उनकी पीठ होती, उधर फिर कोई लिख जाता। जैसे आंख-मिचौनी खेली जा रही हो।

सांझ ढल रही थी जब ज़ेबा अपने ननिहाल पहुंची। वह देखकर हैरान रह गई, कोठी के एक ओर, घास के विशाल लॉन के ठीक बीच में बैडमिंटन चल रहा था। जवान-जहान लड़के-लड़कियों का खेल जारी था। उनके मां-बाप, बड़े-बूढ़े बैडमिंटन कोर्ट के आस-पास बैठे, खड़े हंस रहे थे, गप-शप कर रहे थे। इनमें उनके पड़ोसी राय साहब राम जवाया का कुटुम्ब भी था; सड़क पार कोठी वाले सरदार नसीबसिंह का बेटा और बहू भी थे।

कुछ देर के बाद, जब रोशनी कम हुई तो बैडमिंटन-कोर्ट के दोनों ओर लगे बिजली के बल्ब जग-मग-जग-मग करने लगे।

"हद हो गई, हमने तो सुना है कि आपके शहर में दंगे हो रहे हैं।" कुछ देर के बाद ज़ेबा बोली। अभी तक वह घरवालों से मिल रही थी। अड़ोसी-पड़ोसियों से उसकी मुलाक़ात कराई जा रही थी।

"फ़साद अपनी जगह है, बैडमिंटन अपनी जगह है।" सरदार नसीब-सिंह की पंजाबिन बहू बोली।

"इन लोगों को तो और कोई काम ही नहीं।" ज़ेबा की मामी कह रही थी। हैदराबाद दक्कन की तिलंगन, उसके चेहरे पर क्षण-भर के लिए एक घृणा-सी झलकने लगी।

"लाओ बीबी, पान खिलाओ। तुमने यह नई लत हमें लगा दी है।" पंजाबिन कह रही थी।

"तुमने भी तो हमें लस्सी पीना सिखाया है। मेरे मियां तो एक निवाला गले से नहीं उतारते, जब तक लस्सी मेज़ पर न हो।"

इतने में राय साहब राम जवाया की बेटी स्वर्णा अपने भाई राजीव के साथ, खेल ख़त्म करके, कोर्ट से बाहर निकली। स्वर्णा ज़ेबा से बग़लगीर हो गई। उनकी पुरानी जान-पहचान थी। राजीव को भी वह जानती थी, लेकिन कई बरसों से उनकी मुलाक़ात नहीं हुई थी। वह विलायत पढ़ने गया हुआ था। कितना सुन्दर जवान निकला था! डाक्टरी की डिग्री लेकर आया था। एफ० आर० सी० एस०; और मालूम नहीं क्या-क्या? ज़ेबा ने अपनी दाईं बांह उठाकर, सिर झुकाते हुए, अवधी अंदाज़ में उसे आदाब करने की कोशिश की, लेकिन राजीव ने आगे

बढ़कर उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। "क्यों भाई, पिछली बार इसी लॉन में हमने मैं'रवाजी की थी, जिसमें अकेली तुमने, हम तीन लड़कों को हराया था। आजकल तुम्हारे मैं'रों के जखीरे का क्या हाल है?"

जेबा को एकाएक चांदनी रात का वह दृश्य याद आ गया। गर्मियों के दिन थे। लॉन की घास पर बैठे हुए उनमें होड़ लग गई थी। एक ओर वह अकेली थी और दूसरी ओर वे तीन लड़के थे। जेबा ने उनको मात दे दी। कई वर्ष बीत चुके थे। तोबा! तोबा! कितने मैं'र जेबा को जबानी याद थे।

"आज भी हाज़िर हूं।" जेबा ने हंसते हुए कहा। उसका हाथ अभी तक राजीव के हाथ में था। एक जवान-जहान मर्द के हाथ में। एक नज़र उन्होंने एक-दूसरे की आंखों में देखा, और जेबा को लगा, जैसे उसका, एक कुंवारी लड़की का नाज़ुक हाथ राजीव की मुट्ठी में पारे की तरह मचल रहा हो।

"लेकिन अब तो सुना है, आपको हिन्दी भी लाजमी तौर पर पढ़नी पड़ी है।" राजीव कह रहा था।

"इसमें परेशान होने की कोई बात नहीं है। हिन्दी में, अपनी क्लास में हमेशा मैं पहले नम्बर पर रहती रही हूं।"

"तोबा! तोबा! तब तो आप हमारे काम की हीं नहीं।"

"क्यों, हिन्दी की लिपि देवनागरी, मेरी राय में दुनिया-भर की लिपियों में सबसे ज्यादा साइन्टिफिक है।"

"साइन्टिफिक नहीं, वैज्ञानिक।" स्वर्णा बीच में बोली।

"बस, इसीमें हमारी सहमति नहीं है।"

इतने में जेबा की मामी ने एक पान स्वर्णा के लिए, और एक पान राजीव के लिए तैयार करके उन्हें पेश किया। पान लेने लगा, तो कहीं राजीव ने जेबा का हाथ छोड़ा।

"आप पान नहीं खा रहीं?" राजीव ने जेबा से पूछा।

"मैं खाऊंगी। पहले आप लीजिए।" जेबा ने कहा।

राजीव ने अपना पान जेबा की ओर बढ़ाया। जेबा ने झट आगे बढ़कर ले लिया, नहीं तो पिलपिला सा सोटा लड़का, वह तो शायद पान

को उसके मुंह में रखने जा रहा था।

"मुझे वापस आए हुए आज सात दिन हो गए हैं। वक़्त कैसा उड़ता जाता है।" कुर्सी पर बैठते हुए राजीव बता रहा था।

"नहीं, छः दिन।" स्वर्णा ने उसे टोका।

"हां-हां···छः दिन! जिस दिन मैं आया था, उसी रात तो फ़साद शुरू हुए थे। इतवार और सोमवार के बीच की रात। आज शनिवार है न। छः दिन ठीक हैं।"

"फ़साद इतवार और सोमवार के बीच की रात को शुरू हुए या सनीचर और इतवार के बीच की रात?" ज़ेबा ने चौंककर पूछा।

"इतवार और सोमवार की बीच की रात।" स्वर्णा ने बताया।

"बिल्कुल ठीक! क्या उससे पहले कोई हो-हल्ला नहीं था?"

"नहीं तो," स्वर्णा ने ज़ेबा की मामी की ओर देखा।

"हां-हां, राजीव घर पहुंच चुका था। अभी हमने खाना खाया ही था कि पुलिस-कप्तान का टेलीफ़ोन आया। कहने लगा—अच्छा हुआ, आप लोग वक़्त पर स्टेशन से लौट आए। शहर में दंगे शुरू हो गए हैं।"

ज़ेबा सुनकर सोच में डूब गई। उसे अच्छी तरह याद था कि इतवार की शाम, जब वह घर लौटी थी तो उसकी अम्मी ने अलीगढ़ के दंगों का ज़िक्र किया था। फिर उसने अलीगढ़ टेलीफ़ोन भी किया था।

राजीव के भीतर के पैनी नज़र रखने वाले डाक्टर ने ज़ेबा की ओर देखकर कहा, "मिस शेख़, आप तो सोच में यों डूब गई हैं—जैसे फ़साद पहले शुरू होना चाहिए था, यह लेट क्यों शुरू हुआ है!" राजीव की बात सुनकर आस-पास सब हंसने लगे।

"सचमुच···मामला कुछ···इसी तरह का है।" ज़ेबा सोचती हुई, रुक-रुककर बोल रही थी।

"क्या मतलब?" स्वर्णा पूछने लगी।

"मुझे अच्छी तरह याद है, पिछले इतवार जब मैं शाम को घर लौटी, अम्मीजान ने मुझे कहा था, अलीगढ़ में हिन्दू-मुस्लिम फ़साद हो गए हैं। और फिर मैंने अलीगढ़ टेलीफ़ोन किया था।"

"मैं बताऊँ, यह मनोविज्ञान हो सकता है," राजीव हँसता हुआ कहने लगा, "इतने दिनों से दंगा कर रहे, इतने बरसों से अड़ोसी-पड़ोसियों के गले काट रहे, इतने सालों से भाई-भाइयों को छुरे घोंप रहे—कोई बड़ी बात नहीं। फसाद शुरू होने से पहले हमें उनकी परछाइयां दिखाई देने लगीं, बेसहारा मजलूम लोगों की चीख-पुकार हमारे कानों में पड़ने लगी हो'''यूं कई बार होता है। अक्सर मुझपर जब कोई मुसीबत आने को होती है, कुछ देर पहले मेरा दिल बिना कारण बैठने लगता है। मैं चिड़चिड़ा-सा महसूस करने लगता हूं।"

"जैसे आज शाम तुम्हें लग रहा था," स्वर्णा ने अपने भाई को छेड़ा।

"क्या?"

"चाय पीते हुए तुम मुझसे उलझने लगे थे।"

"हां, मेरा मूड ज़रा ख़राब था," राजीव ने सोचते हुए कहा।

"क्यों, आपको भी किसी मुसीबत की परछाई दिख रही थी?" ज़ेबा ने उससे मज़ाक किया।

"आज की शाम तो कोई ऐसी मुसीबत नज़र नहीं'''"

"सिवा ज़ेबा की मुलाकात के," स्वर्णा ने राजीव की बात को काटते हुए कहा। और फिर वहां बैठे सब लोग हंस पड़े।

१९

ज़ेबा अलीगढ़ गई हुई थी और इधर महमूद हर रोज़ बेगम मुजीब के यहां आने लगा। जिस दिन वह अपने-आप न आता, बेगम मुजीब उसे बुलवा लेती। कभी नाश्ता, कभी दोपहर का खाना; कभी शाम को चाय और कभी रात का खाना वह ज़ेबा की अम्मी के यहां ही खाता। कभी दोपहर बाद आता और देर-रात गए लौटता। कभी सुबह-सुबह आता और जब जाता तो शाम ढल चुकी होती।

बेगम मुजीब उसे घर के छोटे-मोटे काम बताती रहती। वह काम, जो कोई नौकर भी कर सकता था, कालू सारी उम्र करता रहा था। बिजली का बिल, पानी का बिल जमा कराना; धोबी और दर्जी के यहां जाकर कपड़ों के लिए तकाज़ा करना। अख़बार वाला इतना काइयां था; अंग्रेज़ी का अख़बार तो ठीक फेंक जाता; उर्दू का अख़बार हर चौथे रोज़ कोई-का-कोई दे जाता। बेगम मुजीब को किसी साम्प्रदायिक पार्टी के अख़बार को घर में देखना ज़हर-सा लगता था। वह झट अख़बार लौटा देती। अख़बार वाला फिर वही ग़लती कर जाता। महमूद आता और बेगम मुजीब की छोटी-मोटी फ़रमाइशें पूरी करता रहता।

बेगम मुजीब और-की-और होती जा रही थी। क्योंकि महमूद आ रहा होता, वह घर को उजला-उजला, साफ़-साफ़ रखती। गोल कमरे के गुलदानों के फूल बाक़ायदा बदलते रहते। बेगम मुजीब आप फूलों को सजाती। कभी किसी तरह, कभी किसी तरह। एक दिन महमूद ने बातों-ही-बातों में कहा था कि उसे अगरबत्ती की महक अच्छी नहीं लगती है, जैसे कोई हिन्दू शिवालय हो। और उस दिन के बाद से बेगम मुजीब के घर कभी अगरबत्ती नहीं जलाई गई। सारी उम्र वह अपने घर को अगरबत्तियों से महकाती रही थी। उसे इनकी ख़ुशबू अच्छी लगती थी। अब जैसे इस सुगंध को उसने भुला दिया हो। बाहर लॉन में घास बाक़ायदा कटी होती। हर चौथे रोज़ मशीन फिरती। पहले माली एक वक़्त आता था, आजकल दोनों वक़्त आने लगा था। पानी का छिड़काव करने वाला कोठी के गेट से, पोर्च तक पानी का छिड़काव करता रहता। क्या मजाल जो धूल उड़ने पाए।

बेगम मुजीब को अपना-आप कुछ जुदा-जुदा-सा लगता। सुबह सोकर उठती और बिस्तर में वैसे-का-वैसा पड़े रहना उसे अच्छा-अच्छा लगता। बिस्तर में ही वह चाय मंगवा लेती। पहले कभी उसने ऐसा नहीं किया था। तड़के ही उठ जाया करती थी। सुबह की चाय अपने-आप बनाती थी। आजकल नहाने के लिए जाती तो कितनी-कितनी देर तक गुसलखाने में घुसी रहती। कई बरसों के बाद, कपड़े बदलने से पहले उसने सोचना शुरू कर दिया था। कभी किसी ब्लाउज़ को ढीला किया जाने लगा, कभी

किसी कुरते को तंग किया जाने लगा। नहाकर निकलती, तो बाल सवार-कर उन्हें खुला छोड़ देती। सारा दिन उसके बाल आगे-पीछे झम-झम करते रहते। कभी उसके चेहरे पर आ गिरते, कभी छाती पर। पहले वह रेडियो बस खबरें सुनने के लिए खोलती थी, आजकल खबरों के बाद उसे वह रेडियो बंद करना भूल जाती। अंदर-बाहर, काम करते हुए, आते-जाते, कोने में एक ओर पड़ा रेडियो धीरे-धीरे चलता रहता। फ़िल्मी गीत—'तू कौन-सी बदली में मेरे चांद है, आ जा', 'इक बंगला बने न्यारा', 'चुप-चुप खड़े हो ज़रूर कोई बात है,'''

कभी-कभी अकेले में बेगम मुजीब अपने मन को टटोलने लगती। उसे यह क्या हो रहा था? कल इतना ज़ोर से वह हंसी थी। परसों बावर्ची पर उसे इतना गुस्सा आया था। आजकल देर-रात गए तक उसे नींद नहीं आती थी। आपसे-आप, खिड़की से बाहर, आसमान में तारों को निहारती रहती। दिन-भर में सुने फ़िल्मी गीत, उनकी धुनें, उसके कानों में गूंजती रहती।

पिछली जुमेरात को वह अपने शौहर के मज़ार पर दीया जलाना भूल गई थी। उससे पिछली बार भी उसने दीया नहीं जलाया था। यह सोचकर बेगम मुजीब सिर से लेकर पांव तक कांप गई। वह पसीना-पसीना हो गई। पसीने की धारें उसके बदन पर चींटियों की तरह चल रही थीं। उसकी नाक, उसके कान लाल हो गए थे। अकेली, अपने कमरे में बैठी, उसकी आंखों से छल-छल आंसू बहने लगे, जैसे बाढ़ आ गई हो।

बेगम मुजीब ने देखा, सामने सड़क पर गेट खुला और महमूद आ रहा था। वह लपककर गुसलखाने में गई। अगले क्षण, मंद-मंद मुसकरा रही बेगम मुजीब, अपने मेहमान का स्वागत कर रही थी।

उस दिन अखबार में पढ़ी किसी रिपोर्ट के कुछ अंश वह महमूद को सुनाने लगी :

''भारत सरकार ने रोजगार की खुद कुर्बानी की गरज से आम लोगों के लिए कई योजनाएं बनाई हैं। एक योजना कारीगरों और तकनीकी जानकारी रखने वालों के लिए है। उन्हें अपने पेशे की फिर से सिखलाई कराई जाती है। नई-नई खोजों, नये-नये तरीकों से उनको जानकारी

करवाई जाती है। जिन्हें जरूरत हो, उन्हें डिप्लोमा और डिग्री के लिए तैयार किया जाता है। इस योजना के लिए वेशुमार अर्जियां आईं। इनमें से कई उम्मीदवारों को अपना धंधा शुरू करने के लिए दो-दो लाख तक रुपया भी क़र्ज़ दिया गया ताकि वह कोई घरेलू दस्तकारी शुरू कर सकें। लेकिन किसी भी मुसलमान ने इस योजना के लिए अर्जी नहीं भेजी। बस, एक अर्ज़ी कर्ज़ के लिए आई थी, जिसे मंज़ूर कर लिया गया। क्या इसका यह मतलव लगाया जाए कि मुसलमानों में वेरोजगारी नहीं है?"

महमूद ने सुना और जहर-आलूद हंसी हंसने लगा। "अम्मीजान! आप वड़ी भोली हैं। यह सव सरकारी ख़वरें होती हैं।"

"यह ख़वर सरकारी नहीं है," वेगम मुजीव ने अख़वार उसकी ओर फेंकते हुए कहा।

"किसी सरकारी पिट्ठू की होगी।" महमूद ने अख़वार को बिना देखे ही कहा।

"यह तो किसी सेमिनार के पेपर का कोई टुकड़ा हो।" वेगम मुजीव कह रही थी।

"किसी सुसरे हिन्दू की खोज होगी।" महमूद ने नाक-भौं चढ़ाकर कहा।

"लिखने वाला भी मुसलमान है।" वेगम मुजीव ने वढ़कर अख़वार महमूद के घुटनों से उठाया और पढ़ने के लिए उसकी आंखों के सामने ला रखा।

महमूद ने अख़वार की ओर देखा तक नहीं।

"आपको मालूम नहीं, हिन्दू किस तरह हमारी हस्ती को मिटाने पर तुले हैं।" महमूद वैसे-का-वैसा जहर उगल रहा था, "एक तरह से वे सच्चे भी हैं, हमने पाकिस्तान वना लिया है, अव हमारी जगह पाकिस्तान में है।"

"लेकिन क्या पाकिस्तानी भी यह मानते हैं? वह तो हिन्दुस्तानी मुसलमानों को एक नजर देखना नहीं चाहते। उन्होंने तो अपने मुल्क में घुसने पर पावंदी लगा दी है," वेगम मुजीव जैसे ताना दे रही थी।

"वेशक वे सच्चे हैं। इधर से गए लोग जमीन से जमीन काटने-

बाटने के लिए कहते हैं। रोजगार में रोजगार का बंटवारा चाहते हैं। कौन चाहता है कि उसकी जायदाद का कोई और हिस्सेदार बन बैठे?"

"तो फिर तुम भारतीय मुसलमान किस शह पर कूदते फिरते हो?"

"यही तो हमारी मुसीबत है। हमने पाकिस्तान बनवाया है। हमने कुरबानियां दी हैं। पाकिस्तान बनने के बाद पंजाबियों ने उसे संभाल लिया।"

"आजादी से पहले पंजाब में मुस्लिम लीग की सरकार तक नहीं थी।"

"हमें एक जंग और लड़नी होगी।"

"इधर या उधर?"

"इधर भी और उधर भी," महमूद ने कहा और उठकर गुसलखाने की ओर चला गया।

बेगम मुजीब को इस लड़के की कुछ समझ नहीं आ रही थी। वह हैरान हो रही थी, महमूद की कुछ बातें, जिनसे उसे कभी नफरत होती थी, आजकल उसे इतनी बुरी नहीं लगती थीं। उन्हें वह सुनने लग गई थी। नहीं तो कोई दिन थे, जब इस तरह की कोई बात करता तो वह भरी महफिल में उठ खड़ी होती। उसका जी चाहता, कानों में उंगलियां दे ले। अपने देश के खिलाफ मुंह में से बोल निकालने वाले के थप्पड़ दे मारे।

महमूद के लिए कॉफी बनाते हुए, आज फिर उसने आधा दूध और आधी कॉफी प्याले में घोली थी। वह तो काली कॉफी पीता था या फिर नाम मात्र का दूध। "जवान-जहान लड़कों को दूध पीना चाहिए। तुम्हें तो अभी कई लड़ाइयां लड़नी है" मुसकराते हुए बेगम मुजीब ने कॉफी का प्याला महमूद को पेश किया।

कल उसने फैसला किया था कि अब अगर महमूद बेवक्त उससे मिलने के लिए आया तो वह खाने के लिए उसे नहीं रोकेगी। न दिन के खाने के लिए, न रात के खाने के लिए। न मालूम, नौकर क्या सोचते होंगे? आईने के सामने, उसकी परछाईं गुबार उससे कह रही थी—'यह लड़का बड़ा मजूरे-नजर होता जा रहा है!' और फिर उसका रंग पीला पड़ने लगा। आगे-पीछे लोग जरूर बातें बनाते होंगे। लेकिन जब महमूद

लगा, वेगम मुजीव ने फिर उसे रोक लिया। फिर उसने आवाज़ देकर ख़ानसामा को वताया, "महमूद मियां खाना खाएंगे।"

और फिर वे वातें करने लगे। वातों-वातों में वेगम मुजीव ने जलाल-उद्दीन रूमी की मसनवी में से एक शे'र गुनगुनाया :

'मन ज़ि कुरआन मग़ज़ रा वर दुश्तम
उसतुखां पेशे-समां अन्दाख़्तम'

महमूद को फ़ारसी नहीं आती थी। वेगम मुजीव ने इस शे'र का अनुवाद करके उसे वताया :

'मैंने क़ुर-आन से उसका मग़ज़ निकाल लिया है
और वाक़ी हड्डियां कुत्तों के सामने फैंक दी हैं।'

"क्या मतलव ?" महमूद पूछने लगा।

"ज़रूरत यह है," वेगम मुजीव ने समझाया, "इस्लाम की असलियत को पहचाना जाए; कोरे दिखावे से कोई फ़ायदा नहीं।"

२०

घुप अंधेरी रात। ग़ज़व की सर्दी। वाहर वला का तूफ़ान जैसे उखाड़-उखाड़ फेंक रहा था। नदियां-नाले, ताल और तलैयों पर कुहरा जमा था। ऐसी ठंड जैसे विच्छुओं के डंक। अंगीठी में सुलग रहे कोयले राख से ढक गए थे, वुझ चुके थे। सोने के कमरे में अव उनकी लौ तक दिखाई नहीं देती। चारों ओर अंधेरा। घटाटोप अंधेरा।

वेगम मुजीव की मुसीवत थी कि वह कभी मुंह ढककर नहीं सो सकती थी। सर्दी हो चाहे गर्मी। यह उसने कभी सोचा भी नहीं था कि कोई रात उसे शिमला में भी काटनी पड़ेगी। शिमला की वर्फ़ानी ठंड।

इधर अंगीठी में आख़िरी कोयला ठंडा हुआ, उधर ज़ेवा ने करवटें वदलना शुरू कर दिया। कभी दाईं ओर, कभी वाईं। लड़की जैसे वेचैन हो रही हो। उसके पलंग की चरमर लगातार सुनाई दे रही थी। किराये

पर लिए गिमना के ये पलंग। किराये का फ्लैट।

बेगम मुजीब करवट बदलकर देखने लगीं। उन्हें यूं लगता है, जैसे ज़ेबा आँखें फाड़-फाड़कर उनकी ओर देख रही हो। इस समय! आधी रात का प्रहर। बेगम मुजीब की पलकें मुंद गईं।

कैसे चोरों की तरह ज़ेबा उनके पलंग की ओर घूर रही थी। क्यों? आखिर क्यों? बेशक आज की रात ठंड कुछ ज़्यादा थी, लेकिन जवान-जहान लड़की को ठंड की क्या परवाह? उनकी उम्र की लड़कियों को तो फर्श की मिट्टी पर नींद आकर दबोच लेती है। बेगम मुजीब ने उसके लिए गद्दे भी एक की जगह दो बिछाए थे। उसकी रजाई भी भारी थी। ऊपर इटली का कम्बल भी ओढ़ा था। शायद उसे गर्मी महसूस हो रही होगी। कम्बल और रजाई मिलकर कहाँ लड़की के लिए भारी तो नहीं हो गए थे?

लेकिन वह चोर आँखों से मां के पलंग की ओर घूर-घूरकर क्यों देख रही थी; जैसे अम्मी किसी के साथ भागकर जा रही हों! तीन बच्चों की मां, अम्मी कहां भागकर जाएगी! दो बेटियां और एक बेटा। बेशक उसका घरवाला नहीं रहा था। इस उम्र में वह कहां जाएगी? और फिर बेगम मुजीब को याद आने लगा, उनका शौहर जब अल्लाह को प्यारा हुआ था, हर कोई यही कहता था—कहर की मौत है। दुर्भाग्य बीवी के साथ जुल्म हुआ है। अभी उसने देखा ही क्या है! बीवी हमेशा जलती रही, मर्द फिरंगी की जैसे भोगता रहा। अब कहीं वक्त आया था कि सुख के चार दिन काटें। यह वक्त होता है जब मियां और बीवी एक-दूसरे को पहचानने लगते हैं। एक-दूसरे के साथ की कद्र करने लगते हैं।

ये सारी बातें, जो लोग बेगम मुजीब को देखकर कहते थे, ठीक थीं, लेकिन यह आखिरी बात जैसे उनके कलेजे में चुभकर रह गई हो। उस वक्त, जब उनके मर्द ने उनके भीतर की औरत को पहचानना था, अल्लाह ने उसे छीन लिया था। कभी-कभी बेगम मुजीब को लगता, जैसे उनके साथ धोखा हुआ हो। किस्मत ने दगा किया था। एक फरेब। उनका हक मार लिया गया था। उनके हाथ में से जैसे किसी ने जन्नत छीन ली हो।

अब ज़िंदगी जैसे एक बीहड़ हो। एक रेगिस्तान। जाड़े की बर्फ़ीली हवा कंपकंपी पैदा कर रही थी।

पलकें मूंदे हुए, सोच में डूबी बेगम मुजीब को लगा, जैसे सामने पलंग पर कोई उठकर बैठ गया हो। और उसने हौले-हौले पलकें खोलीं—आधी बंद, आधी खुली। और उसकी ऊपर सांस ऊपर और नीचे की सांस नीचे रह गई हो। ज़ेबा ने रज़ाई को आहिस्ता से उतारकर एक ओर कर दिया था। चोरों की तरह एक नज़र अम्मी के पलंग को टिकाए हुए, वह बिस्तर में से निकल आई थी। एक टांग धीरे से पलंग से बाहर, और एक पांव चप्पल में। फिर दूसरी टांग धीरे से पलंग से बाहर और दूसरा पांव चप्पल में। नज़रें वैसी-की-वैसी अम्मी की मुंदी हुई पलकों पर टिकाए हुए।

अगले क्षण अपने महकते हुए बालों को समेटकर गांठ लगाई और रेशमी 'नाइटी' में अधनंगी, अधढकी वह बाहर निकल गई। इस समय कहां जा रही थी? शायद गुसलख़ाने में गई होगी। लेकिन अपने-आपको अच्छी तरह ढक तो लेती। शायद जल्दी में होगी। जवान-जहान लड़कियों को कहां ठंड लगती है!

लेकिन बाहर जाने से पहले, बिस्तर छोड़ने से पहले, यूं एकटक अम्मी के पलंग की ओर क्यों देख रही थी? जैसे कोई चोर सेंध लगाने से पहले इधर-उधर देखता है।

गुसलख़ाने का दरवाज़ा खुला था। बाथरूम गई थी। पेट ख़राब होगा। यही तो पहाड़ी शहरों में ख़राबी है। चाहे शिमला ही क्यों न हो। यहां का पानी किसीको मुआफ़िक़ नहीं आता। मालिक मकान सोने के कमरे के साथ गुसलख़ाना नहीं बनवा सकता। ढेर सारा किराया। कमरे से निकलो, आंगन पार करो, फिर कहीं जाकर सामने बरामदे में गुसल-ख़ाना था। शिमला की ठंड में, अगर किसी रात किसीको बाथरूम जाना हो तो समझो, निमोनिया हुआ कि हुआ। अब लड़की कैसे निकल गई थी। झिलमिल करती हुई नाइटी में। ठंड नहीं लगेगी तो क्या होगा···

लेकिन लड़की ने इतनी देर क्यों कर दी थी? गुसलख़ाने में ही जाकर बैठ गई थी। बाहर ठंड कितनी थी!

बेगम मुजीब कुछ देर और इन्तज़ार करती रही। फिर अचानक वह चौंक उठी। गुसलखाने का दूसरा दरवाज़ा—साथ के फ्लैट में खुलता था। उस फ्लैट में एक कुंवारा लड़का रहता था। जवान-जहान। एम० ए० का इम्तिहान देकर शिमला सैर के लिए आया था। वैसे उस दरवाज़े की चटखनी बंद रहती है। लेकिन चटखनी खुल भी तो सकती थी। हो न हो···यही···मैं मरी···।

और बेगम मुजीब अपनी रज़ाई को परे फेंक, वैसी-की-वैसी नंगे पाँव बाहर आँगन में जा पहुँची। सचमुच सामने बरामदे में गुसलखाने का दरवाज़ा खुला था। अगर दरवाज़ा खुला था तो ज़ेबा गुसलखाने में नहीं हो सकती थी।

फिर ज़ेबा कहाँ थी? बेगम मुजीब अपने कमरे में लौटकर आईं। ज़ेबा का पलंग खाली था। बैठक खाली थी। आँगन खाली था। गुसलखाना खाली था। ज़ेबा कहाँ डूब गई थी?

और फिर बेगम मुजीब को लगा, जैसे साथ के फ्लैट में खुसर-फुसर हो रही हो। आँगन में खड़ी बरबस वह पुकार उठी—ज़ेबा, ज़ेबा··· एक बार, दो बार, तीन बार। शिमला की ठंडी रात के अंधेरे में, एक अकेली औरत पसीना-पसीना हो रही थी और फिर उसने देखा, सामने गुसलखाने में से ज़ेबा एक भीगी बिल्ली की तरह आँख चुराए, लजाई-लजाई-सी आ रही थी; जैसे पानी-पानी हो रही हो। चोर सेंध लगाते हुए पकड़ा गया था।

आधी रात का समय था। बेगम मुजीब ने अपनी बेटी से कुछ नहीं कहा। गुसलखाने की चटखनी लगाकर, अपने पलंग पर औंधी जा पड़ी। जैसे कोई अंधे कुएँ में उतरता जा रहा हो। वह डूबती जा रही थी, नीचे और नीचे।

बाहर धूप निकल आई थी, जब उसकी आँख खुली। उसने करवट ली और क्या देखती है कि पड़ोसी नौजवान का नौकर उसके सामने खड़ा था। उसके हाथ में एक लिफ़ाफ़ा था, जिसमें बस एक पंक्ति की एक चिट्ठी थी. 'मैं ज़ेबा से प्यार करता हूँ। आप मुझे अपना दामाद बना सकते हैं?' बेगम मुजीब ने चिट्ठी को लिफ़ाफ़े में डाला और उसे अपने

तकिये के नीचे रख दिया। कितनी देर वह वैसी-की-वैसी लेटी रही। ज़ेवा रसोईघर में व्यस्त थी।

बेगम मुजीब की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। उसका सारा गुस्सा न जाने कहां काफ़ूर हो गया था। उसका अंग-अंग जैसे एक स्वाद-स्वाद में विभोर हो रहा था।

और फिर बेगम मुजीब पलंग से उठकर ग़ुसलख़ाने में जा घुसी। कितनी ही देर गीज़र से गर्म किए हुए पानी में नहाती रही। हल्की-फुल्की होकर वह बाहर निकली और सजने लगी। ज़ेवा नाश्ता करके सैर को निकल गई थी। किस मुंह से अपनी अम्मी के सामने आती? पगली लड़की।

आज उसका शृंगार ही जैसे ख़त्म होने को न आ रहा हो। चूड़ीदार पाजामा। खुला कुरता, और ऊपर शॉल। जैसे कोई पहाड़िन हो। बेगम मुजीब साथ के फ़्लैट में जा पहुंची।

यह तो महमूद था। पलंग पर पड़ा था। बुखार में उसका बदन भट्ठी की तरह तप रहा था। बेगम मुजीब ने उसे देखा और उसके मुंह, माथे, गालों, गर्दन, गिरेबान, कंधों, छाती को प्यार करने लगी। दीवानों की तरह वह उसे प्यार किए जा रही थी। उसके पलंग पर बैठी। उसके साथ लेटी, उसे अपने बाहुपाश में लिए, चूम-चूमकर उसने उसे फूल की तरह महका लिया था। मंद-मंद मुसकरा रहा। शान्त, निश्चल, ख़ुशियां बिखेरता हुआ।

"अम्मी! अम्मी!! आज आप सोई ही रहेंगी?" ज़ेवा उसके कमरे में खड़ी उसे जगा रही थी। कितना अजीब सपना था! कितना भयानक! बेगम मुजीब पसीना-पसीना हो रही थी। और फिर ज़ेवा उसके साथ पलंग पर बैठ गई।

फटी-फटी आंखों से बेगम मुजीब ज़ेवा की ओर देख रही थी। कभी उसके हाथों को अपने हाथों में लेकर दबाती। कभी उसकी बांहों को टटोलकर देखती। कभी उसके गालों को छूती। कभी उसके बालों को सहलाती!

"अम्मी! आप शायद कोई सपना देख रही थीं?" ज़ेवा ने मां को लाड़

से अपने बाहु-पाश में ले लिया। कैसा सपना था, बेगम मुजीब उसके बारे में सोचती और सिर से पांव तक कांप-कांप जातीं।

२१

बेगम मुजीब कितनी ही देर तक स्तब्ध-सी पलंग पर पड़ी रहीं। पसीने में जैसे नहा गई हों। "आपको क्या हो रहा है?" जेबा बार-बार अम्मी से पूछ रही थी। उनके मुंह पर बिखरे हुए बालों को हटाकर पीछे कर रही थी।

"सपना था।" बेगम मुजीब ने आखिर कहा और एक फीकी-सी हंसी उनके चेहरे पर खेलने लगी। "सपना था।" और फिर सिर से पांव तक एक कपकंपी-सी उनके शरीर में दौड़ गई।

"मैं आपको चाय का प्याला लाकर देती हूं।" और जेबा रसोई में चली गई।

बेगम मुजीब सोच रही थीं कि यह कैसा सपना था? शिमला गए हुए उन्हें कई वर्ष हो चुके थे। तब जेबा पैदा भी नहीं हुई थी। फिर महमूद वहां से आ गया? उसे तो पहली बार उसने कल शाम पहले ही देखा था।

अजीब गड़बड़ थी। बेगम मुजीब सोच रही थीं कि शायद पिछली शाम जब वह जेबा को लेने के लिए रेलवे स्टेशन पर गई थीं, महमूद उसके साथ था। और जेबा को उसे देखकर जैसे भौंहें चढ़ गई हों। सीधे मुंह उसने उससे बात नहीं की थी। गाड़ी लेट थी और घर आकर मां-बेटी अपने-अपने कमरे में सो गई थीं। उन्हें इस बारे में बात करने का अवसर नहीं मिला था। नहीं तो बेगम मुजीब जेबा को जरूर फटकारतीं। यह भी कोई बात हुई? कुछ भी हो, किसी को तमीज तो नहीं छोड़नी चाहिए।

चाय का प्याला जेबा के हाथ से लेकर, बेगम मुजीब ने एक घूंट भरा और बेटी को बांह से पकड़कर अपने पास बिठा लिया।

"वेटी ! कल रात रेलवे स्टेशन पर जब गाड़ी रुकी, मेरे साथ प्लेट-फार्म पर महमूद को देखकर तेरे माथे पर जैसे वल पड़ गए हों ?"

"हां।" ज़ेवा ने रूखेपन से कहा।

"तुझसे मिलने के लिए वह आगे बढ़ा और तुम मेरे गले लग गई। वह इंतजार करता रहा, करता रहा। और फिर तुम कुली को सामान के बारे में बताने लगीं। तुमने उसकी आंख के साथ आंख नहीं मिलाई।"

"ठीक है।"

"मोटर में उसने पूछा—अलीगढ़ में तुमने इतने दिन लगा दिए ? तुमने इसका कोई जवाब नहीं दिया।"

"हां।"

"फिर जब वह जाने लगा, तुमने उसका शुक्रिया तक नहीं किया। वेचारा अपनी गाड़ी में तुम्हें स्टेशन से लाया था।"

"हां।"

"क्या यह वदतमीज़ी नहीं ?"

"अम्मी ! आप वस मुझे इतना बता दें—अलीगढ़ के फ़सादों के बारे में सबसे पहले ख़बर आपको किसने दी थी ?"

"महमूद ने। पर इस वेहूदगी का उससे क्या ताल्लुक़ ?"

"इतवार का दिन था न ?"

"हां ! तुमने ही तो कहा था कि आज इतवार है, ट्रंककाल के रेट आए होंगे।"

इतने में वाहर गैलरी में टेलीफ़ोन वजने लगा और ज़ेवा टेलीफ़ोन सुनने के लिए चली गई। मां ने सोचा कि टेलीफ़ोन शायद उसकी किसी सहेली का होगा। कितनी ही देर तक वह टेलीफ़ोन पर इधर-उधर की वातें करती रही। जवान-जहान लड़कियों की वातें। वात में से वात निकलती आ रही थी। वेगम मुजीव उठकर ग़ुसलख़ाने गई। ग़ुसलख़ाने से होकर भी आ गई। ज़ेवा अभी तक टेलीफ़ोन से चिपटी हुई थी।

र फिर वेगम मुजीव घर के कामकाज में लग गई। अलीगढ़ से ...तों को खोल-खोलकर देखने लगी। वात आई-गई हो गई। ...लीगढ़ से था। राजीव का। जब तक टेलीफ़ोन एक्सचेंज

बातों ने उनकी बोरियत दूर कर दी, वे बातें करते रहे। टेलीफोन सुनकर जब वह हटी, न तो अम्मी ने उससे पूछा कि टेलीफोन किसका था, और न ही जेबा ने मां को यह बताने की ज़रूरत महसूस की।

'अजीब सूना-सूना लगता है तुम्हारे जाने के बाद!' राजीव के बोल बार-बार उसके कानों में गूंजने लगते।

लेकिन सबसे ज़रूरी खबर जो जेबा अपनी मां को बताना चाहती थी, उसका अभी तक उसे अवसर नहीं मिला था।

राजीव, लंदन में पढ़ रहे जेबा के भाई ज़ाहिद को जानता था। वे आपस में मिलते-जुलते रहते थे। राजीव का ख्याल था कि उसने किसी फ़िरंगिन से शादी करवा ली थी। अगर शादी नहीं भी करवाई थी तो भी वे मियां-बीवी की तरह रह रहे थे। हर जगह इकट्ठे देखे जाते थे। राजीव तो एक बार उनके अपार्टमेंट में भी गया था। फ़िरंगिन लड़की ज़ाहिद की लैंड लेडी की बेटी थी। राजीव को ऐसा लगा, जैसे ज़ाहिद का अपना घर हो। इस तरह बेतकल्लुफ़ी से वह रह रहा था। उसका हिन्दुस्तान लौटने का कोई इरादा दिखाई नहीं देता था, और न ही पाकिस्तान जाने का। पाकिस्तान का तो वह नाम तक लेने को तैयार नहीं था। पाकिस्तान के ख़िलाफ़ जब भी कोई रैली होती चाहे पाकिस्तानियों की तरफ़ से हो या हिन्दुस्तानियों की तरफ़, वे वह हमेशा उसमें आगे-आगे रहता था।

दोपहर के खाने से निबटकर, जब जेबा ने अम्मी से बात की तो बेगम मुजीब के जैसे तोते सूख गए हों। "उनके अब्बा सारी उम्र फ़िरंगी से लड़ते रहे और बेटा फ़िरंगी से रिश्ता जोड़ने को फ़िरता है!" आख़िर बेगम मुजीब के मुंह से निकला।

"इसमें परेशान होने की क्या बात है? भारत ने भी अंग्रेज़ के साथ आज़ादी की जंग लड़ी। अब देश आज़ाद होने के बाद फ़िरंगी से नाता जोड़ लिया है। कामनवैल्थ का मेम्बर बन गया है।" जेबा सामने से मुस्करा रही थी।

"मुझे यह बेकार की बातें पसंद नहीं।" बेगम मुजीब का खून खौल रहा था।

"अम्मी ! इसमें खफ़ा होने की क्या वात है ? मुझे तो वहुत अच्छा लग रहा है कि हमारे घर मेम भाभी आएगी।"

"गिट-मिट-गिट-मिट अंग्रेज़ी वोला करेगी।" वेगम मुजीव ने चिढ़-कर कहा।

"नहीं, राजीव कह रहा था कि भैया उसे उर्दू सिखा रहा है।"

"यह राजीव कौन है ?" अम्मी ने हैरान होकर ज़ेवा से पूछा। जव से लौटी थी, ज़ेवा कई वार उसका ज़िक्र कर चुकी थी। जव भी उसका नाम इसके मुंह से निकलता, ज़ेवा के होंठों में जैसे शहद घुल-घुल जाता हो।

'यह राजीव कौन है ?'

'यह राजीव कौन है ??'

'यह राजीव कौन है ???'

अम्मी के ये शब्द ज़ेवा के कानों में गुम्वद की आवाज़ की तरह गूंज रहे थे।

"अम्मी ! आपके मायके-घर के पड़ोसी राय साहव राम जवाया का वेटा।"

"वह राजू ! वह राजीव कव से हो गया ? उसकी तो नाक वहा करती थी !"

"अव देखो तो सही उसे। विलायत पास करके आया है। कितना वांका जवान निकला है। उसकी तरफ़ तो देखा तक नहीं जाता। ऊंचा-ऊंचा, लंवा, सांवला सलोना···"

"जैसे कृष्ण कन्हैया हो।" वेगम मुजीव ने जानवूझकर ज़ेवा की टांग खींची। नहीं तो क्या मालूम वह कव तक वके जाती। कुछ इस तरह वह शुरू हुई थी।

और फिर वेगम मुजीव देख-देखकर हैरान होती रहतीं। अलीगढ़ से हर दूसरे-चौथे रोज़ टेलीफ़ोन आ जाता। एक वार टेलीफ़ोन आता और कितनी-कितनी देर ज़ेवा चोंगे को कानों से लगाए, गोंद की तरह चिपकी रहती।

लेकिन ज़ेवा तो अम्मी के लिए जाहिद की एक और समस्या वांध

लाई थी। एक-आध दिन इसपर विचार करके आखिर बेगम मुजीब ने जाहिद को चिट्ठी लिखी। लम्बी-चौड़ी शिकायतें—'मुझे तुम्हारे हर महीने भेजे पैसों की कोई जरूरत नहीं। सीमा हमारे मुंह पर कालिख पोतकर चली गई। अब जेबा का ब्याह करना है। आखिर यह लड़की कब तक कुंवारी बैठी रहेगी? जवान-जहान; पढ़ी-लिखी, ब्याहने-लायक। मैं अपनी जिम्मेदारी से सुर्खरू होना चाहती हूं। बस, तुम यह चिट्ठी देखते ही लौट आओ। कोई-न-कोई नौकरी तुम्हें यहां भी मिल जाएगी। और फिर तुम्हारा भी तो ब्याह करना है'''

जेबा ने अम्मी की लिखी हुई चिट्ठी पढ़ी, और नीचे एक पंक्ति अपनी ओर से जोड़ दी—'भैया, अगर तुमने शादी कर ली है तो भाभी को लेकर आ जाओ। लेकिन आओ जरूर।—जेबा।'

२२

शेख शब्बीर की हालत ठीक नहीं थी। उसे पहले जैसे दौरे पड़ते थे। उसने पाकिस्तान जाकर भी देख लिया। लाहौर में कई दिन तक उसका इलाज होता रहा। पागलखाने में भी रहा। डाक्टर यही कहते कि मरीज को कोई गहरा सदमा पहुंचा है। और शेख शब्बीर था कि अपने दिल की गांठ नहीं खोल रहा था। क्या तो डाक्टर और क्या वैज्ञानिक, सब सिर पटककर रह गए।

अब उसमें एक नई तब्दीली आ गई थी। पांचों वक्त नमाज पढ़ता। रोजे रखता। हज भी कर आया था। सारा दिन बस दो ही काम थे। या तो तसबीह फेरता रहता या फिर लोटा थामे वुजू करता रहता। टखनों से ऊंचा पायजामा, मौलवियों जैसी दाढ़ी, होंठों के ऊपर मुंह के इधर-उधर तराशे हुए बाल। हर बार पेशाब करके उठना, कितनी-कितनी देर 'वटवानी' करता रहता। आजकल पेशाब भी उसे बार-बार आने लगा था। अपने मुंह से कबूल नहीं रहा था, लेकिन पाकिस्तान आकर

सख़्त परेशान था।

लाहौर से गुजरांवाला, गुजरांवाला से गुजरात, गुजरात से जेहलम; जेहलम से अब रावलपिंडी जा पहुंचा था। रावलपिंडी में भी छावनी के पास किसी बस्ती में किराये पर एक मकान मिला था। कामकाज कुछ नहीं था। काम करने की न तो उसकी उम्र थी और न उसकी सेहत साथ देती थी।

उसके पाकिस्तान आने के कुछ देर बाद, शेख़ शब्बीर की जवान-जहान बेटी नूरी किसी पंजाबी लड़के के साथ निकल गई थी। कितने दिन धूल छानकर जब उसका अता-पता मिला, शेख़ शब्बीर ने लड़की का, उसी लड़के के साथ निकाह कर दिया। कितनी देर तो लड़के का धंधा उसकी समझ में नहीं आया था। कई-कई दिन घर से ग़ायब रहता। कभी फ़ाकामस्ती तो कभी पैसों की रेल-पेल। शेख़ शब्बीर हैरान होता रहता।

फिर उसे पता चला कि लड़का भारत-पाक सीमा पर तस्करी का धंधा करता था। सूती और रेशमी कपड़े से लदे ट्रक; चीनी, चाय, पान के पत्ते, केले, आम, मिर्च-मसाले, तरह-तरह की शराब, एक दिन नूरी उसे बता रही थी कि स्कूली बच्चों की कापियां तक भारत से स्मगल होकर आती हैं।

"इधर से भी तो कुछ जाता होगा?" शेख़ शब्बीर ने नूरी से पूछा। एक पाकिस्तानी की ग़ैरत, वह यह मानने के लिए तैयार नहीं था कि उनके मुल्क को इन सब चीज़ों के लिए पड़ोसी देश का मुंह ताकना पड़ता है।

नूरी ख़ामोश रही। उसे इसकी जानकारी नहीं थी।

पैसा हाथ का मैल होता है। आता रहता है, जाता रहता है। शेख़ शब्बीर को इसकी परवाह नहीं थी। लेकिन उसे परेशान करने वाली बात यह थी कि नूरी का मियां अपनी बीवी के साथ बदतमीजी से पेश आता है। 'तू'-'तू' कहकर उसे बुलाता। कड़वा बोलता। मां-बहन की गाली तो जैसे उसके होंठों पर रहती थी। और अब नूरी पर उसने हाथ उठाना भी शुरू कर दिया था।

उन दिनों शेख़ शब्बीर का लाहौर के पागलखाने में इला...

था। एक दिन वह नूरी के यहा गया। उसने देखा, लड़की के जिस्म पर नील-ही-नील पड़े थे और अपने कमरे में औंधी गिरी हुई थी। पूछने पर पता चला कि उसके शौहर ने पिछली रात दारू पीकर उसे पीटा था और आप सुबह-सवेरे ही कहीं बाहर निकल गया था। लड़की, जैसे दर्द की गठरी बनी पलंग पर पड़ी थी। अभी शेख शब्बीर नूरी से पूछताछ कर रहा था कि उसका दामाद आ गया।

"यह क्या बदतमीजी है, लड़की को यू वैरियों की तरह पीटना?" शेख शब्बीर लड़के को देखकर खफा हो रहा था।

"अब्बाजान! रसूल अल्लाह का फ़रमान है कि औरत की कभी-कभी पिटाई करनी चाहिए।" सिगरेट का कश लगाते हुए दामाद बोला।

शेख शब्बीर की उगलिया उसके हाथ में पकड़ी तसवीर पर तेज़-तेज़ चलने लगीं।

शेख शब्बीर का बेटा कबीर मजे में रह रहा था। उनके पाकिस्तान पहुचने के बाद ही उसके चाचा ज़ुबैर ने उसे पी० डब्ल्यू० डी० में भरती करवा दिया था। तनख्वाह चाहे कम थी, ऊपर की आमदनी ढेर-सारी हो जाती थी। बस एक ही खराबी थी कि उसका ब्याह भी एक पजाबी लड़की के साथ हुआ था। और वह उसपर पूरी तरह से हावी थी। एक के बाद एक, दो बच्चे उसने पैदा कर लिए थे। न मा-बाप से, न किसी और रिश्तेदार से उसे मिलने देती। बेहूदा फैशन। लिपस्टिक से रगे होंठ, सुर्खी, पाउडर से पुते गाल, कटे हुए बाल, लटें मुह पर पड रही। शेख शब्बीर को यह सब एक आख नहीं भाता था। सबसे ज्यादा तकलीफ़ उसे अपनी बहू की बोल-चाल पर होती। उसकी पजाबी तो वह कुछ-कुछ समझने लगा था लेकिन जब वह उर्दू बोलने की कोशिश करती तो यू लगता जैसे उसके सीने पर तड-तड गोलिया बरस रही हों। ग़लत मुहावरा, ग़लत उच्चारण, उल्टे-सीधे फिकरे। कहीं पजाबी, कहीं उर्दू। एक दिन कहने लगी, "यहा पर तो 'हैड्डू' भी सस्ता होना चाहिए।"

"यह 'हैड्डू' क्या?" शेख शब्बीर ने हैरान होकर पूछा।

"हैड्डू? हैड्डू का मतलब हैड्डू," यह कहते हुए उसने अपने ससुर की तरफ ऐसे देखा, जैसे वह निपट गवार हो।

सबसे बढ़कर शेख़ शब्बीर को यह दुःख था कि उसके अपने बेटे कबीर का लहजा भी बिगड़ रहा था। पंजाबी सुन-सुनकर पंजाबी बोलने की कोशिश में उसकी ज़बान अजीब-सी होती जा रही थी।

ज़बान का फ़र्क़, रहन-सहन का फ़र्क़, पंजाबिन बहू अपने घरवाले को सगे-संबंधियों से दूर-दूर रखती। और फिर उनके तबादले भी दूर-दूर शहरों में होने लगे थे। कहीं पुल बन रहा होता, कहीं सड़कें। कहीं नहर खोदी जा रही होती, कहीं बांध बांधे जा रहे होते।

शेख़ शब्बीर सोचता, जहां भी रहे, लड़का खुश रहे। अपने बाल-बच्चों को पाले। उसने कभी अपने बेटे की आमदनी पर नज़र नहीं रखी थी। अल्लाह ने उसे अपने लिए काफ़ी दे रखा था। इस ज़िंदगी में उससे ख़त्म होने वाला नहीं था। मियां-बीबी दो जीव, उनका ख़र्च भी कितना था? वे तो रूखी-सूखी खाकर भी वक़्त काट सकते थे। बस एक ही चिन्ता थी, और वह अपनी बीमारी की। जब कभी दौरा पड़ता तो कई-कई दिन न उसे खाना अच्छा लगता, न पीना। यही जी चाहता कि कपड़े फाड़कर वह कहीं निकल जाए। सोए-सोए 'अल्लाह हू', 'अल्लाह हू' बोलने लगता। फटी-फटी आंखें। तब न वह बीबी को, न बेटे-बेटी को, न किसी और रिश्तेदार को पहचानता। जो मुंह में आता, बके जाता। न सिर, न पैर। किसीकी समझ में कुछ न आता।

"मारो, मारो! गुंडे, बदमाश, पैसे भी खा गए, लूटकर भी ले गए। पाकिस्तानियों का पाकिस्तान, हिन्दुस्तानियों का हिन्दुस्तान। आटे में घुन। चक्की में आटा। अल्लाह हू! अल्लाह हू! मेरे बाप का लिहाज़! मेरे ताऊ का लिहाज़! मेरी मां के आंसू! मुझे काट क्यों नहीं देते? कुंद छुरियां! मुझे गोली से क्यों नहीं उड़ाते! देसी हथियार। कोई शर्म, कोई हया। अल्लाह हू, अल्लाह हू! एक, दो, तीन, चार, पांच, छः···छक छक छक, छक छक, छक। दगड़ दगड़ दगड़। डज़ डज़, ठू-ठा। कच्ची कुंवारी गाड़ी के नीचे आ गई। लहू-लुहान हो गई। फाटक जो बंद नहीं था। टक्कर तो होनी ही थी। अल्लाह हू, अल्लाह हू! मैं कहता हूं, अल्लाह हू! अल्लाह हू! करने का क्या फ़ायदा? तसबीह फेरनी चाहिए। ताले लगाने चाहिएं। 'विर्द' करना चाहिए। गांठ बांधकर रखनी चाहिए। न कोई

आए, न कोई जाए। कच्ची-कुंवारी जैसे कोंपल हो, कच्ची कुवारी जैसे कली हो। अल्लाह हू ! अल्लाह हू ! चोरी करे तो हाथ काट दो। यारी करे तो सौ कोड़े मारो। दारू न पिओ, जुआ न खेलो ! चार बीवियां ईमान हैं। दो औरतें एक मर्द के बराबर हैं। एक लड़की छः मर्दों के पासंग भर। अल्लाह हू ! अल्लाह हू !"

इस तरह आप-से-आप घंटों बोलता रहता। बोलता-बोलता बाहर निकल जाता। न किसीके रोके रुकता। न किसीके बांधे बंधता।

जब दौरा खत्म होता। ठंडा यख़ हो जाता। भला-चंगा, जैसे कभी कुछ हुआ ही न हो।

२३

जाहिद की फ़िरंगिन लड़की के साथ बस दोस्ती ही थी, उनकी शादी नहीं हुई थी। कम-से-कम वह लड़की उसके साथ नहीं आई। जाहिद अपनी अम्मी के कहने पर पहली फुरसत में मिलने के लिए आ गया। बेगम मुजीब ने उसे लौट जाने नहीं दिया। कह-सुनकर उसे एक अच्छी-सी नौकरी दिलवा दी। शेख मुजीब के बेटे के लिए सरकार सब कुछ करने को तैयार थी। और फिर जाहिद के पास इतनी बड़ी डाक्टर-डिग्री थी। उसकी नियुक्ति भी मेरठ अस्पताल में कर दी गई, ताकि अपनी मां की देख-भाल कर सके।

यह सब करने में कई महीने लग गए। बेगम मुजीब को अब यह तसल्ली थी कि बेटा घर लौट आया था। वह वैसे सुर्खरू हो गई थी। बस, अब दो ही काम रह गए थे। जाहिद और ज़ेबा का ब्याह रचाना। पहले जाहिद का जो बड़ा था और फिर ज़ेबा का।

जाहिद को आए अभी बहुत दिन नहीं हुए थे कि बेगम मुजीब ने उसके लिए लड़की ढूंढ़ना शुरू कर दिया। एक उम्र आती है जब हर औरत को लड़के, लड़कियों के ब्याह रचाने में मज़ा आता है।—ख़ास

अपने हों या पराये। महमूद के मां-बाप पाकिस्तान से ख़ाली हाथ लौट आए थे। उसकी बहन के लिए उनको कोई उचित रिश्ता नहीं मिला था। एक-दो लड़के नजर में आए भी, मगर महमूद की बहन रुख़साना ने उन्हें रद्द कर दिया। और फिर रुख़साना ने कहना शुरू कर दिया—मेरा तो यहां दम घुटता है। वास्तव में उन दिनों पाकिस्तानी मुल्ला लोग औरतों के पर्दे पर बड़ा जोर दे रहे थे। बुरक़े के बिना गली-बाजार में निकली औरतों पर लोग आवाजें कसते थे। रुख़साना की अम्मी तो चादर ओढ़ लेती मगर रुख़साना से बुरक़ा नहीं पहना जाता था। उसे आदत ही नहीं थी। उसका जी घबराने लगता। यूं महसूस होता, जैसे किसीने उसे जकड़कर रख दिया हो। उसके सिर पर तो चुनरी भी बड़ी मुश्किल से ठहरती थी। उसकी अम्मी बार-बार उसे टोकती रहती। बार-बार उसे याद दिलाती रहती।

उस दिन तो हद ही हो गई। रुख़साना अपनी चचाजाद बहनों के साथ रावलपिंडी की किसी गली में जा रही थी। उसके बालों की दो चोटियां छाती पर लहरा रही थीं। उसकी चुनरी उसके सिर से फिसलकर कंधों पर से लुढ़कती जमीन पर घिसट रही थी। लड़कियां हंस-बोल रही किसी बात का मजा ले रही थीं कि अचानक एक लम्बी दाढ़ीवाला मौलवी, हाथों में कैंची लिए उनके सामने आ खड़ा हुआ। "ठहर तो जा कमजात!" रुख़साना को उसने कंधों से पकड़कर रोक लिया। "तेरी इन दो चोटियों को कतरकर मैं तेरे हाथ में देता हूं—जिनकी तू इस तरह नुमाइश कर रही है।" रुख़साना के सोते सूख गए। उसे लगा, जैसे मूर्च्छित होकर वह गली में ही औंधी जा गिरेगी। इतने में किसीने आकर मुल्ला को बताया, "लड़की परदेसी है, पाकिस्तानी नहीं," तब कहीं वह बाज आया। और जब उसने सुना कि वह भारत से आई है तो उसने जोर से गला साफ़ करते हुए थूक दिया। लाहौल पढ़ता हुआ, 'काफ़िर मुल्क', 'काफ़िर मुल्क' कहता चला गया।

रुख़साना ने बड़ी मुश्किल से वह रात पाकिस्तान में गुजारी। अगले दिन गाड़ी में बैठकर वे लोग स्वदेश लौट आए।

रुख़साना अत्यन्त सुन्दर लड़की थी। मसूरी कानवेंट की पढ़ी हुई।

सजने-संवरने की शौक़ीन। वह तो अभी स्कूल में ही थी कि उसने नाखूनों को रंगना शुरू कर दिया था। कालेज में पहुंची तो उसका हेयर ड्रेसर के बाकायदा आना-जाना शुरू हो गया। हम-उम्र लड़कियों में मिलकर उसने कई शरारतें भी की थीं। सिगरेट की डिबिया तो वह प्राय: अपने हैंड-बैग में रखती थी, जैसाकि उन दिनों फ़ैशनपरस्त लड़कियों का तौर-तरीक़ा था। पिएं-न-पिएं किसी बहाने बटुआ खोलकर सिगरेट की डिबिया की नुमाइश ज़रूर कर देती।

गाड़ी में बैठी रुख़साना सोचती रही, वह तो पाकिस्तान में कभी नहीं रह सकेगी। पाकिस्तानी फ़िल्में एकदम बोर थीं। जो कोई ढंग की थीं, वे हिन्दुस्तानी फ़िल्मों की हू-ब-हू नक़ल थीं। पाकिस्तान में रहने का मतलब ही क्या जो सारा दिन कोई हिन्दुस्तानी रेडियो सुनता रहे ? कभी 'उर्दू सर्विस' तो कभी 'विविध भारती'। पाकिस्तान में रहने का मतलब ही क्या जो कोई हिन्दुस्तानी फ़िल्म-स्टारों के फ़ैशन की नक़ल करता रहे ? पाकिस्तान में उन दिनों उसके हाथ उर्दू का एक पुराना रिसाला आ गया। उसमें एक कार्टून था। नेहरू क्लास रूम में बैठा सनेट पर सवाल हल कर रहा है, लियाक़त अली पीछे बैठा चुपके से नक़ल टीप रहा है। और सामने ब्लैक-बोर्ड पर लिखा है, 'कान्स्टीट्यूशन'। रुख़साना को जब उसका ध्यान आता तो उसकी हंसी छूटने लगती।

बेगम मुजीब ने रुख़साना को देखा और उसकी दीवानी हो गई। उसका जी चाहता कि रात होने से पहले उस लड़की को बहू बनाकर वह अपने घर ले आए। वह हैरान होती रहती कि इतने दिन उस लड़की पर उसकी नज़र क्यों नहीं पड़ी। लेकिन रुख़साना तो मसूरी में पढ़ी थी, होस्टल में रहती थी, अपने शहर कभी-कभार आती थी। उसका अब्बा अंग्रेज़ सरकार का कट्टर पिट्ठू था। फिर लीगियों से उसका याराना हो गया। शेख़ मुजीब से उसका परिचय तो था, लेकिन उनके घरवालों का आपस में मेल-मिलाप नहीं हुआ था।

जेबा अपनी अम्मी की हर कमज़ोरी को पहचानती थी। इससे पहले कि वह इस तरह की कोई ग़लती कर बैठे, एक दिन जेबा ने अम्मी को एक तसवीर लाकर दिखाई। किसी फ़िरंगी लड़की की तसवीर थी।

"अम्मीजान ! आप वेकार ज़ाहिद भाई के व्याह के लिए परेशान रहती हैं। भैया ने तो अपने लिए लड़की ढूंढ़ रखी है।"

"यह कौन है ?" वेगम मुजीव ने तसवीर को ध्यान से देखे विना नीचे फेंक दिया।

"तसवीर को यूं फेंकने से किसीकी महवूवा को उसके दिल से तो नहीं निकाला जा सकता।" ज़ेवा तसवीर को फ़र्श से उठाकर फिर अम्मी के पास ले आई। "आप इसे देखें तो सही। लड़की कितनी प्यारी है !" ज़ेवा अपने भाई की सिफ़ारिश कर रही थी।

"गोरी चमड़ी होगी और वस।" वेगम मुजीव झाग-झाग हो रही थी।

"अम्मीजान ! आपको अपने वेटे के चुनाव पर तो एतवार होना चाहिए।" ज़ेवा ने तसवीर फिर वेगम मुजीव के सामने ला रखी।

"मुझे नहीं देखनी है। सुन्दर होगी तो अपने घर।"

"नाक कितनी तीखी है ! मुखड़ा तो देखो, जैसे कली खिल रही हो ! गालों में गड्ढे। साफ़-सुथरे आसमान जैसी नीली आंखें। वाल कितने प्यारे हैं ! घुंघराले और काले। इस तरह की लड़की को 'व्रूने' कहते है।"

"हां ! हां ! कुछ पहले भी एक 'व्रूने' मेरे पीछे पड़ गई थी। तेरे अव्वा की कोई सहेली थी। उठते-वैठते उसका नाम जपते रहते। मैंने ऐसा फटकारा कि फिर कभी उसका ज़िक्र नहीं आया।"

"तो चाहे वही हो।" ज़ेवा हंसने लगी। "वह नहीं तो उसकी कोई वहन-वेटी होगी। यूं लगता है, इस घर में किसी चिट्टी-चमड़ी वाली का आना लिखा हुआ है। इस आंगन में, विल्ली-आंखों वाले, गोरे-चिट्टे वच्चे, गिट-मिट-गिट-मिट अंग्रेज़ी वोला करेंगे।"

"मुझे यह वेकार की वातें अच्छी नहीं लगतीं।" वेगम मुजीव उठकर कमरे में चली गई।

अकेली, अपने कमरे में वैठी, कितनी देर से वेगम मुजीव सोच रही थी कि ज़ेवा इसलिए फ़िरंगिन का क़िस्सा ले वैठी थी क्योंकि उसकी मां, महमूद की वहन पर रीझ गई है। क्योंकि जाहिद के वास्ते, रुख़साना

का रिश्ता मांगने के लिए वह सोच रही थी। रुखसाना जैसी लड़की उसके हाथ लग जाए तो बेगम मुजीब का दिल बहला, और उसे कुछ नहीं चाहिए। घर की रौनक होगी। यह कोठी महक उठेगी। ऊंची-लंबी, कोमलांगी। फ़ैशनेबल। जाहिद के अब्बा को सजने वाली लड़कियां अच्छी लगती थीं। हमेशा कहा करते—औरत को हसीन होना चाहिए। औरत को सजना-संवरना चाहिए। जिन्दगी की खूबसूरती को बढ़ाना चाहिए। जैसे कलियां खिलती हैं, फूल खुशबू लुटाते हैं। औरत को, हर देखने वाली आंखों में रौनक भर देनी चाहिए। हर दिल में एक उमंग पैदा कर देनी चाहिए। कमाने के लिए मर्द है। मेहनत करने के लिए मर्द है। जिन्दगी की तसवीर में रंग औरत भरती है। मुसकानें औरत लुटाती हैं। खुशबू बिखेरना औरत के हिस्से में आया है।

और फिर उसका नाम कितना सुन्दर है—रुखसाना''' रुखसाना जाहिद !

'मैं तो किसी फिरंगिन को इस घर में कदम नहीं रखने दूंगी,' बेगम मुजीब बार-बार अपने मन में कह रही थी।

२४

शेख शब्बीर की हालत दिन-पर-दिन बिगड़ती जा रही थी। भला-चंगा होता कि अचानक उसे दौरा पड़ता और फिर जो मुंह में आता, बकने लगता। कभी घर वालों को पहचानता, कभी न पहचान सकता। कभी घर में टिका रहता, कभी बाहर निकल जाता। बस एक शुक्र था, कोई बदतमीजी नहीं करता था। किसीपर हाथ नहीं उठाता था। प्रायः अपने-आपको कोसता रहता। कभी छल-छल आंसू रोने लगता। कभी एकदम उसके हाथ-पांव ठंडे हो जाते। उस रोज मियां-बीवी घर में अकेले थे। सांझ ढल रही थी। हल्का-हल्का अंधेरा हो रहा था। कितनी ही देर घर के एक कोने में अकेला बैठा, शेख शब्बीर फटी-फटी आंखों से इधर-

उधर देख रहा था। किसी सोच में डूबा हुआ। आम तौर पर शाम को इस समय वह बाहर निकल जाया करता था। कभी तोपख़ाने की ओर, कभी लाल कुर्ती की ओर, कभी ख़लासी-लाईन की ओर, कभी चांदमारी की ओर। जैसे एकाएक कोई बादल फटता है, उसकी बीबी ने देखा कि शेख़ शब्बीर की आंखों में से आंसुओं की धार बहने लगी। कुछ भी तो नहीं हुआ था। सारा दिन वह घर पर ही रहा था। न किसीने भला कहा, न बुरा। बस मेरठ से कुदसिया बीबी की चिट्ठी आई थी। सब ख़ैरियत थी। ज़ाहिद लौट आया था। घर भरा-भरा लग रहा था। अब वह सोच रही थी कि ज़ाहिद और ज़ेबा के ब्याह रचा दिए जाएं। दोनों कब के ब्याहने लायक़ हो चुके थे।

चिट्ठी में उसने इस बात की ओर भी इशारा किया था कि चाहे सीमा का दोष था या नहीं, बेगम मुजीब का मन अभी तक नहीं मानता था कि उसे मुंह लगाए। बहन-भाई आपस में ज़रूर मिलते थे। उन्हें उसने कभी नहीं रोका था। लेकिन स्वयं उसका अपना मन नहीं मानता था कि सीमा के साथ कोई वास्ता रखे। क्या हुआ जो गुंडे छः थे? उनके साथ मुक़ाबला करती। लड़ती-लड़ती मर जाती। अपनी इस्मत के लिए, अपने ईमान के लिए औरत जान पर खेल जाती है।

"ईमान की बात है," उस शाम अपनी बीबी को पलंग पर अपने साथ बिठाकर, शेख़ शब्बीर आप-से-आप बोलने लगा, "ईमान की बात है बेगम! तुझसे निकाह के बाद बस छः बार झक मारी है।"

"छोड़ो मुझे। क्या ऊलजलूल बोल रहे हो?" शेख़ शब्बीर की बीबी बांह छुड़ाकर जाना चाहती थी लेकिन उसके शौहर ने बड़ी मज़बूती से उसे पकड़ा हुआ था।

"आज तो तुम्हें सुनना ही होगा। आज तो तुम्हें यह आईना देखना ही होगा।" शेख़ शब्बीर अपनी ज़िद पर अड़ा हुआ था।

"मुझसे कौन-सी बात भूली है? किसी ब्याहता को क्या पता नहीं होता कि उसका शौहर क्या करतूत करके आया है?" बेगम शब्बीर कह रही थी।

"तुम्हें पता है, तुम्हारे हाथों की मेहंदी अभी उतरी नहीं थी कि···"

शेख शब्बीर अभी बोल ही रहा था कि उसकी बीवी ने उसे टोककर कहा, "आपने मायके से मेरे साथ आई कनीज पर हाथ डाला है।" बेगम शब्बीर मुसकरा रही थी।

"हाथ ही नहीं डाला था, एक दिन गुसलखाने में जब वह कपड़े धो रही थी, मैंने कपड़ों पर उसे गिराकर···और फिर पूरा नल खोलकर···"

"आपका मतलब है, तेज-तेज चल रहे नल की वजह से मुझे आपकी आवाज नहीं आ रही थी? शृंगार-मेज के सामने बैठी मैं बालों का वैसा जूड़ा बना रही थी, जैसा आप कई दिनों से कह रहे थे, लेकिन फिर मैंने अपने हाथ को रोक लिया और सादी-सी चोटी बनाकर उठ खड़ी हुई।"

शेख शब्बीर टुकुर-टुकुर अपनी बीवी की ओर देखता रह गया।

"और फिर तुम्हारी सहेली सजनी के साथ···।"

"हां! हां! वह तो आपको जूतों में मरम्मत करने को फिरती थी। मैंने ही उसे हाथ जोड़े। उसके कदमों पर गिरी। उससे माफी मांगी। वह तो कहती थी कि उसका पुलिस अफसर घरवाला कोल्हू में जुतवा देगा।"

"लेकिन उस वक्त तो उसने मुंह से आवाज तक नहीं निकाली थी!"

"शरीफ औरत शोर करके अपनी मिट्टी पलीद करवाती। एक बदनामी होती, दूसरा उसका घर टूटता। यही मैंने उसे समझाया था—जो होना था, सो हो गया। और उसने सब्र-शुक्र कर लिया। बेचारी हिन्दू औरत। उस साल वह वैष्णोदेवी, अमरनाथ और न जाने कहां-कहां की यात्रा करने गई और अपनी भूल बख्शवाती रही।"

शेख शब्बीर को लगा, जैसे उसकी बीवी ने उसके मुंह पर थप्पड़ दे मारा हो। बार-बार वह अपने गाल पर हाथ लगाकर सहलाने लगता। उस समय तो जैसे मजे-मजे में उसने पलकें मूंद ली थीं। लेकिन फिर कभी उनके आंगन में उसने पांव नहीं धरा था। और फिर कुछ समय बाद उनकी तब्दीली हो गई। उसका घरवाला बड़ा बदनाम, बड़ा बिगड़ा हुआ पुलिस अफसर था। वह तो कुछ भी कर सकता था।

"और फिर तुम्हारी चचाजाद बहन अर्जमन्द के साथ?" शेख शब्बीर

के सिर पर जैसे भूत सवार हो। पता नहीं, कब के पुराने मुर्दे उखाड़ रहा था।

"अर्जमन्द को गिला यह था कि बात आपकी उसके साथ चली और निकाह आपका मेरे साथ हो गया।" बेगम शब्बीर हंस रही थी, "मैंने कहा, बहन, तू भी मज़ा चख ले। सारी उम्र कुंवारी रही और फिर तपेदिक से मरी।"

"क्या सच, तुम्हें मेरी इस करतूत का भी पता था?" शेख़ शब्बीर ने परेशान होकर पूछा।

"यही नहीं, मुझे यह भी पता था कि किस दाई से आपने उसका हमल गिराया था। वह आपका राज़ मेरे पास बेचने के लिए आई थी। मैंने दे-दिलाकर उसका मुंह बंद कर दिया। सोने की बालियां, जिनके लिए नौकरों को चोर ठहराया जा रहा था, वो उस कुटनी की मुट्ठी गर्म करने के लिए काम आई थीं ताकि शेख़ साहब का भंडा न फूटे।"

अब शेख़ शब्बीर का दूसरा गाल तमतमा रहा था, जैसे किसीकी पांचों-की-पांचों उंगलियां उसमें धंस गई हों। शेख़ शब्बीर ने अपना एक हाथ उस गाल पर रख लिया। उसे यूं लगता, जैसे वह गाल लाल-सुर्ख़ हो रहा हो। वह उसे ढक रहा था।

"और ईदन कोठे वाली, जिसका मुजरा हमने करवाया था, बेटे की मुसलमानियों वाले दिन?"

"मुझे पता था, आप और आपके शराबी दोस्त कोई गुल ज़रूर खिलाएंगे। जैसे आप लोग दारू पी रहे थे। जैसे आप लोग उसपर पैसे लुटा रहे थे।"

"तुम तो जाकर सो गई थीं···यह कहकर कि मैं तो दिन-भर की थकी हुई हूं।" शेख़ शब्बीर ने उसे छेड़ा।

"किसी औरत को क्या नींद आती है जब उसके आंगन में कोई परायी औरत अपने हुस्न के तीर चला रही हो?"

बेगम शब्बीर की आंखों में आंसू आ गए। उसकी आवाज़ भर आई :

"मैं तो अल्लाह के आगे हाथ जोड़ रही थी, कि वह औरत मेरे घर में कोई आग न लगा जाए। इस तरह की बाज़ारू औरतों में दस बीमारियां

होती हैं। मैं तो अपने कमरे को अंदर से बंद करके सारी रात सजदे में पड़ी रही। जब आप···"

शेख़ शब्बीर को लगा, जैसे उसके मुंह पर किसीने थूका हो। उसे अपने-आपसे बू आ रही थी। लेकिन एक पागलपन, वह अपनी ज़िद पर अड़ा हुआ था, "अच्छा, जब नूरी पैदा हुई तो उसकी नर्स···" शेख़ ने सोचा कि उसका यह कारनामा उसकी बीवी को कदापि मालूम नहीं होगा।

"वह शाटिन? चप्पा-चप्पा बालों वाली? बेहयायी की भी हद होती है। मैं साथ के कमरे में ज़चगी के दर्द से बेहाल हो रही थी, और आप लोग, होंठों-पर-होंठ, एक-दूसरे को चूम रहे थे। सामने दीवार पर लगे आदमक़द आईने में मैं सब कुछ देख रही थी। उस दिन मुझे मर्दज़ात से सख्त नफ़रत हुई थी।" बेगम शब्बीर फिर भावुक हो उठी, "कोई औरत जान पर खेलकर किसीका बच्चा किसीके लिए पैदा कर रही है, और उसका मर्द, बच्चे का बाप, आधी रात को साथ के चेम्बर में उसका हक़ मार रहा है। और फिर जितने दिन मैं अस्पताल में रही, आप उस बद-तमीज़ औरत के क्वार्टर में जाकर अपना मुंह काला करते रहे।"

"उसके बाद भी।" शेख़ शब्बीर की बेहयायी की कोई हद नहीं थी।

"यही नहीं, जिन दिनों मैं अस्पताल में थी—नूरी के पैदा होने के बाद मुझे बुख़ार रहने लगा था—आप पीछे घर में अपनी पड़ोसिन के साथ रंग-रेलियां मनाते रहे। कमज़ात औरत अपना मंगल-सूत्र उतारकर पराये मर्द की सेज को सजाती रही और आखिरी दिन, मंगल-सूत्र, वैसे-का-वैसा तकिये के नीचे भूल गई।

"अगले दिन मेरे अस्पताल से लौटने पर मुझसे मिलने आई। बार-बार कह रही थी, मेरा मंगल-सूत्र कहीं पर गिर गया है। मैंने कहा, यह तो बड़ी बद-शगुनी है। और फिर अगले दिन उसका मंगल-सूत्र मैंने उसके घर भिजवा दिया। मैंने कहलवा भेजा कि मुझे वह गली में पड़ा हुआ मिला था। और उसने चुपके से उसे संभाल लिया। फिर कभी हमारे यहां नहीं आई।"

शेख़ शब्बीर सुनते-सुनते ठंडा-यख़ हो गए। काटो तो जैसे लहू की बूंद न हो।

के सिर पर जैसे भूत सवार हो। पता नहीं, कब के पुराने मुर्दे उखाड़ रहा था।

"अर्जमन्द को गिला यह था कि बात आपकी उसके साथ चली और निकाह आपका मेरे साथ हो गया।" बेगम शब्बीर हंस रही थी, "मैंने कहा, बहन, तू भी मजा चख ले। सारी उम्र कुंवारी रही और फिर तपेदिक से मरी।"

"क्या सच, तुम्हें मेरी इस करतूत का भी पता था?" शेख़ शब्बीर ने परेशान होकर पूछा।

"यही नहीं, मुझे यह भी पता था कि किस दाई से आपने उसका हमल गिराया था। वह आपका राज़ मेरे पास बेचने के लिए आई थी। मैंने दे-दिलाकर उसका मुंह बंद कर दिया। सोने की बालियां, जिनके लिए नौकरों को चोर ठहराया जा रहा था, वो उस कुटनी की मुट्ठी गर्म करने के लिए काम आई थीं ताकि शेख़ साहब का भंडा न फूटे।"

अब शेख़ शब्बीर का दूसरा गाल तमतमा रहा था, जैसे किसीकी पांचों-की-पांचों उंगलियां उसमें धंस गई हों। शेख़ शब्बीर ने अपना एक हाथ उस गाल पर रख लिया। उसे यूं लगता, जैसे वह गाल लाल-सुर्ख़ हो रहा हो। वह उसे ढक रहा था।

"और ईदन कोठे वाली, जिसका मुजरा हमने करवाया था, बेटे की मुसलमानियों वाले दिन?"

"मुझे पता था, आप और आपके शराबी दोस्त कोई गुल जरूर खिलाएंगे। जैसे आप लोग दारू पी रहे थे। जैसे आप लोग उसपर पैसे लुटा रहे थे।"

"तुम तो जाकर सो गई थीं···यह कहकर कि मैं तो दिन-भर की थकी हुई हूं।" शेख़ शब्बीर ने उसे छेड़ा।

"किसी औरत को क्या नींद आती है जब उसके आंगन में कोई परायी औरत अपने हुस्न के तीर चला रही हो?"

बेगम शब्बीर की आंखों में आंसू आ गए। उसकी आवाज़ भर आई :

"मैं तो अल्लाह के आगे हाथ जोड़ रही थी, कि वह औरत मेरे घर में कोई आग न लगा जाए। इस तरह की बाज़ारू औरतों में दस बीमारियां

होती है। मैं तो अपने कमरे को अंदर से बंद करके सारी रात सजदे में पड़ी रही। जब आप···"

शेख़ शब्बीर को लगा, जैसे उसके मुंह पर किसीने थूका हो। उसे अपने-आपसे बू आ रही थी। लेकिन एक पागलपन, वह अपनी ज़िद पर अड़ा हुआ था, "अच्छा, जब नूरी पैदा हुई तो उसकी नर्स···" शेख़ ने सोचा कि उसका यह कारनामा उसकी बीवी को कदापि मालूम नहीं होगा।

"वह रॉबिन? चप्पा-चप्पा बालों वाली? बेहयायी की भी हद होती है। मैं साथ के कमरे में जचगी के दर्द से बेहाल हो रही थी, और आप लोग, होंठों-पर-होंठ, एक-दूसरे को चूम रहे थे। सामने दीवार पर लगे आदमकद आईने में मैं सब कुछ देख रही थी। उस दिन मुझे मर्दज़ात से सख़्त नफ़रत हुई थी।" बेगम शब्बीर फिर भावुक हो उठी, "कोई औरत जान पर खेलकर किसीका बच्चा किसीके लिए पैदा कर रही है, और उसका मर्द, बच्चे का बाप, आधी रात को साथ के चेम्बर में उसका हक़ मार रहा है। और फिर जितने दिन मैं अस्पताल में रही, आप उस बद-तमीज़ औरत के क्वार्टर में जाकर अपना मुंह काला करते रहे।"

"उसके बाद भी।" शेख़ शब्बीर की बेहयायी की कोई हद नहीं थी।

"यही नहीं, जिन दिनों मैं अस्पताल में थी—नूरी के पैदा होने के बाद मुझे बुख़ार रहने लगा था—आप पीछे घर में अपनी पड़ोसिन के साथ रंग-रेलियां मनाते रहे। कमज़ात औरत अपना मंगल-सूत्र उतारकर पराये मर्द की सेज को सजाती रही और आख़िरी दिन, मंगल-सूत्र, वैसे-का-वैसा तकिये के नीचे भूल गई।

"अगले दिन मेरे अस्पताल से लौटने पर मुझसे मिलने आई। बार-बार कह रही थी, मेरा मंगल-सूत्र कहीं पर गिर गया है। मैंने कहा, यह तो बड़ी बद-शगुनी है। और फिर अगले दिन उसका मंगल-सूत्र मैंने उसके घर भिजवा दिया। मैंने कहलवा भेजा कि मुझे वह गली में पड़ा हुआ मिला था। और उसने चुपके से उसे संभाल लिया। फिर कभी हमारे यहां नहीं आई।"

शेख़ शब्बीर सुनते-सुनते ठंडा-यख़ हो गए। काटो तो जैसे लहू की बूंद न हो।

२५

इतवार का दिन था। जेबा, जिसने कुछ दिनों से शहर के एक स्कूल में पढ़ाना शुरू कर दिया था, उसकी छुट्टी थी। जाहिद की भी उस दिन ड्यूटी नहीं लगी थी। बेगम मुजीब ने महमूद और रुख़साना को दोपहर के खाने पर बुला रखा था।

मेहमानों को आए हुए बहुत देर नहीं हुई थी कि जेबा रुख़साना को लेकर अपने कमरे में चली गई और फिर जब तक मेज पर खाना नहीं लग गया, उनकी कोई ख़बर नहीं थी। कमरा बंद करके, गप-शप कर रही थीं, हंस-खेल रही थीं।

जाहिद और महमूद गोल कमरे में अकेले रह गए थे। महमूद को लगता, जैसे उसके साथ धोखा हो गया। वह सोचकर आया था कि रुख़साना का साथ होने की वजह से वह जेबा के साथ मिलकर बैठ सकेगा। इतने दिनों से वह ख़फ़ा थी, दूर-दूर रहती थी। इस तरह उसकी नाराजगी शायद दूर हो जाएगी। जितना उसकी अम्मी उसके नजदीक आ रही थी, जेबा उतनी ही परायी होती जा रही थी। अब तो उनकी बोलचाल तक बंद थी।

जाहिद खुश था। उसे अवसर मिल गया था ताकि कुछ देर महमूद के साथ अकेले बैठकर बातें कर सके। उसे हमेशा महसूस होता रहा था कि महमूद के विचारों में कहीं अटपटापन जरूर था। हर वक़्त उसे इस्लाम ख़तरे में नजर आता। ख़ास तौर पर भारत के मुसलमानों के लिए उसे चारों ओर अंधेरा दिखाई देता। वह सोचता, रोशनी की एक किरण बस पाकिस्तान था। पाकिस्तान, जिसे इस्लाम के नाम पर क़ायम किया गया था। इस्लाम के बताए रास्तों, इस्लाम की परम्पराओं को फिर जिंदा कर सकता था।

"आप क्या सोचते हैं कि आज से चौदह सौ साल पहले, जिंदगी का जो ढंग पैगंबर ने बताया, उसे आज भी लागू किया जा सकता है?"

"बेशक़!" महमूद में एक कट्टरपंथी की दृढ़ता थी।

"अगर कोई चोरी करे, तो उसके हाथ काट देने चाहिएं?"

"बेशक !"

"अगर कोई परायी औरत की तरफ आंख उठाकर देखे ?"

"उसके हाथ और पांव दोनों काट देने चाहिएं।"

"औरत को पर्दे में रहना चाहिए?"

"बेशक !"

और जाहिद की आंखों के सामने, अभी-अभी मोटर में से निकली रुखमाना की तसवीर तैरने लग गई। तरबूजी रंग की रेशमी साड़ी। अजन्ता स्टाइल के जूड़े में महक रही गुलाब की अधखिली कली, कानों की बालियों में पिरोए हुए झम-झम कर रहे सच्चे मोती, लाल-सुर्ख रंगे होंठ, माथे पर लाल बिंदी, एक शोला-सा जैसे आंखों को चुंधिया कर गुजर गया हो। एक नजर, और जाहिद बस उसके मक्खन जैसे पांव के लाल रंगे नाखूनों की तरफ देखता रह गया। उसके मेहंदी रचे पांव के तलवों को निहारता रह गया। कब से जेबा उसे अपने कमरे में ले गई थी, लेकिन अभी तक उसके रूप की छाप वैसी-की-वैसी महसूस हो रही थी। अभी तक उसकी सुगंध से सारे-का-सारा गोल कमरा महक रहा था।

"पैगंबर ने मुसलमान के लिए चार बीवियां जायज करार दी हैं।"

"बेशक, अगर कोई चारों को एक-सा प्यार दे सके। एक नजर से देख सके। लेकिन साथ ही हजरत ने यह भी फरमाया कि चारों को एक आंख से देखना कोई आसान काम नहीं। एक जैसा चारों को हक देना, बड़ा मुश्किल होता है।

"इसलिए आदमी को एक ही बीवी के साथ गुजारा कर लेना चाहिए। बस, यही मैं कहना चाहता था कि इस्लाम की तालीम को ठीक तौर पर पेश किया जाए। पैगंबर के बनाए रास्ते को ठीक नजर से देखा जाए। मुसलमानों को नये जमाने के साथ कदम मिलाकर चलना होगा।"

उधर जेबा के कमरे में, खिड़कियों के पर्दे गिराकर, दरवाजे को बंद करके, जाहिद द्वारा विलायत से लाए हुए एल० पी० रिकार्डों की धुनों के साथ रुखमाना और जेबा बाहों-में-बाहें डाले, आंखें मूंद एक नशे-नशे में नाच रही थीं। धीमा, बहुत धीमा स्वर, जैसे मुंह तक भरी शराब की बंद बोतलें हों। नाच-नाचकर जब थक गईं, तो पलंग पर लेटकर सिगरेट

२५

इतवार का दिन था। ज़ेवा, जिसने कुछ दिनों से शहर के एक स्कूल
ं पढ़ाना शुरू कर दिया था, उसकी छुट्टी थी। ज़ाहिद की भी उस दिन
ड्यूटी नहीं लगी थी। वेगम मुजीव ने महमूद और रुख़साना को दोपहर
के खाने पर वुला रखा था।

मेहमानों को आए हुए वहुत देर नहीं हुई थी कि ज़ेवा रुख़साना को
लेकर अपने कमरे में चली गई और फिर जव तक मेज़ पर खाना नहीं
लग गया, उनकी कोई ख़वर नहीं थी। कमरा वंद करके, गप-शप कर
रही थीं, हंस-खेल रही थीं।

ज़ाहिद और महमूद गोल कमरे में अकेले रह गए थे। महमूद को
लगता, जैसे उसके साथ धोखा हो गया। वह सोचकर आया था कि
रुख़साना का साथ होने की वजह से वह ज़ेवा के साथ मिलकर वैठ
सकेगा। इतने दिनों से वह खफ़ा थी, दूर-दूर रहती थी। इस तरह उसकी
नाराज़गी शायद दूर हो जाएगी। जितना उसकी अम्मी उसके नज़दीक
आ रही थी, ज़ेवा उतनी ही परायी होती जा रही थी। अव तो उनकी
वोलचाल तक वंद थी।

ज़ाहिद खुश था। उसे अवसर मिल गया था ताकि कुछ देर महमूद
के साथ अकेले वैठकर वातें कर सके। उसे हमेशा महसूस होता रहा था कि
महमूद के विचारों में कहीं अटपटापन ज़रूर था। हर वक़्त उसे इस्ला
ख़तरे में नज़र आता। ख़ास तौर पर भारत के मुसलमानों के लिए उ
चारों ओर अंधेरा दिखाई देता। वह सोचता, रोशनी की एक किरण
पाकिस्तान था। पाकिस्तान, जिसे इस्लाम के नाम पर क़ायम किया
था। इस्लाम के वताए रास्तों, इस्लाम की परम्पराओं को फिर
कर सकता था।

"आप क्या सोचते हैं कि आज से चौदह सौ साल पहले, ज़िंदगी
जो ढंग पैगंवर ने वताया, उसे आज भी लागू किया जा सकता है?"

"वेशक़!" महमूद में एक कट्टरपंथी की दृढ़ता थी।

"अगर कोई चोरी करे, तो उसके हाथ काट देने चाहिएं?"

"बेशक !"

"अगर कोई परायी औरत की तरफ आख उठाकर देखे ?"

"उसके हाथ और पाव दोनों काट देने चाहिएं।"

"औरत को पर्दे में रहना चाहिए?"

"बेशक !"

और जाहिद की आखों के सामने, अभी-अभी मोटर में से निकली रूख़साना की तसवीर तैरने लग गई। तरबूज़ी रग की रेशमी साड़ी। अजन्ता स्टाइल के जूड़े में महक रही गुलाब की अधखिली कली, कानों की बालियों में पिरोए हुए झम-झम कर रहे सच्चे मोती, लाल-सुर्ख़ रंगे होंठ, माथे पर लाल बिंदी, एक शोला-सा जैसे आखों को चुंधिया कर गुज़र गया हो। एक नजर, और जाहिद बस उसके माखन जैसे पाव के लाल रंगे नाख़ूनों की तरफ़ देखता रह गया। उसके मेहंदी रचे पाव के तलवों को निहारता रह गया। कब से जेबा उसे अपने कमरे में ले गई थी, लेकिन अभी तक उसके रूप की छाप वैसी-की-वैसी महसूस हो रही थी। अभी तक उसकी सुगंध से सारे-का-सारा गोल कमरा महक रहा था।

"पैगंबर ने मुसलमान के लिए चार बीवियां जायज क़रार दी हैं।"

"बेशक, अगर कोई चारों को एक-सा प्यार दे सके। एक नजर से देख सके। लेकिन साथ ही हज़रत ने यह भी फ़रमाया कि चारों को एक आख से देखना कोई आसान काम नहीं। एक जैसा चारों को हक़ देना, बड़ा मुश्किल होता है।

"इसलिए आदमी को एक ही बीवी के साथ गुज़ारा कर लेना चाहिए। बस, यही मैं कहना चाहता था कि इस्लाम की तालीम को ठीक तौर पर पेश किया जाए। पैगंबर के बताए रास्ते को और नजर से देखा जाए। मुसलमानों को नये ज़माने के साथ क़दम मिलाकर चलना होगा।"

उधर जेबा के कमरे में, खिड़कियों के पर्दे गिराकर, दरवाज़े को बंद करके, जाहिद द्वारा विलायत से लाए हुए एल० पी० रिकार्डों की धुनों के साथ रुख़साना और जेबा बांहों-में-बांहें डाले, आखें मूंद एक नशे-नशे में नाच रही थीं। धीमा, बहुत धीमा स्वर, जैसे मुंह तक भरी शराब की बंद बोतलें हों। नाच-नाचकर जब थक गईं, तो पलंग पर लेटकर सिगरेट

पीने लगीं, कश लगाती हुई धुएं के छल्ले बना रही थीं।

कुछ देर के बाद रुख़साना पाकिस्तान की शायरा परवीन शाकिर की नज़्म गुनगुनाने लगी :

"जब आंख में शाम उतरे
पलकों में शफ़क़ फूले
काजल की तरह, मेरी
आंखों को धनक छू ले
उस वक़्त कोई उसको
आंखों से मेरी देखे
पलकों से मेरी छू ले—उस वक़्त···

नज़्म के बोल ख़त्म हुए और फिर दोनों ज़ेबा और रुख़साना,-उदास-उदास, रुआंसी-रुआंसी-सी हो गईं। दोनों की आंखों में जैसे आंसू छलक आए हों। कितनी ही देर दोनों वैसी-की-वैसी ख़ामोश पड़ी रहीं।

बेगम मुजीब सारा वक़्त बावर्चीखाने में थी। पहले खाना तैयार करवाती रही, फिर खाना मेज़ पर लगाती रही। उसे अच्छा लग रहा था, कि ज़ाहिद और महमूद गोल कमरे में बैठे सिगरेट पी रहे, गप-शप कर रहे थे। ज़ेबा और रुख़साना जवान-जहान लड़कियों की तरह बंद कमरे में 'शिपियां' लड़ा रही थीं।

कुछ देर यूं लेटी रही। फिर ज़ेबा के मन में न जाने क्या आया कि उसने रुख़साना की साड़ी उतारकर एक ओर रख दी और उसे अपनी मनमर्ज़ी से सजाना शुरू कर दिया। चूड़ीदार पायजामा, डोरिए का कुर्ता, ऊपर महीन बेलबूटों का दुपट्टा। उसका जूड़ा खोलकर सीधी मांग काढ़ी और फिर दो चोटियां बना दीं। पांव में पंजाबी जूती पहनकर जब रुख़साना ने अपने-आपको आईने में देखा—'उई अल्लाह ! मैं तो और-की-और लग रही हूं,' उसके मुंह से निकला।

और फिर ज़ेबा ने कैसेट-रिकार्डर पर क़व्वाली का टेप बजाना शुरू कर दिया :

'मेरे दर्द को जो ज़बां मिले
मुझे अपना नामो-निशां मिले'—फ़ैज़

कव्वाली के बोल शुरू ही हुए थे कि दरवाजे पर बेगम मुजीब दस्तक दे रही थी—खाना मेज पर लग गया था।

रुखसाना को नये कपडो में सजा हुआ देखकर हर कोई उसकी ओर देखता रह गया। बेगम मुजीब अपने कमरे में गई और मोतिया के फूलों का एक गजरा लाकर उसने रुखसाना को पेश किया। रुखसाना ने उसे अपनी एक चोटी में लगा लिया और फिर झुककर ज़ेबा की अम्मी को आदाब किया।

खाने के कमरे में, मेज पर इतना तकल्लुफ देखकर रुखसाना के मुह से निकला, "यू लगता है, जैसे किसी शादी की दावत हो।"

"नही, दो शादियों की," महमूद बोला। और फिर सब हसने लगे। इतने में बेगम मुजीब हर एक को अपनी-अपनी कुर्सी पर बिठाने लगी।

उस दिन सचमुच बेगम मुजीब ने हद ही कर दी थी। तदूरी मुर्ग, ब्रेक की हुई मछली, मुर्ग मुसल्लम, बिरयानी, सीख-कबाब, दो प्याजा गोश्त, तिक्के, मटर-पनीर, पनीर-साग, दही की चटनी, नान, तदूरी पराठे, दो-तीन तरह का मीठा, जिसमें शाही टुकडे शामिल थे। और हर पकवान बेगम मुजीब ने अपने सामने तैयार करवाया था। बस नान बाजार से मगवाए थे। खाना देखकर हर कोई परेशान था, कहा से शुरू किया जाए क्या खाया जाए, क्या छोडा जाए!

"इस दावत में तुमने क्या तैयार किया है?" ज़ेबा की ओर देखते हुए जाहिद ने पूछा। ज़ेबा ने बेझिझक रुखसाना की ओर देखा और हर कोई उसकी दाद देने लगा।

"स्कूल की लड़की लगती है।" महमूद ने कहा।

"तभी तो मैं साडी पहनती हू," रुखसाना कहने लगी "[illegible] कभी भी बारी नही आएगी। पता नही कितने दिन और इन्तज़ार [illegible] पडे।"

"बेचारी सारा पाकिस्तान घूम आई है लेकिन [illegible] नवाजा।" महमूद ने चुटकी ली।

"वह तो शुक्र है कि मेरी चोटिया [illegible] ही वाली थी।" रुखसाना ने गवर्नमेंट [illegible]

याद करते हुए कहा।

और फिर ज़ेबा वह क़िस्सा ज़ाहिद को सुनाने लगी।

"इस तरह के मुल्क का क्या होगा ?" ज़ाहिद ने मायूस होकर कहा।

"इसमें ख़राबी क्या है ?" महमूद कहने लगा।

"क्या आप अपनी बीवी से पर्दा कराएंगे ?" ज़ेबा के मुंह से अचानक निकला।

महमूद के हाथ-पांव फूल गए। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या जवाब दे !

२६

राजीव और स्वर्णा सप्ताहांत के लिए मेरठ आए हुए थे। ठहरे चाहे किसी संबंधी के यहां थे, लेकिन सुबह से लेकर आधी रात तक, बेगम मुजीब के घर हंसते-खेलते, खाते-पीते रहते। लगातार ताश चलती। एक के बाद एक बाज़ी। बेगम मुजीब कभी महमूद और रुख़साना को भी चाय या खाने पर बुला लेती। ताश के साथ लतीफ़ेबाज़ी, गाना-बजाना, खाना-पीना, छेड़-छाड़ चलती रहती। अनोखा मेल था। महमूद सिगरेट पीता था, शराब को हाथ नहीं लगाता है। राजीव को शराब से परहेज़ नहीं था मगर सिगरेट उसने कभी नहीं पी थी। ज़ाहिद शराब भी पीता था, सिगरेट भी। ज़ेबा लुक-छिपकर सिगरेट पी लेती थी। रुख़साना सिर्फ़ फ़ैशन के लिए पीती थी। लेकिन मर्दों के सामने दोनों नहीं पीती थीं। राजीव इतने बरस विलायत काटकर आया था, फिर भी शाकाहारी था। स्वर्णा गोश्त खाना सीख रही थी। कबाब तो खा लेती लेकिन हड्डीवाला गोश्त उससे नहीं खाया जाता था। महमूद सिर्फ़ सफ़ेद गोश्त खाता था, मछली और मुर्ग़ा। ज़ाहिद को सफ़ेद गोश्त से चिढ़ थी। वह तो बकरे का गोश्त खाता था या बीफ़। ज़ाहिद को पोर्क पसन्द था। महमूद को पोर्क से नफ़रत थी।

दोनों दिन ताश-पार्टी खूब जमी। सिवाय इसके कि कुछ देर में महमूद को महसूस होने लगा कि वह लगातार हारता जा रहा था। बारी-बारी वह हर किसीको अपना पार्टनर बना चुका था। लेकिन हमेशा हारता रहा। बस, एक जेबा उसके काबू में नहीं आई। आखिर उसने जेबा की ओर देखा। "न बाबा, हमें पाकिस्तान नहीं बनना है," जेबा कह-कर टाल गई।

बेगम मुजीब खुश थी, बहुत खुश। जमीन पर जैसे उसके पांव न लगते हों। इस तरह का वातावरण उसके घर में होना था किसी ज़माने में, जब उसका मियां दीवाली के दिनों में ताश की चौकड़ी जमाया करता था। हर मज़हब के उसके दोस्त आते थे। आधी-आधी रात तक उनकी खातिर करती नहीं अघाती थी। शराब पीने वाले शराब पीते, सिगरेट पीने वाले सिगरेट, पान के शौकीनों के लिए वह स्वयं पान लगाती रहती। कोई मसाला पसन्द करते, कोई बिना मसाला के पान चबाते। किसीको मीठे पान के लिए फरमाइश होती तो कोई सादा पान मांगता। किसीकी पसंद कुछ, किसीकी कुछ, लेकिन सारे उसके शौहर के दीवाने थे।

वह दिन जब परहेज़गार हिन्दू बेगम मुजीब के घर चुपके से गोश्त खाने के लिए आया करते थे। रमज़ान के दिनों में मुसलमान उनके यहां खाना खाने आते। बैठक में चुपचाप बैठे सिगरेट पीते रहते। और तो और, शहर का पुलिस-कप्तान, जब भी उसका जी चाहता, शाम को उनके यहां आकर चुस्की लगा लेता। और फिर जब ऊपर से हुक्म मिलता, चुपके से दौरे पर निकल जाता और उसके अमले के लोग आकर शेख मुजीब को गिरफ्तार कर लेते। किसीकी क्या मजाल जो उसे हथकड़ी लगाए!

ताश खेलते-खेलते खबरों का वक्त हुआ तो जेबा ने उठकर रेडियो खोल दिया। पाकिस्तान की आर्थिक हालत डावांडोल थी। दिन-प्रतिदिन आम ज़रूरत की चीजें महंगी हो रही थीं। बंद और तालाबंदी की घटनाएं बढ़ रही थीं।

"अब वक्त है कि हिन्दुस्तान से लड़ाई शुरू की जाए।" ज़ाहिद ने कहा।

"क्यों?" महमूद चौंक उठा।

"आख़िर प्रजा का ध्यान किसी और तरफ़ लगाना तो ज़रूरी है।"

"और फिर अयूब इतने दिनों से सियासतदानों से वादे कर रहे हैं कि वह पाकिस्तानियों को कश्मीर जीत कर देगा। कब तक वह यूं सब्ज़बाग़ दिखाता रहेगा?" राजीव बोला।

"आप लोग तो ऐसी बातें करते हैं, जैसे आप सब पाकिस्तान के प्रेज़िडेंट की कैबिनेट के मेम्बर हों।" महमूद चिढ़कर बोला।

"यह बात नहीं है भाईजान!" रुख़साना उसे समझाने लगी, "आम आदमी की अक़्ल भी कोई चीज़ होती है।"

"सारी अक़्ल तो हिन्दुस्तानियों के पास है।" महमूद ने नाक चढ़ाकर कहा। इस बार फिर उसके पास बेकार पत्ते आए थे।

'यूं लगता है, जनाब जैसे उस पार से तशरीफ़ लाए हैं!' ज़ेबा ने जान-बूझकर महमूद की टांग खींची।

"इनका तो बस जिस्म इधर है, रूह तो सरहद के पार रहती है।" रुख़साना ने महमूद पर चोट की।

"यूं लगता है, जैसे महमूद अभी तक पाकिस्तान नहीं गए।" जाहिद ने अनुमान लगाया।

"यही तो सारी मुसीबत है।" रुख़साना कहने लगी, "मेरी तरह एक बार मज़ा चख लेते तो फिर इन्हें अपना देश इतना बुरा न लगता।"

"अंधों में काना राजा।" महमूद ने जैसे ज़हर उगला हो। और फिर पत्ते फेंक दिए। यह बाज़ी भी वह हार गया था।

"जब तक ज़ेबा आपका साथ नहीं देती, भाईजान! आप कभी नहीं जीतेंगे।" रुख़साना कह रही थी।

लेकिन ज़ेबा कहां थी? शायद बावर्चीख़ाने में गई होगी। रात काफ़ी हो चुकी थी। बेगम मुजीब सोने के लिए अपने कमरे में चली गई थी। अब ज़ेबा मेहमानों की ख़ातिर कर रही थी। किसीने कॉफ़ी की फ़रमाइश की थी।

बावर्चीख़ाने में कॉफ़ी बनाते हुए ज़ेबा ने देखा, उसके पीछे कंधे से राजीव कॉफ़ी के प्याले में झांक रहा था। एकदम जैसे वह भौचक्की रह गई। राजीव की गरम-गरम खुशबूदार सांस उसकी गर्दन पर, उसके गले

के भीतर तक महसूस हो रही थी। वह घबराकर पीछे हटी और राजीव ने उसे अपनी मचलती हुई बाहों में थाम लिया। जेबा की उसकी ओर वैसी-की-वैसी पीठ थी। उसने अपना सिर उठाकर राजीव की आंखों में झांका। अगले क्षण, राजीव के होंठ जेबा के होंठों पर थे। जैसे फूल की दो पत्तियां धीरे से एक-दूसरे को छू रही हों। एक खुशबू-खुशबू-सी थी। एकदम जैसे कोई मदहोश हो गया हो। जेबा राजीव की बाहों में ढेर हो गई। उसके बाहुपाश में समूची घुल गई। जैसे मिसरी की डली सुराही में विलीन हो जाती है।

महमूद ने फ़ैसला किया था कि अगली बाज़ी वह जेबा को पार्टनर बनाकर खेलेगा। कितनी देर वह इन्तज़ार करता रहा। जेबा का बनाया हुआ कॉफ़ी का प्याला कुछ देर बाद राजीव ने लाकर रुखसाना को पेश किया। कॉफ़ी की लत बस रुखसाना को ही थी। हर दो-तीन घंटे के बाद उसे कॉफ़ी की ज़रूरत महसूस होने लगती।

लेकिन जेबा कहां थी? कितनी देर से वह कहीं नज़र नहीं आ रही थी। महमूद उसके इन्तज़ार में सिगरेट फूंक रहा था। बाक़ी लोग ताश की बाज़ी जारी रखे हुए थे। रुखसाना घूंट-घूंट कॉफ़ी पीते हुए जीतती जा रही थी।

"कमबख्त, जब मेरा साथ देती है, मुझे भी हराती है, खुद भी हारती है।" महमूद जल-भुन रहा था।

"यही तो बात है भाईजान! तभी तो लोग कहते हैं कि ताश में बहन-भाई की जोड़ी नहीं निभती।" रुखसाना ने महमूद को छेड़ा।

"मैं जेबा को ढूंढ़कर लाती हूं।" स्वर्णा कहने लगी, "मुझे लगता है, जैसे वह सुबह का नाश्ता तैयार करने बैठ गई है।"

"मैं बताऊं?" रुखसाना कहने लगी, "जेबा अपने कमरे में बिस्तर पर औंधी लेटी आसमान के तारे गिन रही है।"

और स्वर्णा ढूंढ़ते-ढूंढ़ते जेबा के कमरे में गई। सचमुच वह अपने पलंग पर लेटी थी, लेकिन वह तारे नहीं गिन रही थी, वह तो छम-छम आंसू रो रही थी। उसका तकिया जैसे निचुड़ रहा हो। स्वर्णा को अपने कमरे में अकेला देखकर उसकी चीख़ निकल गई। उसे अपने गले में

टाकर प्यार किए जाती और रोए जाती। स्वर्णा की समझ में कुछ आ रहा था।

लेकिन जिस मजबूरी में ज़ेबा रो रही थी, और जिस तरह स्वर्णा को प्यार कर रही थी, अगले ही क्षण स्वर्णा सब बात समझ गई। और कर उसने आप-से-आप बोलना शुरू कर दिया, "मैं शर्मिन्दा हूं ज़ेबा आपा! आप उसे माफ़ कर दें। जिस दिन से उसने आपको देखा है, उस-पर तो जैसे जादू हो गया हो। मैंने उसे कई बार समझाया है। कभी यूं भी हो सकता है? लेकिन उसकी समझ में कुछ नहीं आता। हमारी तो उसने नाक ही कटवा डाली।"

"नहीं, नहीं, नहीं!" और ज़ेबा ने स्वर्णा के मुंह पर हाथ रखकर उसे चुप करवा दिया।

२७

अभी बहुत दिन नहीं बीते थे कि सचमुच पाकिस्तान और भारत में जैसे लड़ाई की शुरुआत हो गई। सीमा पर घुसपैठ करने वालों की गति-विधियां तेज हो गईं। कोई-न-कोई शरारत हर रोज़ हो जाती।

उस शाम महमूद बेगम मुजीब के यहां बैठा हुआ था। कुछ दिनों से हर कोई महमूद से दूर-दूर रहने लगा था। शायद इसीलिए वह बेगम मुजीब को और अच्छा-अच्छा लगता। किसी-न-किसी बहाने उसे बुलवा भेजती। ख़ास तौर पर जब भारत और पाकिस्तान की कोई समस्या होती तो उसकी राय जानने की ज़रूर कोशिश करती।

उसका दृष्टिकोण हमेशा दूसरों से भिन्न होता। बेगम मुजीब को सब कुछ उचित प्रतीत होता था।

बेगम मुजीब पान बनाकर महमूद को दे रही थी कि ज़ाहिद गया। उसके हाथ में अंग्रेज़ी की कोई पत्रिका थी। उसे महमूद की बढ़ाते हुए उसने कहा, "प्यारे, उस दिन तुम हमसे ख़फ़ा हो गए

गजीब और मैंने कहा था कि पाकिस्तान को अब कश्मीर का हौआ फिर खड़ा करना चाहिए।"

"लेकिन उन्होंने तो लड़ाई की शुरुआत भी कर दी है," बेगम मुजीब बोलीं। उनकी परेशानी जैसे उनके चेहरे पर अंकित थी। बेचारी का आधा खानदान इधर था, आधा उधर। उसका जेठ वहां बीमार पड़ा था। देवर इंजीनियर था। देवरानी का शौहर फ़ौज में कर्नल था। अभी-अभी ब्रिगेडियर बनाया गया था। और भी तो कितने रिश्तेदार थे। एक बेटी इधर ठीक सरहद पर अमृतसर में बैठी थी। चाहे इतने दिनों से बेगम मुजीब ने उसे मुंह नहीं लगाया था, लेकिन थी तो उसकी बेटी ही।

"हर कोई अपने हक़ के लिए लड़ता है।" महमूद कहने लगा, "पाकिस्तान की हुकूमत ने चुनाव करवाकर लोगों की राय जान ली है।"

"कि भारत पर हमला किया जाए?" बेगम मुजीब ने हैरान होकर पूछा।

"नहीं, कश्मीर पर अपना हक़ जमाया जाए," महमूद ने ज़रा धीमी आवाज़ में कहा।

ज़ाहिद ने सुना और अपने निचले होंठ को काटा, जैसे कोई दांत पीसकर रह जाए। इतने में टेलीफ़ोन बजने लगा। ज़ाहिद ने शुक्र मनाया और गैलरी में फ़ोन सुनने चला गया।

महमूद अंग्रेज़ी की पत्रिका पढ़ने लगा। कुछ देर उसपर नज़र डालकर उसने उसे सामने मेज़ पर पटक दिया। ऐसा लगता था कि जो कुछ उसमें छपा था, महमूद को गवारा नहीं था। यह देखकर बेगम मुजीब उस लेख को पढ़ने लगी। महमूद ने सिगरेट सुलगा लिया। तब तक ज़ाहिद टेलीफ़ोन सुनकर आ गया था। टेलीफ़ोन सुनते हुए, उसने मन-ही-मन फ़ैसला किया था कि महमूद से इस बारे में बात करनी चाहिए। जो भी उसका पक्ष था, उसे समझाना चाहिए।

"महमूद! जिस चुनाव की बात तुम कर रहे थे, उसके बारे में तुमने इसमें देखा होगा, सब फ़र्ज़ी थे।" ज़ाहिद महमूद को समझाने की कोशिश

कर रहा था। "पाकिस्तान में बीस फ़ीसदी लोग पढ़-लिख सकते हैं। इनमें तीन फ़ीसदी औरतें हैं जो पर्दे में रहती हैं। बाकी सत्रह में से सात फ़ीसदी लोगों से वोट देने का हक़ छीन लिया गया है। इनमें सरकारी नौकर भी शामिल हैं, स्कूलों-कालेजों के उस्ताद भी, और अख़बार-नवीस भी।"

"तो क्या हुआ ? हर पिछड़े हुए देश में यूं ही होता है।" महमूद इस दलील में कोई वज़न नहीं देख रहा था।

"और पाकिस्तान के अख़बार 'आउटलुक' का वह इल्ज़ाम भी तुमने पढ़ा है कि कराची की कानवैंशन में मुस्लिम लीग ने जनरल अयूब की अगवाई के लिए पचास हज़ार रुपया इकट्ठा किया और लोगों को भाड़े पर ट्रकों में लादकर हवाई अड्डे पहुंचाया गया।"

"मामूली बात है।" महमूद कहने लगा, "इस देश में कांग्रेस करोड़ों रुपये इस तरह के कामों में ख़र्च करती है।"

"और वह भी तुमने पढ़ा होगा कि चुनाव के बाद कराची के जिस हलक़े में लोगों ने अयूब को वोट नहीं दिए, अयूब के बेटे गौहर अयूब ने अपने गुंडों के साथ उनके घर जलाए। उनकी जवान बेटियों की इज़्ज़त लूटी। कई लोगों को गोली का निशाना बनाया गया और पुलिस यह सब कुछ देखती रही। सितम यह है कि वह महाजरों की बस्ती थी। वे लोग, जो हिन्दुस्तान को छोड़कर पाकिस्तान की 'जन्नत' में गए थे।"

"अगर वे उधर न जाते तो इधर उनका यही हाल होता, जो हम-पर बीत रही है। कल राउरकेला में जो कुछ हुआ था···" महमूद अपनी बात पर अटल था।

"पूर्वी पाकिस्तान में जगह-जगह हड़तालें हो रही हैं। मिलें और कारख़ाने बंद पड़े हैं। पुलिस बात-बात पर गोली चलाती है। पश्चिमी पाकिस्तान जैसे किसी ज्वालामुखी के दहाने पर बैठा हो। और सरकार ने घुसपैठियों को सिखलाई देकर कश्मीर में भेजना शुरू कर दिया है।"

"और चारा भी क्या रहा है ?" महमूद बड़ी बेबाकी से पाकिस्तान का पक्ष ले रहा था।

"और महमूद ! तुम सोचते हो, इधर भारत में हमने कांच की चूड़ियां

पहन रखी हैं ? हम उनका मुंह तोड़ जवाब नहीं देंगे ?" ज़ाहिद को आम तौर पर गुस्सा नहीं आता था, लेकिन जिस तरह महमूद बहस कर रहा था, ज़ाहिद अपने-आपको संयत न रख सका।

बेगम मुजीब इतनी देर लेट पड़ रही थी। बदमज़गी बढ़ती हुई देखकर उसके हाथ-पांव फूल गए। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। इतने में सामने से ज़ेबा आती हुई दिखाई दी। और महमूद अपनी सिगरेट बुझाकर चल दिया। उसका इरादा था कि वह बाहर आंगन में ज़ेबा से अकेला जा मिलेगा। इसमें भी उसे मायूसी हुई। ज़ेबा रिक्शा से उतरी। रिक्शावाले को उसने पैसे दिए और सामने लॉन में गुलाब की क्यारी की ओर चल दी। बेगम मुजीब बड़े धैर्य से ज़ाहिद को समझा रही थी कि उसकी नज़र बाहर जा पड़ी। जैसे ज़ेबा लॉन की ओर गई थी, उसकी अम्मी को लगा, कि उसने जानबूझकर महमूद को ज़लील किया था। एक क्षण भर में उसे महमूद की सारी बेहूदगी भूल गई और ज़ेबा पर गुस्सा आने लगा।

"यह भी कोई बात हुई !" जब ज़ेबा कमरे में आई, बेगम मुजीब उस-पर बरस पड़ी, "यह भी कोई बात हुई, यूं घर आए किसीको ज़लील करना ! आदमी को अपना अख़लाक़ तो नहीं भूलना चाहिए।"

"अम्मीजान ! क्या हुआ है ?"

"महमूद को देखकर तुम लॉन की ओर निकल गईं ?" बेगम मुजीब ने इल्ज़ाम लगाया।

"और मैं सोचता हूं, वह जल्दी में उठा भी इसलिए था कि ज़ेबा से बाहर मुलाकात हो जाए।" ज़ाहिद हंसकर बात टाल रहा था।

"यह हंसने की बात नहीं है ज़ाहिद बेटा !" बेगम मुजीब सख़्त ख़फ़ा थी।

"बेशक ! बेशक ! अम्मीजान !" ज़ेबा बैठकर आराम से बात करने लगी। "मैं अल्लाह की कसम खाती हूं कि लॉन में जाने से पहले मैंने महमूद को नहीं देखा था। लेकिन अगर मैं उसे देख लेती तो ज़रूर लॉन की ओर चली जाती।"

ज़ाहिद ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगा।

"आख़िर उसका गुनाह क्या है ?" बेग़म मुजीब आज किसी नतीजे पर पहुंचना चाह रही थी।

"अम्मी ! इसपर पर्दा ही पड़ा रहने दें।" ज़ेबा बात को बढ़ाना नहीं चाहती थी।

"कोई नहीं ! ज़रा-सा रास्ते से भटका हुआ है। ख़ुद ही समझ जाएगा।" ज़ाहिद की राय थी।

"ज़ाहिद भाई, आपको मालूम नहीं, यह आदमी आस्तीन का सांप है।"

"क्या बके जा रही हो ज़ेबा ?" ज़ाहिद जैसे यह सुनने के लिए तैयार नहीं था।

"मैं बक नहीं रही। मैं एक हक़ीक़त को बयान कर रही हूं।" ज़ेबा को यह महसूस हुआ, जैसे अब उससे वह भेद छिपाया नहीं जाएगा। कितने दिनों से एक गठरी की तरह बांधकर उसे वह सिर पर लिए फिर रही थी।

"जिस तरह वह सोचता है, जिस तरह की बातें वह करता है, भारत के कई नौजवान यूं भटके हुए हैं। यह बीमारी बस मुसलमानों में ही नहीं, सिख भी तो खालिस्तान के नारे लगाते रहते हैं। और हिन्दू तो इनसे दो क़दम आगे निकल गए हैं। 'हिन्दू-राष्ट्र' का नारा मेरी नज़र में पाकिस्तान के नारे जैसा ही तो है। कल चीन हमारे मुंह पर थप्पड़ मारकर गया। और आज कई हिन्दुस्तानी चीन के दीवाने हैं। माओ का नाम लेकर राह पाते हैं।"

"महमूद इन सबसे ज्यादा खतरनाक है।" ज़ेबा के सब्र का प्याला छलक रहा था।

"मैं भी तो सुनूं ?" बेगम मुजीब को जैसे अभी तक महमूद के विरुद्ध किसीका आवाज़ उठाना स्वीकार न हो।

"अम्मीजान ! आपको याद है कि वह इतवार का दिन था जब महमूद ने आपको आकर बताया था कि अलीगढ़ में फ़साद छिड़ गए हैं ?"

"हां।"

"तब तक अलीगढ़ में फ़साद शुरू नहीं हुए थे। फ़साद उससे अगली

रात शुरू हुए।"

"क्या मतलब ?" बेगम मुजीब और जाहिद दोनों चौंक उठे।

"मतलब, अब आप खुद निकाल लें।" जेबा कह रही थी।

२८

उस शाम लॉन के कोने में जेबा गुलाब की क्यारी की ओर गई थी, यह देखने के लिए कि काले गुलाब को कोई और कली लगी है या नहीं। पिछली बार राजीव ने उस गुलाब की एक अधखिली कली तोड़कर उसके बालों में सजाई थी। सांझ ढल रही थी और फिर कितनी देर वे लॉन में टहलते रहे थे। जेबा का दीवानापन, उसे प्रतीक्षा रहती कि कब अगली कली फूटेगी, कब अगली कली खिलेगी और वह उसे अपने जूड़े में लगा सकेगी ?

राजीव के साथ उसकी मुहब्बत जैसे काले गुलाब का एक प्रतीक बन गई। उस जैसी सुन्दर। उस जैसी मदभरी। उस जैसी सुगंधित। उस जैसी मधुर। और उस जैसी काली। जैसे घुप-अंधेरी रात हो।

अकेली बैठी हुई, कभी जेबा को लगता, जैसे ठंडी-मीठी फुहार पड़ रही हो। जैसे रिमझिम-रिमझिम वर्षा होने लगे। छल-छल बादल फूट पड़े हों। चारों ओर जल-थल हो जाए। अन्दर-बाहर धुला-धुला। टीले-भुरभुरा रहे। गड्ढे भर रहे। निचुड़-निचुड़ रहे वृक्ष। नहाई-नहाई टहनियां। कहीं कलियां आखें खोल रहीं। कहीं कलियां अंगड़ाई ले रहीं। कहीं कलियां शरमाई-शरमाई। कहीं कलियां मुसकानें लुटा रहीं। कहीं कलियां खिलखिल हंस रहीं। राह चलतों को बांध-बांध रहीं। खुशबू-खुशबू चारों ओर; भीनी-भीनी लपटें छोड़ रही, फैल रहीं। एक मादकता, एक मस्ती, एक खुमार। एक मौज। एक लहर। एक उल्लास। जैसे धरती करवट ले रही हो। आवाज़ें दे रही हो। बाहें फैला-फैला बाहु-पाश में लेने को मचल रही हो।

और फिर जैसे एकाएक काले बादल उभर आए। चारों ओर

ई घटाएं छा जाएं। वादल-पर-वादल चढ़ आएं। काले मत
ह्। काले हाथियों की तरह। काले पहाड़ों की तरह। और फिर विजली
कने लगे, जैसे मस्त नागिन हो। विप घोल रही, फुंकार रही, काटने
दौड़ रही। वादल गरज रहे। गड़गड़ा रहे। गूंज रहे। आंधी और
फ़ान। वौछार जैसे पटक-पटककर फेंक रही। और फिर ओले।
कंकरीली वरफ़। लहू-लुहान कर रही हड्डियां चटखा रही। अंग-अंग
घायल कर रही। निढाल अधमरा, वेहोश करके फेंक रही।

और ज़ेवा उदास-उदास, दुखी-दुखी, आस-पास से वेज़ार, रुआंसी-रुआंसी, अकेली पड़ी रहती। प्रायः उसका कमरा वंद होता। दरवाज़े को चटखनी लगी रहती। पर्दे गिरे हुए।

जितना इस वारे में सोचती, ज़ेवा को लगता, जैसे कोई वंद गली हो, जिसमें वह आ घुसी थी। चार क़दम, और एक पत्थर की दीवार से उसे अपना सिर टकराना होगा। दीवार के कान नहीं होते। दीवार की आंखें नहीं होतीं। न उसे कोई सुनेगा, न उसकी ओर कोई एक नज़र देखेगा। और उसका दम घुटकर रह जाएगा। न आगे जा सकेगी, न पीछे। जैसे कोई अंधे कुएं में कूद पड़े। नीचे ही नीचे धंसता चला जाए। अंधेरे से और घने अंधेरे में। कीचड़ से और गंदले कीचड़ में, दल-दल से और गहरी दल-दल में।

उसकी अम्मी ने अभी तक सीमा को मुंह ही नहीं लगाया था। इतने
वर्ष हो गए थे। ढेर-सारा पानी पुल के नीचे से गुज़र चुका था। महात्म
गांधी की शहीदी के वाद अपने भीतर भरा हुआ साम्प्रदायिकता का वि
वह समूचा उगल वैठी थी। लेकिन अपनी वेटी को उसने अभी तक क्ष
नहीं किया था। उससे मिलने को उसका मन नहीं माना था। वहन-
आपस में मिलते। वह सुना-अनसुना कर देती। देखी, अनदेखी कर दे
न किसीको मना करती, न स्वयं किसीकी वात मानने को तैयार हो
भीतर-ही-भीतर ज़हर घोलती रहती। वह मां, ज़ेवा की इस ज़्याद
जो कुछ भी करे, वह थोड़ा होगा, वह तो उसे किसी हिन्दू लड़के क
नहीं लेने देती। वह तो सुनते ही माथा पीट लेगी। वह तो खान
छोड़ देगी। छल-छल आंसू वहा रही, फ़रियाद करेगी। वह तो च

खाकर जान दे देगी। अपने-आपको कमरे में बंद करके फूंक डालेगी। कुएं में छलांग लगाकर डूब जाएगी। वह फिर अपने शौहर की कब्र के चक्कर काटना शुरू कर देगी। घंटों सजदे में पड़ी दुआएं मांगती रहा करेगी। इस तरह की औरत की बद्-दुआ तो किसीको भस्म भी कर सकती है। इस तरह की विधवा के मुंह से निकला शाप किसीको झुलस-कर फेंक सकता है। इस तरह के दुखी-दिल की कराह, कोई बच नहीं सकता। हरी टहनियां सूख जाती हैं। लहलहाते खेत मुरझा जाते हैं। फिर वह याद दिलाएगी अपने मियां की नमाज़ों की। अपने घर वालों की इस्लाम में अकीदत की।

उधर राजीव के घर वाले कट्टर सनातनधर्मी थे। अपनी कोठी में उसके मां-बाप ने अपना अलग शिवालय स्थापित किया हुआ था। हवन होते थे। चंदन लेपा जाता था। धूप-अगरबत्ती जलाई जाती। घंटे-घड़ियाल बजाए जाते। व्रत और उपवास, नियम और धर्म। राजीव खुद इतने बरस विलायत रहकर आया था, लेकिन फिर भी शाकाहारी था। कैसे भोलेपन से कहता था, "अगर बहुत मुश्किल होती तो मैं भूखा रह लेता।" लेकिन वह अपने धर्म पर वैसे-का-वैसा कायम रहा था।

उस दिन उसके होंठों पर होंठ, जब वह दीवानों की तरह उसे चूम रहा था, जैसे किसीपर जनून सवार हो, ज़ेबा ने अत्यन्त लाड से उसे छेड़ते हुए कहा था, "राजीव! यह होंठ तो सारी उम्र मांस खा-खाकर पलीद हुए पड़े हैं।" और राजीव ने एक नज़र उसकी आंखों में देखा था और फिर उसे अपने बाहुपाश में लेकर चूमना शुरू कर दिया था। मुंह पर, माथे पर। पलकों पर, पपोटों पर, गले पर, गर्दन पर। उसके अंग-अंग को, पोर-पोर को दुलराता और चूमता।

ज़ेबा कहती, "राजीव! तुम कोई बात करो।"

वह आंखें मूंदे एक वहशत में उसे प्यार करने लग जाता। उसके हाथों पर, उसकी बांहों पर, उसके कंधों पर।

ज़ेबा कहती, "राजीव! मुझे एक बात कहनी है।"

वह उसके होंठों पर होंठ रखे, उसकी ज़बान को जैसे ताला लगा देता। कितनी-कितनी देर उसकी जीभ इसकी जीभ पर तैरती रहती।

वा कहती, "राजीव ! मैं अम्मी को क्या जवाब दूंगी ?"
ौर वह उसे और भी सीने के साथ चिपका लेता। और भी कलेजे
थ भींच लेता।

ज़ेवा कहती, "मेरा नमाज़ी अब्बा मुझे कभी माफ़ नहीं करेगा," और
उसे अपनी बांहों में लेकर जैसे समूचा उसे अपनी आंखों में बिठा रहा
। अपने मन-मन्दिर में जैसे उसकी मूर्ति स्थापित कर रहा हो।

कितनी लंबी-लंबी चिट्ठियां लिखता था ! स्वर्णा कहती—विलायत
भैया का बस पैसों के लिए केवल आया करता था। चिट्ठियां तो बस
घर से जाती थीं। कभी पिताजी की, कभी माताजी की। कभी किसी
बहन की, कभी किसी भाई की।

और अब एक चिट्ठी उसकी हर-रोज़ आती थी। कभी एक से अधिक।
कभी चिट्ठी लिखकर टेलीफ़ोन करने बैठ जाता। टेलीफ़ोन करके हटता
और चिट्ठी लिखने लगता। एक दीवानापन। कभी यूं भी किसीने किसी-
से प्यार किया होगा ? कभी यूं भी कोई किसीपर कुर्बान हुआ होगा ?

ज़ेवा उसे समझाने की जितनी कोशिश करती, जितनी बार कोशिश
करती उसे रोकने की, वह स्वयं उसके साथ बह-बह जाती। जितना अपने-
आपको रोक-रोक रखती, हवा का एक झोंका आता और वह एक तिनके
की तरह एक बवंडर में उड़ने लगती। राजीव को बचाते हुए वह खुद
गोते खाने लगती।

ज़ेवा को डर था कि उसके ननिहाल की, राजीव के घर वालों से
दोस्ती पीढ़ियों से चली आ रही थी। हमसाये मां-बाप के जाये। वे लोग
तो घी-शक्कर की तरह कितने दिनों से रहते चले आ रहे थे। बंटवारे
के फ़सादों के दिनों, अगर मुसलमानों का जुलूस सड़क से गुज़र रहा होत
तो उसके ननिहाल के लोग राजीव की कोठी में जा बैठते। और अग
जुलूस जनसंघियों का होता तो राय साहब खुद नौकरों समेत, इन
ननिहाल की कोठी में आ जमते। क्या मजाल जो आंखें उठाकर भी क
उनके बंगले की तरफ़ देख जाए। उनकी सड़क पर कैसी-कैसी वार
नहीं हुई थीं ! कितने घर लूटे गए थे ! लेकिन किसीकी मजाल नह
कि इन दो पड़ोसियों की तरफ़ बुरी नज़र से देख जाए।

बड़ा शोर मचेगा ! बड़ा गंद उछलेगा ! बड़ी-बड़ी बदनामी होगी ! जो कोई सुनेगा, उसकी मा को ताने देगा, उसके अब्बा को बुरा-भला कहेगा ! दोष हर कोई उसकी मा के सिर मढ़ेगा ! दोषी हर कोई उसके अब्बा को ठहराएगा !

बेचारी उसकी मा ! बेचारे उसके अब्बा !

२९

कोई जमाना था कि उनके यहां होली मनाई जाती थी। जेबा को कुछ-कुछ याद था, लेकिन उसके अब्बा के गुजर जाने के बाद फिर ऐसा कभी नहीं हुआ था। खास तौर पर बटवारे के फसाद के बाद। सीमा के शादी करवा लेने के बाद तो उसकी अम्मी ने जैसे अपने-आपको हिन्दू अड़ोस-पड़ोस से, हिन्दू मिलनेवालों से कतराना शुरू कर दिया था। उनसे मिलकर उसे लगता, जैसे उन्हींमें से किसीने उसके घर सेंध लगाई हो। धीरे-धीरे बेगम मुजीब सिमटती जा रही थी। इस तरह तो किसी दिन वह अपने-आपको अपनी कंचुली में समूची समेट लेगी। जेबा कुछ इस प्रकार सोचती थी।

उस दिन यूं ही बैठे-बैठे जेबा कहने लगी, "अम्मी ! इधर हमने कभी होली नहीं मनाई ?"

"किसी मुसलमान के घर होली मनाने का कोई मतलब नहीं।" बेगम मुजीब के मुंह से निकला, जैसे खीझी-खीझी हो।

"बेशक अम्मी ! पर होली कोई हिन्दुओं का त्योहार थोड़े ही है। यह तो कौमी त्योहार है।" जेबा जानबूझकर अम्मी को छेड़ रही थी। जब से उसे महसूस होने लगा था कि जेबा का राजीव से मेलजोल बढ़ रहा है, बेगम मुजीब हिन्दू मिलने-जुलने वालों से खिंची-खिंची रहने लगी थी।

"ढोलक और डफ बजाना, गीत गाना, नाचना किसे अच्छा नहीं लगता ? होली से कितने दिन पहले लोग गा-गाकर, नाच-नाचकर ...

होने लगते हैं।" ज़ेबा आपसे-आप बोल रही थी, जैसे किसी किताब में से कोई लिखा हुआ पढ़ रहा हो।

" और फिर होली से कोई पंद्रह दिन पहले ढाक और टेसू के फूलों को पानी के भरे मटकों में चूल्हों पर चढ़ा देना ताकि उनका रंग पानी में खिल उठे।"

"और फिर होली के दिन रंग और गुलाल, रंग और अबीर, कितना प्यारा त्योहार है ! " यूं लगता, जैसे ज़ेबा तूलिका की कोमल नोक से कोई चित्र उभार रही हो।

"इस्लाम में ये सब कुछ हराम है।" बेगम मुजीब ने नाक चढ़ाकर कहा।

"अम्मी ! मुग़ल राज में तो होली बड़ी धूमधाम से मनाई जाती थी। बादशाह होली मनाते थे। नाच होता था। जाम उछलते थे।"

बेगम मुजीब चुप। जैसे ज़ेबा बेकार बक-बक कर रही हो।

"बहादुर शाह ज़फ़र होली मनाते थे। उन्होंने तो होली पर शे'र भी लिखे थे :

क्यों मुंह पर रंग की मारी पिचकारी,
देखो कुंवरजी, दूंगी मैं गारी।"

बेगम मुजीब जैसे सुनी अनसुनी कर रही हो।

"नवाब आसिफ़-उद-दौला बड़े शौक़ से होली मनाया करते थे।"

"लखनऊ के नवाबों को तो कोई बहाना चाहिए होता था, रंगरेलियां मनाने का।" बेगम मुजीब ने फिर त्यौरी चढ़ाकर कहा।

"इन्द्र के अखाड़े का मंजर पेश किया जाता। पिचकारियां छोड़ी जातीं। गुलाल उड़ाया जाता। जाम के दौर चलते। नाच और गाना। और फिर भूखे-नंगों को दान दिया जाता। भंडारे लगते। सदा बरत सजते।"

"सब फ़िज़ूल।" बेगम मुजीब को जैसे इसमें कोई दिलचस्पी न हो।

"अम्मी ! भूखे-नंगों को खिलाना-पिलाना, ख़ैरात बांटना, ये हिन्दू रस्म-रिवाज में पहले नहीं होता था। होली के दिन ऐसा करना, यह मुसलमानों की देन है इस त्योहार को।"

"तो फिर क्या हुआ ?" बेगम मुजीब अभी तक नहीं भीगी थी।

"यही नहीं, हर फकीर, हर जरूरतमंद को एक-एक रुपया हदिया के तौर पर बांटा जाता था।"

बेगम मुजीब खामोश रहीं।

"नजीर अकबराबादी ने लिखा है -

मचाते होलियां आपस में ले अबीर औ गुलाल,
बने हैं रंग से रंगीं निगाह होली में।"

बेगम मुजीब चुप।

"अम्मी, अगर मुसलमान होली में दिलचस्पी न रखते होते तो शाह हातिम जैसा मुसलमान शायर होली का इस तरह का नक्शा कभी भी न खींच सकता

मुहैया सब है अब असबाब होली
उठो यारो भरो रंगों से झोली
इधर यार और उधर खूबां एफ-आरा
तमाशा है तमाशा है तमाशा।
चमन में घूमो गुल चारों तरफ है
इधर ढोलक उधर आवाजें दफ है
इधर आशिक उधर माशूक की सफ
नशों में मस्त था हरेक शाम बर कफ
गुलाल अबरक से भर-भर के झोली
पुकारे यक-बयक होली है होली।"

"लेकिन अम्मी पर आज यह शे'रो-शायरी क्यों हो रही है ? यह सब कुछ मुझे क्यों सुनाया जा रहा है ?"

"अम्मी ! हम हिन्दुस्तानी हैं। हमारी यह मीरास है।"

"बेशक ! बेशक !" बेगम मुजीब ने जैसे चिढ़कर कहा हो।

"अम्मी, यह बताइए कि हमारे अब्बा होली मनाते थे या नहीं ?"

जैसे किसीने किसीके जीवन के अत्यन्त सुन्दर अध्याय का पन्ना उलटकर उसके सामने खोल दिया हो। एक पलक झपकने की देर में बेगम मुजीब और-की-और हो गई। एकदम खिल-सी गई। उनकी आंखें

में कोई सुहानी यादें तैरने लगीं। और फिर एक नशे-नशे में वह ज़ेवा को बताने लगी :

"होली की दो यादें मुझे कभी नहीं भूल सकीं।"

"कौन-कौन-सी अम्मी ?" ज़ेवा ने उतावले होकर पूछा। अपनी अम्मी की निष्ठुरता के क़िले को तोड़ने में वह सफल हो गई थी।

"तब हमारा अभी रिश्ता नहीं हुआ था। मेरे अब्बा और अम्मी लड़के को देखने के लिए अलीगढ़ से मेरठ आए। तेरे दादा के यहां पहुंचे। उनकी बड़ी ख़ातिर हुई। लेकिन लड़का कहीं नज़र नहीं आ रहा था। वह होली का दिन था। कितनी देर इंतज़ार करते रहे। खा-पीकर निपटे तो लड़का आंगन में आन टपका। मुंह-सिर नीला-पीला, बालों में रंग, कपड़े रंग से लथपथ, हाथ क्या, बांहें क्या, गाल क्या, गर्दन क्या, हर अंग तरह-तरह के रंगों से पुता हुआ। जैसे कोई भूत आंगन में आ धमका हो। तेरे दादा-दादी के हाथ-पांव फूल गए। इस रिश्ते के लिए तो उन्होंने बार-बार पैग़ाम भिजवाए थे। और आज जब बात पक्की होने को आई थी, तो लड़का जैसे कोई बहुरुपिया हो, अपने होने वाले सास-ससुर के सामने खड़ा था। तेरे नाना-नानी हंस-हंसकर लोट-पोट हो रहे थे। फिर यह फ़ैसला हुआ कि वे एक रात मेरठ ही रुक जाएं। बाक़ी सारे दिन लड़के को मल-मलकर नहलाते रहे। तेरी दादी हंसा करती थी, साबुन की कई टिकियां घिसाई गईं, तब कहीं जाकर लड़का इस क़ाबिल हुआ कि उसके होनेवाले सास-ससुर के सामने पेश किया जा सके।"

"अम्मी ! क्या निकाह से पहले आपने अब्बा को कभी नहीं देखा था ?"

"देखा क्यों नहीं था ?" अम्मी के गाल लाल-लाल हो गए, "एक बार बात पक्की हो गई तो फिर हमें कोई रोक नहीं थी।"

"आपके मां-बाप ने इजाज़त दे दी थी ?" ज़ेवा ने हैरान होकर पूछा।

"यह बात तो नहीं !" बेगम मुजीब ने शरमाते हुए कहा, "लेकिन हम लोग मिल लेते थे। कभी किसी बहाने, कभी किसी बहाने। कभी किसी की मदद से, कभी किसीकी मदद से।"

"और अम्मी, होली की दूसरी कौन-सी सुहानी याद है आपको ?" जेया अम्मी को बातों में लगाए रखना चाह रही थी।

"उस दिन शहर में होली मनाई जा रही थी। 'होली है', 'होली है' चिल्लाते लोग सड़कों पर रंग की पिचकारियां छोड़ते, गुलाल उड़ाते, एक-दूसरे को रंगते, नाचते-गाते बेहाल हो रहे थे। मैं घर में अकेली थी। तेरे अब्बा कई महीनों से फ़िरंगी की क़ैद काट रहे थे। खिड़की में खड़ी बाहर होली का हुड़दंग देखकर और भी उदास हो रही थी, और भी अकेली महसूस कर रही थी कि मैं क्या देखती हूं कि होली खेलने वालों की एक टोली ढोल पीटती, नफ़ीरियां बजाती, रंग की पिचकारियां छोड़ती, नाचती-गाती, गुलाल उड़ाती हुई सामने हमारे बंगले में आ घुसी। और मेरी आंखें खुली-की-खुली रह गईं। उनमें तुम्हारे अब्बा सबसे आगे थे। यार लोगों ने उन्हें जेल से छूटते ही, रास्ते में पकड़ लिया था। और वे होली खेलने लगे। होली खेलते-खेलते घर आ पहुंचे। यह कोई मानने वाली बात है ?"

३०

फिर बेगम मुजीब से एक गलती हो गई। मासूम-सी ग़लती, जिसके लिए किसीको अपार कष्ट झेलना पड़ता है।

एक सुबह जेया कहीं बाहर गई हुई थी। डाक में उसके नाम चिट्ठी आई। चिट्ठियां जेया के नाम आती रहती थीं, ज़ाहिद के नाम आती थीं, स्वयं उसके नाम आती थीं, उसने कभी किसी और की डाक की तरफ़ नहीं देखा। उस दिन, पता नहीं उसके मन में क्या वहशत-सी आई कि उसने जेया के नाम आई चिट्ठी को खोलकर पढ़ लिया।

चिट्ठी राजीव की थी। ज्यों-ज्यों बेगम मुजीब चिट्ठी पढ़ती जाती, उसके पांव तले से ज़मीन निकलती जा रही थी। उसके हाथों के तोते उड़ रहे थे। उसके कानों में एक अजीब सनसनाहट-सी सुनाई देने लगी। उसकी

आंखों के सामने अंधेरे के चक्कर बनने लगे। चिट्ठी पढ़ने के बाद, उसे बस इतनी होश थी कि बेगम मुजीब ने लिफ़ाफ़े को फिर उसी तरह चिपकाकर बाक़ी डाक में रख दिया।

अपने कमरे में अकेली पलंग पर पड़ी बेगम मुजीब मन-ही-मन में विष घोल रही थी। वे तो उससे कहीं आगे निकल गए थे, जितना वह सोचती थी। उसे इस बात का भी विश्वास था कि ज़ेबा की इस हरकत में ज़ाहिद की अगर रज़ामंदी नहीं थी तो हमदर्दी ज़रूर थी। कम-से-कम ज़ाहिद ज़ेबा की इस कमजोरी से परिचित ज़रूर था।

बेगम मुजीब सोचती, वह बस अकेली थी कुढ़ने के लिए। वह बस अकेली थी इस भाड़ में भुनने के लिए। अकेली थी वह रोने और फ़रियाद करने के लिए। एक विधवा की सूली पर टंगी ज़िंदगी।

और यह फांसी का फंदा बेगम ने स्वयं डाला था। उसे किसीके नाम आई चिट्ठी नहीं पढ़नी चाहिए थी। यह तो उतनी ही बड़ी ग़लती थी, उतनी ही माफ़ न की जाने वाली ग़लती, जितनी 'ग़लती' शायद ज़ेबा कर रही थी। बेगम मुजीब की मुसीबत यह थी कि वह यह क़बूल भी नहीं कर सकती थी कि उसने अपनी बेटी के नाम आई चिट्ठी चोरी से पढ़ ली थी। अगर चिट्ठी नहीं पढ़ी थी तो उसे वह सब कुछ कैसे पता चल गया था जो उसे मालूम था, और जिसे जानकर वह भीतर-ही-भीतर घुलने लगी थी?

बेगम मुजीब सोचती, अगर वह अपनी पढ़ी-लिखी, जवान-जहान बेटी से ख़फ़ा होकर उसे डांट कर मना करती है तो जितना आगे वह चली गई थी, जो उसे कल करना था, वह आज कर लेगी। उसके रोके वह नहीं रुकेगी। यह भी वही कुछ कर लेगी जो सीमा ने किया था। यह सोचकर उसका दिल डूबने लगा। वह तो कहीं की भी नहीं रहेगी। न इधर की, न उधर की। उसका तो मुंह काला हो जाएगा। न दीन रहा, न दुनिया रहेगी। उसे न खाना अच्छा लगता, न पीना। छिप-छिपकर छल-छल आंसू बहाती। उसने ऐसा रोग पाल लिया था जिसका कोई इलाज नहीं था।

बस, एक ही रास्ता उसे दिखाई देता था कि धीरज और प्यार से किसी प्रकार वह ज़ेबा को समझा-बुझा ले। किसी तरह वह मान जाए तो

बेगम मुजीब सोचती, वह ज़ेबा को लेकर पाकिस्तान चली जाएगी। लेकिन पाकिस्तानी तो जैसे लड़ाई पर तुले हुए। हर रोज़ नये-नये शोशे छेड़ रहे थे। यह लड़ाई तो कभी भी भड़क सकती थी।

बेगम मुजीब कुछ भी नहीं कर सकी। हर रोज भारी-भरकम मोटा लिफाफा आता, हर रोज टेलीफोन मिलाए जाते; कभी इस तरफ से कभी उस तरफ से। कितनी-कितनी देर वे खुसर-फुसर करते रहते। बेगम मुजीब के सीने से जैसे छुरियां चल रही हों। उसके अंग-अंग को जैसे कोई काट रहा, टुकड़े-टुकड़े कर रहा हो।

सबसे ज्यादा दुखी बेगम मुजीब तब होती जब ज़ेबा उससे पूछती, "अम्मी! आपको क्या हो रहा है? हर वक्त बुझी-बुझी-सी, हर वक्त रुआसी-रुआसी, हर वक्त उखड़ी-उखड़ी-सी!"

उसे लगता, जैसे उसकी छाती पर तड़-तड़ गोलियां चल रही हैं। उसका सीना छलनी होकर रह जाता।

और फिर जब ज़ेबा या आबिद राजीव की बातें करने लगते, कितनी-कितनी देर उसे अच्छा-अच्छा कहते रहते, उसके गुण गाते जैसे उनकी ज़बान न थकती हो। उसका रंग, उसका रूप, उसका कद-बुत, उसका स्वभाव। क्या मजाल जो कोई संकीर्णता उसके मन में कहीं हो। हिन्दुओं जैसा हिन्दू। मुसलमानों जैसा मुसलमान। एक नमूना सच्चे हिन्दुस्तानी का। "अम्मी! ज़रा सोचिए, जो जवान-जहान लड़का इतने बरस विलायत रहकर वैसे-का-वैसा वेजीटेरियन लौट आया है, उसका किरदार कैसा होगा!" ज़ेबा एक से अधिक बार बेगम मुजीब को यह सुना चुकी थी। जितनी बार ज़ेबा उसकी याद दिलाती, बेगम मुजीब को लगता जैसे उसके मुंह पर किसीने थप्पड़ दे मारा हो। न वह इधर की थी, न उधर की। न वह हिन्दुस्तानी थी, न पाकिस्तानी। उसकी समझ में कुछ न आता। कोई उसे आगे खींचता, कोई पीछे। कोई उसे दायें खींचता, कोई बायें। दिन-रात के इस संघर्ष में वह टुकड़े-टुकड़े होती जा रही थी।

बेगम मुजीब के भीतर की विधवा लहू के आंसू रोती रहती। कभी जो उसका शौहर आज होता, वह अपनी तमाम समस्याएं उसकी झोली में डालकर आप अलग हो जाती। जो वह उचित समझता, करता। जो वह

आंखों के सामने अंधेरे के चक्कर वनने लगे। चिट्ठी पढ़ने के वाद, उसे वस इतनी होश थी कि वेगम मुजीव ने लिफ़ाफ़े को फिर उसी तरह चिपकाकर वाक़ी डाक में रख दिया।

अपने कमरे में अकेली पलंग पर पड़ी वेगम मुजीव मन-ही-मन में विप घोल रही थी। वे तो उससे कहीं आगे निकल गए थे, जितना वह सोचती थी। उसे इस वात का भी विश्वास था कि ज़ेवा की इस हरकत में ज़ाहिद की अगर रज़ामंदी नहीं थी तो हमदर्दी ज़रूर थी। कम-से-कम ज़ाहिद ज़ेवा की इस कमज़ोरी से परिचित ज़रूर था।

वेगम मुजीव सोचती, वह वस अकेली थी कुढ़ने के लिए। वह वस अकेली थी इस भाड़ में भुनने के लिए। अकेली थी वह रोने और फ़रियाद करने के लिए। एक विधवा की सूली पर टंगी ज़िंदगी।

और यह फांसी का फंदा वेगम ने स्वयं डाला था। उसे किसीके नाम आई चिट्ठी नहीं पढ़नी चाहिए थी। यह तो उतनी ही वड़ी ग़लती थी, उतनी ही माफ़ न की जाने वाली ग़लती, जितनी 'ग़लती' शायद ज़ेवा कर रही थी। वेगम मुजीव की मुसीवत यह थी कि वह यह क़वूल भी नहीं कर सकती थी कि उसने अपनी वेटी के नाम आई चिट्ठी चोरी से पढ़ ली थी। अगर चिट्ठी नहीं पढ़ी भी तो उसे वह सव कुछ कैसे पता चल गया था जो उसे मालूम था, और जिसे जानकर वह भीतर-ही-भीतर घुलने लगी थी?

वेगम मुजीव सोचती, अगर वह अपनी पढ़ी-लिखी, जवान-जहान वेटी से ख़फ़ा होकर उसे डांट कर मना करती है तो जितना आगे वह चली गई थी, जो उसे कल करना था, वह आज कर लेगी। उसके रोके वह नहीं रुकेगी। यह भी वही कुछ कर लेगी जो सीमा ने किया था। यह सोचकर उसका दिल डूवने लगा। वह तो कहीं की भी नहीं रहेगी। न इधर की, न उधर की। उसका तो मुंह काला हो जाएगा। न दीन रहा, न दुनिया रहेगी। उसे न खाना अच्छा लगता, न पीना। छिप-छिपकर छल-छल आंसू वहाती। उसने ऐसा रोग पाल लिया था जिसका कोई इलाज नहीं था।

वस, एक ही रास्ता उसे दिखाई देता था कि धीरज और प्यार से किसी प्रकार वह ज़ेवा को समझा-वुझा ले। किसी तरह वह मान जाए तो

बेगम मुजीब सोचती, वह ज़ेबा को लेकर पाकिस्तान चली जाएगी। लेकिन पाकिस्तानी तो जैसे लड़ाई पर तुले हों। हर रोज नये-नये शोशे छेड़ रहे थे। यह लड़ाई तो कभी भी भड़क सकती थी।

बेगम मुजीब कुछ भी नहीं कर सकी। हर रोज भारी-भरकम नीला लिफाफ़ा आता, हर रोज टेलीफ़ोन मिलाए जाते; कभी इस तरफ़ से कभी उस तरफ़ से। कितनी-कितनी देर वे खुसर-फुसर करते रहते। बेगम मुजीब के सीने में जैसे छुरियां चल रही हों। उसके अंग-अंग को जैसे कोई काट रहा, टुकड़े-टुकड़े कर रहा हो।

सबसे ज़्यादा दुखी बेगम मुजीब तब होती जब ज़ेबा उससे पूछती, "अम्मी! आपको क्या हो रहा है? हर वक्त बुझी-बुझी-सी, हर वक्त रुआंसी-रुआंसी, हर वक्त उखड़ी-उखड़ी-सी!"

उसे लगता, जैसे उसकी छाती पर तड़-तड़ गोलियां चल रही हों। उसका सीना छलनी होकर रह जाता।

और फिर जब ज़ेबा या ज़ाहिद राजीव की बातें करने लगते, कितनी-कितनी देर उसे अच्छा-अच्छा कहते रहते, उसके गुण गाते जैसे उनकी बयान न थकती हो। उसका रंग, उसका रूप, उसका कद-बुत, उसका स्वभाव। क्या मजाल जो कोई संकीर्णता उसके मन में कहीं हो। हिन्दुओं जैसा हिन्दू। मुसलमानों जैसा मुसलमान। एक नमूना सच्चे हिन्दुस्तानी का। "अम्मी! ज़रा सोचिए, जो जवान-जहान लड़का इतने बरस विलायत रहकर वैसे-का-वैसा वेजीटेरियन लौट आया है, उसका किरदार कैसा होगा!" ज़ेबा एक से अधिक बार बेगम मुजीब को यह सुना चुकी थी। जितनी बार ज़ेबा उसको याद दिलाती, बेगम मुजीब को लगता जैसे उसके मुंह पर किसीने थप्पड़ दे मारा हो। न वह इधर की थी, न उधर की। न वह हिन्दुस्तानी थी, न पाकिस्तानी। उसकी समझ में कुछ न आता। कोई उसे आगे खींचता, कोई पीछे। कोई उसे दायें खींचता, कोई बायें। दिन-रात के इस संघर्ष में वह टुकड़े-टुकड़े होती जा रही थी।

बेगम मुजीब के भीतर की विधवा लहू के आंसू रोती रहती। कभी जो उसका शौहर बाज़ होता, वह अपनी तमाम समस्याएं उसकी झोली में डालकर आप अलग हो जाती। जो वह उचित समझता, करता। जो वह

कहता, उसके बच्चे उसी रास्ते पर चलते। किसीकी क्या मजाल जो शेख़ मुजीब की बात को न माने। घर वाले क्या और बाहर वाले क्या!

हारी हुई औरत, बेगम मुजीब हर दूसरे दिन महमूद को बुलवा भेजती। उसकी ख़ातिर करती रहती। किसी तरह ज़ेबा उसके बारे में अपनी राय बदल ले। ज़ाहिद उसे चाहने लगे। महमूद उनके घर होता तो वे उसका ध्यान रखते, उसे खिलाते-पिलाते। जहां तक संभव होता, कोई ऐसी बात न करते जो उसे पसंद न हो। पिछले कुछ दिनों से जान-बूझकर उन्होंने पाकिस्तान के बारे में बहस करना बंद कर दिया था। लेकिन उधर उसकी पीठ होती, इधर बहन-भाई उसकी हर हरकत की नुक़्ता-चीनी करने लगते।

उस दिन मां-बेटी अकेली थीं। बाहर लॉन में बैठी धूप खा रही थीं।

"अम्मी! उर्वशी कोई गहना होता है क्या?" ज़ेबा पूछने लगी।

"हां-हां, इसे हम धुकधुकी कहते हैं। औरतें इसे अंदर पहनती हैं। छाती के साथ लगा रहता है। मेरे पास है।"

"अम्मी! यह हिन्दू गहना है या मुसलमान गहना?"

"गहने भी कभी हिन्दू या मुसलमान हुए हैं? यह हिन्दुस्तानी गहना है।" बेगम मुजीब ने सहज ढंग से कहा।

"अम्मी! आरसी भी क्या कोई गहना होता है?"

"एक तरह की अंगूठी होती है जिसमें शीशा जड़ा होता है। औरतें इसमें देखकर अपना रूप संवारती रहती हैं।"

"अम्मी! यह गहना हिन्दू पहनते हैं या मुसलमान?"

"चाहे कोई पहन ले। कभी हिन्दुओं में भी इसका उतना ही चलन होता था जितना मुसलमानों में।"

"अम्मी। टीका तो ज़रूर हिन्दू गहना होगा?" ज़ेबा ने पूछा।

"क्यों? टीका माथे का ज़ेवर है। मुसलमानों में उतना ही पसंद किया जाता है जितना हिन्दुओं में। हर मुसलमान दुलहन अपने-आपको टीके से सजाकर खुश होती है। मेरी शादी पर मुझे टीके से सजाया गया था।"

"अच्छा, रमझोल ज़ेवर क्या होता है?"

"यह पाव का गहना है। चांदी का।"

"यह तो जरूर हिन्दू गहना होगा। नाम से ही पता चलता है।"

"नहीं, मैंने अपनी शादी पर रमझोल पहने थे। कई बार तीज-त्योहार पर पहनती रही हूं।"

"मेरी याद में तो आपने कभी कोई गहना नहीं पहना?"

"औरत के गहने उसके सुहाग के साथ होते हैं। तेरे अब्बा जब से अल्लाह को प्यारे हुए, मैंने किसी जेवर को आंख उठाकर नहीं देखा।"

"यह तो बिल्कुल हिन्दू रिवाज है। क्या नहीं? विधवा का चूड़ियां तोड़ देना और कभी जेवर न पहनना?" जेबा जैसे कोई दलील दे रही हो।

बेगम मुजीब सब कुछ समझ रही थी, लेकिन जानबूझकर अनजान बनी हुई थी।

"मुझे अपने अब्बा की कोई बात याद नहीं।"

"तुम दस साल की थी। तुम्हें कुछ-कुछ याद तो होना चाहिए।"

"एक धुंधली-सी याद है, बस, अम्मी! अपनी जवानी में अब्बा निहायत खूबसूरत होंगे? कैसे लगते थे?"

"हू-ब-हू महमूद मियां की शक्ल के।" बेगम मुजीब के मुंह से अचानक निकला, "एक को छिपाओ, दूसरे को निकालो।"

जेबा ने सुना और उसके मुंह का जायका जहर जैसा हो गया।

३१

आजकल जाहिद को जब भी अवसर मिलता, वह महमूद को कुरेदने लगता, उसकी मनोदशा को समझने की कोशिश करता। जाहिद को प्रतीत होता, महमूद भारत में बसने वाले आम मुसलमानों की तरह था। उनकी तरह सोचता, उनकी तरह कुछ सचमुच की और कुछ काल्पनिक समस्याओं में घिरा रहता।

महमूद कुछ ज़्यादा भावुक था। स्वभाव से कुछ ज़्यादा तुनक-मिज़ाज। कुछ ज़्यादा ही जोड़-तोड़ करने की आदत। कुछ ज़्यादा ही लीडरी का शौक़।

उस दिन बातों-ही-बातों में महमूद ने पिछले दिनों राऊरकेला में हुए फ़साद का ज़िक्र किया था।

"फ़साद आजकल की ज़िन्दगी की असलियत है। हमारी दुनिया में फ़साद होते रहते हैं। फ़साद अमरीका में आए दिन होते हैं। ब्रिटेन में होते हैं। गोरे और काले एक-दूसरे को एक आंख नहीं देख सकते।" ज़ाहिद ने जानबूझकर बात छेड़ी।

"उनकी और बात है।" महमूद कह रहा था।

"फ़साद पाकिस्तान में भी होते हैं, शिया और सुन्नियों के बीच। महाजरों और ग़ैरमहाजरों के बीच। पंजाबियों और बंगालियों में। आए दिन अहमदियों पर हमले होते रहते हैं।"

"इसका मतलब यह नहीं कि हम भी इधर मुसलमानों को काटना-पीटना शुरू कर दें। एक तरफ़ हम महात्मा गांधी का दम भरते हैं, दूसरी तरफ़ फ़िरक़ापरस्ती पालते रहते हैं।"

"हर फ़साद को भी फ़िरक़ावाराना फ़साद कहना, मेरी नज़र में ठीक नहीं। तेज़ी से आगे बढ़ रहे हमारे समाज में इन फ़सादों की और वजह भी हो सकती है।"

"हर फ़साद की जड़ पर फ़िरक़ापरस्ती होती है।" महमूद अपनी ज़िद पर अड़ा हुआ था।

"यह बात नहीं। कई बार हालात की असलियत नहीं बल्कि उनकी परछाईं हमें गुमराह कर देती है।"

"कुछ भी हो, मारे कम-गिनती वाले ही जाते हैं।"

"तरक़्क़ी का हर क़दम, ख़ास तौर पर अगर उसे जल्दबाज़ी में उठाया जाए, कशमकश पैदा करता है। उसमें फ़साद का बीज पनप रहा होता है।"

महमूद इस तरह सिर हिला रहा था, जैसे यह बात उसकी समझ में न आ रही हो।

"अब राऊरकेला ही ले लो। अखबारों में जो कुछ छपा, उससे जाहिर होता है कि पूर्वी पाकिस्तान में गड़बड़ शुरू होने की वजह से हिन्दू शरणार्थी पश्चिमी बंगाल में आना शुरू हो गए। खास तौर पर कलकत्ता में। क्योंकि कलकत्ता पहले ही लबालब भरा था, इन लोगों को गाड़ियों में डालकर मध्यप्रदेश में दंडकारण्य भेजा जाने लगा। ये ट्रेन राऊरकेला जैसे स्टेशनों पर रुकती थी। खास तौर पर राऊरकेला के स्टेशन पर शरणार्थियों को शहर के लोग खाना खिलाते थे। राऊरकेला के लोग शरणार्थियों के साथ हमदर्दी जतलाते, उनके साथ हुई ज्यादती की कहानियों को बढ़ा-चढ़ाकर शहर में फैलाने लगे। फिरकापरस्ती का ज़हर बढ़ने लगा। फिर एक दिन किसी मुसलमान की दी हुई रोटी खाकर किसी हिन्दू शरणार्थी को उल्टी आ गई। सारे शहर में यह अफवाह आग की तरह फैल गई कि मुसलमान शहरी हिन्दू-शरणार्थियों को ज़हर मिलाकर रोटियां खिलाते हैं। इसमें कोई सच्चाई नहीं थी कि खाने में ज़हर मिला हुआ था। लेकिन अफवाह को कौन रोक सकता है? हिन्दुओं को पहले ही शक था कि मुसलमानों ने अपने घरों में असलहा इकट्ठा किया हुआ है। चोरी-छिपे वे लोग ट्रांसमीटर की मदद से पाकिस्तान से तालमेल बनाए हुए हैं...।"

"यह बात नहीं जाहिद, मैं खुद उन दिनों राऊरकेला में था। आर० एस० एस० के लोग शरणार्थियों की ट्रेनों को खाना खिलाने के बहाने उनकी सच्ची-झूठी कहानियां लोगों में फैलाने लग गए थे।"

"लेकिन आप राऊरकेला क्या कर रहे थे?" जेबा पता नहीं कहां से आ टपकी थी। उसने छूटते ही महमूद से पूछा।

महमूद के हाथ-पांव फूल गए। बगलें झांकने लगा। "मैं यूं ही किसी रिश्तेदार से मिलने गया था।"

"बेशक आर० एस० एस० वालों की भी शरारत होगी, लेकिन मुझे लगता है कि राऊरकेला के फसाद की वजह कुछ और ही थी।"

"लोगों के बेकार अंदाजे," महमूद नाक चढ़ाकर कहने लगा।

"जयप्रकाश नारायण तो गलत नहीं हो सकते?"

"सब हिन्दू गलत हो सकते हैं जहां तक गरीब मुसलमानों का सवाल

है," महमूद के हर बोल में ज़हर भरा हुआ था।

"यूं जज़बाती होना बेकार है। इस तरह के फ़तवे लगाने से नुक़सान कम-गिनती वालों का ही होता है। आख़िर जयप्रकाश नारायण की नीयत पर तो पाकिस्तान ने भी कभी शक नहीं किया।"

"जयप्रकाश क्या कहते हैं?" ज़ेबा ने पूछा।

"उनकी जांच का नतीजा यह है कि राऊरकेला के फ़साद की बुनियादी वजह ये हैं—एक यह कि स्टील के इस शहर के लिए इंजीनियर और तकनीकी माहिरों की ज़रूरत थी। ये लोग देश-भर में मुक़ाबले से चुने जाते हैं। इसलिए सारे ऊंचे ओहदे आम तौर पर बाहर के लोग हथिया लेते हैं। राऊरकेला के असली बाशिंदों को यह बहुत अखरता था। इनमें आदिवासी भी शामिल थे और मुक़ामी हिन्दू भी, और उड़िया मुसलमान भी। ये लोग पिछड़ते गए और बाहर से आए बंगाली और पंजाबी, बिहारी और मद्रासी, आंध्र और केरल के लोग कहीं-के-कहीं पहुंच गए। दूसरी वजह यह कि मुक़ामी बाशिंदों में उड़िया मुसलमान ज्यादा खुशहाल होने की वजह से आदिवासियों की हमेशा लूट-खसोट करते थे। आदिवासी उनके चंगुल में परेशान थे। मुक़ामी शहरी बाहर से आए लोगों से ख़फ़ा था।"

"और जैस्सोर में हुए फ़साद एक बहाना बन गए।" ज़ेबा ने अपनी राय दी।

"असल में ये फ़साद पिछड़ेपन की निशानी थे। या फिर तरक़्क़ी की राह पर हर किसीको बराबर का मौक़ा न मिलने की लानत।" ज़ाहिद का यह विश्वास था।

"सब किताबी बातें हैं।" महमूद ने अपनी विशेष सनक में कहा, "जैस्सोर के फ़ौरन बाद कलकत्ता में भी तो फ़साद हुए। उनकी ज़िम्मेदारी आप किसके माथे मढ़ेंगे?"

"इसका मतलब यह है कि जब-जब पाकिस्तान में हिन्दुओं को परेशान किया जाएगा, इधर भारत में मुसलमानों को इसके दाम चुकाने होंगे?" ज़ेबा ने कहा।

"और यह सिलसिला जारी रहेगा, जब तक कश्मीर का फ़ैसला

नहीं होगा।" महमूद बोला।

"यही तो पाकिस्तान के विदेशमंत्री भुट्टो साहब फरमाते हैं—भारत और पाकिस्तान में फिरकावाराना फ़साद की जड़ कश्मीर का तनाज़ा है। जब तक इसका फ़ैसला नहीं होता, बाक़ी सारे समझौते बेकार होंगे।"

"इसके मुकाबले में जयप्रकाश फ़रमाते हैं—अगर भारतीय हिन्दू सिर्फ़ इसलिए भारतीय मुसलमानों को परेशान करेंगे क्योंकि पाकिस्तानी मुसलमान हिन्दुओं को परेशान कर रहे हैं तो हम दो क़ौमों की थ्यूरी की तसदीक़ कर रहे होंगे।"

"जयप्रकाश सारी उम्र सपने देखता रहा है।" महमूद ने टिप्पणी की।

"असल में मसला इतना कश्मीर का नहीं, जितना पूर्वी पाकिस्तान का है। पश्चिमी पाकिस्तान वाले चाहते हैं कि पूर्वी पाकिस्तान से हिन्दुओं को भगा दिया जाए ताकि वहां की आबादी पश्चिमी पाकिस्तान से ज्यादा न रहे। और इस तरह ये लोग देश के इस हिस्से पर अपना दब-दबा बनाए रखना चाहते हैं।" ज़ाहिद की बात में बड़ा वज़न था।

"पाकिस्तान के पंजाबी मुसलमान, पाकिस्तान के बंगाली मुसलमानों पर अपनी हुक्मरानी बनाए रखना चाहते हैं।" जेबा ने ज़ाहिद की हां-में-हां मिलाई।

"और भारतीय मुसलमान आटे में घुन की तरह पिस जाते हैं।"

"असल में मसला कश्मीर का है।" महमूद अपनी बात पर अड़ा था।

"यह बात नहीं।" ज़ाहिद उसे समझाने की कोशिश कर रहा था, "असल में मसला भारतीय मुसलमानों की 'आइडेंटिटी' का है। जब तक हिन्दुस्तानी मुसलमानों की नज़र पाकिस्तान पर लगी है, तब तक अपने देश के लिए उनमें अपनापन पैदा नहीं होता, उनकी मुसीबतें ख़त्म नहीं होंगी।"

"बकरे की जान गई और खाने वाले को मज़ा नहीं आया," महमूद ने फबती कसी, "हमारी वफ़ादारी का सबसे बड़ा सबूत और क्या हो सकता है कि हम लोग पाकिस्तान नहीं गए!"

"पाकिस्तान चाहे नहीं गए लेकिन हिन्दुस्तानी नहीं बन सके।" ज़ेबा ने दो टूक फैसला दिया।

"जिस देश में 'हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान' के नारे लगाए जाते हों; जिस देश में आर० एस० एस० जैसी जमायतें अभी तक कायम हों, उस देश को कोई कैसे अपना कह सकता है?" महमूद ने जैसे जल-भुन कर कहा।

"उस देश के मुसलमानों को घुस-पैठियों के साथ मिलकर साज़िश करनी चाहिए।" ज़ेबा ने चोट की।

"बेशक, अपने हक़ के लिए कौन नहीं लड़ता?" महमूद बेबाकी पर उतर आया था।

"तभी तो जनाब राऊरकेला में अपने रिश्तेदारों से मिलने गए थे?" ज़ेबा ने जैसे उसे दबोच लिया हो।

"क्या मतलब?" महमूद गुस्से में उबलता हुआ उठ खड़ा हुआ।

"मतलब यह है कि जहां भी फ़साद होते हैं, कई लोग वहां ज़रूर पहुंच जाते हैं।" ज़ेबा के ये शब्द एक गोली की तरह महमूद के सीने में जा लगे। और वह दांत पीसकर उनके घर से निकल गया, जैसे जले हुए गांव में से योगी निकल जाता है।

३२

"तुझे महमूद को इस तरह परेशान नहीं करना चाहिए।" ज़ाहिद ने ज़ेबा को समझाया।

ज़ेबा क्षण-भर के लिए स्तब्ध-सी रह गई। घर पर आए किसी के साथ ऐसा व्यवहार करना बदतमीज़ी थी। लेकिन कुछ अर्से से महमूद उसे एक आंख नहीं भाता था। उधर उसकी अम्मी थी, जैसे उस लड़के ने उस-पर जादू किया हो। उसकी कोई बेहूदगी बेगम मुजीब को बेहूदगी नहीं लगती थी। उसकी हर कमी को नज़र-अंदाज़ कर जाती; जैसे कोई देख-

सुनकर सबकी निकल रहा हो।

"इसका तो दिमाग खराब हो गया है।" बेगम मुजीब गोल कमरे में आई। यूं लगता कि जब ज़ेबा ऊँची आवाज़ में बोल रही थी, उसकी अम्मी बाहर गैलरी में खड़ी सुन रही थी। उनके खानदान की कल्चर, बेगम मुजीब की तबीयत, ज़ेबा अपने-आपपर बेहद लज्जित थी। उसकी आँखों में आँसू आ गए।

"यह आदमी···" वह कुछ कहना चाहती थी कि उसका गला आवेश में रुक गया।

और फिर ज़ाहिद और अम्मी दोनों उसपर बरस पड़े। अम्मी खफा होकर हटी कि ज़ाहिद ने उसे डाटना शुरू कर दिया। ज़ाहिद खामोश हुआ तो अम्मी बरसने लगी।

ज़ेबा सोचती, ज़ाहिद रुखसाना पर मोहित है। इसमें तो कोई संदेह नहीं था कि रुखसाना ज़ाहिद की दीवानी थी। किसी दिन भी वह समर्पण कर सकती थी। जिस दिन से रुखसाना उसके जीवन में आई, ज़ाहिद और का और हो गया था। हर समय रुखसाना का नाम उसके होंठों पर होता। उधर रुखसाना थी कि सुबह-शाम उसके टेलीफोन आए रहते।

अम्मी ने स्वयं अपनी आँखों से ज़ेबा और महमूद को अटपटी हालत में देखा था। जवान-जहान लड़के-लड़की में कोई गलतफहमी हो गई थी, बेगम मुजीब सोचती, आप-ही-आप मनमुटाव दूर हो जाएगा। महमूद अम्मी की नज़रों में जच गया था। उसमें उसे अपने शौहर की झलक दिखाई देती थी। एक विधवा के लिए, एक नवयुवक की पसन्दीदगी और क्या हो सकती है ? और फिर अच्छे घर के मुसलमान लड़के मिलते कहाँ थे। रुखसाना के लिए उसके घरवाले सारा पाकिस्तान छानकर खाली हाथ लौट आए थे। सबसे बड़ा अंदेशा बेगम मुजीब को राजीव से था। जिस दिन से उसने ज़ेबा के नाम राजीव की चिट्ठी पढ़ी थी, आठों पहर उसे एक बेचैनी-सी लगी रहती। कोई ढंग का लड़का मिल जाए तो वह ज़ेबा के हाथ पीले कर दे। अपनी ज़िम्मेदारी से सुर्खरू हो जाए।

और अब जब कि ज़ाहिद और रुखसाना एक-दूसरे के इतना निकट आ गए प्रतीत होते थे, इससे बढ़कर अच्छी बात क्या हो सकती थी कि

महमूद और ज़ेवा का रिश्ता हो जाए ! दोनों वहन-भाई एक घर से जुड़ जाएंगे। एक-दूसरे के दुःख-सुख को वे वांट सकेंगे। ख़ास तौर पर ज़ेवा, सवसे छोटी होने के कारण वड़े अल्हड़ मिज़ाज की थी। ज़ाहिद उसके ससुराल का दामाद होगा तो अपनी वहन का ख़याल रखेगा।

"आजकल दुनिया-भर में नौजवान ख़फ़ा-ख़फ़ा हैं।" ज़ाहिद अपनी वहन को समझा रहा था, "हमारे देश में मुसलमान नौजवानों के पास नाराज़गी की एक वजह और भी है।"

"आए दिन उनकी हक़-तलफ़ी होती रहती है।" वेगम मुजीव वीच में वोली।

ज़ेवा हैरान होकर अपनी अम्मी के मुंह को देख रही थी। उसे जैसे अपने कानों पर विश्वास न हो रहा हो कि यह शेख़ मुजीव की वेगम वोल रही थी।

"लोक-राज में सवको छूट है कि अपने-अपने हक़ की हिफ़ाजत कर सके। हर कोई अपने हक़ के लिए लड़ सकता है।"

"तुम्हारे अव्वा का कई वार अपने हिन्दू साथियों से मतभेद हो जाता था।" अम्मी ज़ेवा के पास आकर वैठ गई।

"इसमें कोई शक नहीं कि उर्दू के मामले में मुसलमान कम-गिनती के साथ पूरा इंसाफ़ नहीं हो रहा है।"

"मैं तो कहूंगी कि नौकरियों के मामलों में भी मुसलमानों के साथ ज़्यादती हो रही है।" वेगम मुजीव ने ज़ाहिद की हां-में-हां मिलाई।

"इसमें रत्ती-भर शक नहीं," ज़ाहिद वोला, "आज १९६५ में इक्कीस सौ आइ० ए० एस० के अफ़सरों में वस एक सौ ग्यारह अफ़सर मुसलमान हैं। दो सौ सत्तर फ़ारेनसर्विस के अफ़सरों में सिर्फ़ १२ अफ़सर मुसलमान हैं और इंडियन पुलिस के वारह सौ अफ़सरों में कुल तेंतालिस अफ़सर मुसलमान हैं।"

"यही हाल विधानसभाओं और लोकसभाओं में मुसलमानों की नुमाइंदगी का है। मुसलमान देश की आवादी का दस फ़ीसदी है, इसके मुकावले १९५२ की लोकसभा में ३·६८ फ़ीसदी मुसलमान थे। १९५७ की लोकसभा में ४·२५ फ़ीसदी और १९६२ की लोकसभा में ४·६ फ़ीसदी।

राज्य-सरकारों की विधानसभाओं में तो हालत बिगड़ रही है। १९५२ में ५·३ फ़ीसदी मुसलमान थे, १९५७ में ५·३२ फ़ीसदी और १९६२ में ४·९३ फ़ीसदी रह गए थे।"

"मेरी समझ में नहीं आ रहा कि आखिर यह सब कुछ मुझे क्यों सुनाया जा रहा है ?" ज़ेबा बोली।

"इसलिए कि तुम्हारे सोचने का ढंग सुधर सके। अगर महमूद जैसे मुसलमान नौजवान प्रोटेस्ट करते हैं तो उनका ऐसा करना किसी हद तक जायज़ है।"

"प्रोटेस्ट और चीज़ है, साज़िश और चीज़।" ज़ेबा अभी तक महमूद को माफ़ नहीं कर पा रही थी।

"नौजवान कभी-कभी भटक जाते हैं।" ज़ाहिद का रवैया नरम था।

'उनको समझाया जा सकता है।" बेगम मुजीब कह रही थीं।

ज़ेबा की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। एक झुंझलाहट में वह अपना सिर पकड़कर उठी और चुपचाप अपने कमरे में चली आई। उसने अपना कमरा अन्दर से बंद कर लिया। कितनी ही देर गुमसुम वह अपने पलंग पर पड़ी रही।

गोल कमरे में अपने बेटे ज़ाहिद के पास अकेली बैठी बेगम मुजीब को आज मौका मिला था और उसने उससे अपने दिल की बात कही। उसकी मर्ज़ी थी कि ज़ेबा का किसी तरह निकाह कर दिया जाए। इधर-उधर महमूद के सिवाय कोई लड़का नज़र नहीं आता था। अच्छे खानदान का था। पढ़ा-लिखा था। देखने में सुन्दर। और किसीको चाहिए भी क्या ?

"ज़ेबा की मर्ज़ी के बिना तो कुछ नहीं हो सकता," ज़ाहिद सोच रहा था।

"उसकी मर्ज़ी ख़ाक है। इसी महमूद के बिना कभी उसका एक पल नहीं गुज़रता था।" बेगम मुजीब ज़ाहिद को अपने पक्ष में लाने की कोशिश कर रही थी।

"इन मामलों में जल्दी नहीं करनी चाहिए।" ज़ाहिद की राय थी।

"तो फिर यह भी वही गुल खिलाएगी जो करतूत इसकी बड़ी बहन

ने की है।" बेगम मुजीब परेशान थी।

"ज़बरदस्ती तो किसीके साथ नहीं की जा सकती।"

"क्यों नहीं? मुझसे महमूद की अम्मी कई बार इशारों-इशारों में कह चुकी है। अब, जब उसने ऐसा किया तो मैं बात पक्की कर लूंगी।"

"तौबा! तौबा! यह ग़लती मत करना।" जाहिद मां को समझा रहा था, "आजकल कोई ज़माना है किसीके ज़ाती मामले में दख़ल देने का?"

"किसी मां को इतना भी हक़ नहीं है?"

"मां को सारे हक़ हैं, लेकिन यह हक़ नहीं। शादी का फ़ैसला शादी करने वाले पर छोड़ देना चाहिए।"

"इस लड़की के रंग-ढंग मुझे अजीब लगते हैं। यह तो हमारी नाक कटवाकर रहेगी।" बेगम मुजीब उत्तेजित हो रही थी।

"मेरी राय है, आप रुख़साना से बात करें। अगर ज़रूरत हुई तो वह ज़ेबा को समझा लेगी। आजकल उनकी आपस में बहुत दोस्ती है।"

बेगम मुजीब को जाहिद का यह मशवरा बड़ा उचित लगा। वह सोचती, रुख़साना उसकी बात कभी नहीं टालेगी और फिर रुख़साना को तो वह मन-ही-मन अपनी बहू बना बैठी थी। किसी दिन वह उसके आंगन की रौनक़ हो जाएगी।

और फिर अगली फ़ुरसत में, जब ज़ेबा स्कूल पढ़ाने गई हुई थी और ज़ाहिद अस्पताल में था, बेगम मुजीब ने रुख़साना को बुला भेजा और उससे ज़ेबा और महमूद के रिश्ते की बात छेड़ी।

"अम्मीजान! आपको हो क्या रहा है?" रुख़साना को जैसे अपने कानों पर यक़ीन न हो रहा हो, "ज़ेबा और महमूद! ऊंट के गले में घंटी। महमूद चाहे मेरा भाई है लेकिन ज़ेबा जैसी सुलझी हुई, तरक़्क़ी-पसन्द लड़की के लिए वह बिल्कुल मौज़ूं नहीं। बड़ा बेहूदा है, बड़ा बिगड़ा हुआ है।"

"सब नौजवान ऐसे हो जाते हैं। वक़्त आने पर संभल जाएगा।" बेगम मुजीब अपने मत पर दृढ़ थी।

"कभी यह ग़लती न करना अम्मीजान! महमूद और ज़ेबा की तो

एक दिन भी नहीं निभेगी। ताश की बाजी में तो वे पार्टनर बन नहीं सकते, जिन्दगी में कैसे साथ देंगे?"

"कोई वक्त था जब एक-दूसरे के वे···"

और फिर बेगम मुजीब के भीतर की मां खामोश हो गई।

"बेशक! बेशक!! मुझे सब मालूम है। लेकिन वह वक्त कभी का बीत चुका है।" रुखसाना बेगम को बता रही थी।

३३

रुखसाना के साथ मुलाकात के बाद बेगम मुजीब को ऐसा महसूस होता, जैसे कोई साजिश हो। हर कोई इस बात पर तुला हुआ प्रतीत होता था कि जेबा और महमूद का ब्याह न हो। महमूद की बहन रुखसाना तो साफ कह चुकी थी।

इधर बेगम मुजीब थी, मानो महमूद पर समूची न्योछावर हो चुकी थी। खाते-पीते लोग थे। ढेर सारी जायदाद थी। लड़की राज करेगी। मां-बाप का इकलौता बेटा था। फिर रहेगी भी उसी शहर में। जब जी चाहा, मां-बेटी मिल लिया करेंगी। बड़ी बेटी तो उसकी जिंदगी से निकल चुकी थी।

कोई और रास्ता दिखाई नहीं दे रहा था। उस दिन जेबा के साथ हुई बदमजगी के बाद महमूद ने उनके यहां आना बंद कर दिया था। बेगम मुजीब की समझ में न आता, किस बहाने उसे अपने यहां बुलाए।

उसे चारों ओर अंधेरा दिखाई देता। भीतर-ही-भीतर वह घुलती जा रही थी। उसकी भूख जाती रही। सारी-सारी रात करवटें बदलती रहती। नींद नहीं आती थी उसे। कमरा बंद करके या तो सजदे में गिरी रहती या छम-छम उसके आंसू बहते रहते। हर शाम अपने शौहर के मजार पर जाती। कितनी-कितनी देर वहां बैठी अपना दुखड़ा रोती रहती। पांचों वक्त नमाज पढ़ती। तसबीह फेरती। विर्द करती, लेकिन कहीं भी

कोई रोशनी की किरण दिखाई नहीं देती थी।

बेगम मुजीब दिन-प्रतिदिन कमज़ोर होती जा रही थी। हड्डियों का ढांचा-सा लगती थी। ज़ाहिद परेशान था। ज़ेबा परेशान थी। बार-बार उसके डाक्टरी परीक्षण होते। कोई बीमारी नहीं थी। कोई ख़राबी नहीं थी। फिर भी बेगम मुजीब ने पलंग पकड़ लिया था।

ज़ेबा सब कुछ जानती थी। ज़ाहिद भी, दिल से, अपनी मां के रोग को पहचानता था। यह बीमारी, लेकिन ऐसी थी, जिसका इलाज किसी-के पास नहीं था। उनके चहकते हुए घर में ख़ामोशी छा गई थी। अब न पहले-सी पार्टियां होतीं, न दावतें उड़ाई जातीं। लोगों ने इनके यहां आना बंद कर दिया था। इन्होंने बाहर जाना बंद कर दिया था।

और तो सब कुछ सिमटता जा रहा था, लेकिन राजीव की चिट्ठियां बदस्तूर आतीं। भारी-भरकम नीला लिफ़ाफ़ा जब वह देखती, बेगम मुजीब के सीने पर जैसे सांप लोटने लगता। एक टीस-सी भीतर से उठती। पर मुंह से कुछ न बोल पाती। हर चौथे रोज टेलीफ़ोन आता। एक बार टेलीफ़ोन मिलता तो कितनी-कितनी देर वे खुसर-फुसर करते रहते। ख़ुदा जाने, ऐसी क्या बातें उन्हें करनी होती थीं जो इतनी-इतनी वज़नी चिट्ठियों में नहीं समाती थीं! इतने-इतने लम्बे टेलीफ़ोन में नहीं ख़त्म होने को आती थीं!

उधर पाकिस्तान में उसके जेठ शेख़ शब्बीर की हालत और बिगड़ गई थी। ख़बर आई कि उसका दिमाग़ पूरी तरह ख़राब हो गया था। आजकल वह घर छोड़कर किसी दरगाह में जा बैठा था। हर वक़्त 'अल्लाह-हू', 'अल्लाह-हू' करता रहता। उसने सिर मुंडवा लिया था। दाढ़ी बढ़ा ली थी। नीला चोगा पहने नंगे पांव फिरता रहता। उसके हाथ में एक डंडा रहता था। या तो 'अल्लाह हू', 'अल्लाह हू' की रट लगाए रहता या फिर जो सामने आ जाता, उसे गंदी गालियां बकने लगता। न कभी घर आता, न घर वालों को पहचानता।

उधर बाप की यह हालत थी और इधर उसके बेटे कबीर की बीवी उसे छोड़कर भाग गई। दो बच्चे जो उसने पैदा किए थे, उन्हें भी छोड़ गई। कबीर सख़्त परेशान था। दादी बच्चों को पाल रही थी। बेगम मुजीब

की जेठानी को अपने बेटे का घर फिर से बसाने की चिंता सगी हुई थी। आखिर उसके पोतों को भी तो पालने वाली चाहिए। मां कब तक बेटे के यहां बैठी रहेगी? उसके अपने मियां की हालत बद-से-बदतर होती जा रही थी। कुछ कहा नहीं जा सकता था कि वह क्या कर बैठे।

यह दूसरी चिट्ठी आई थी उसकी जेठानी की—'कुदसिया! अगर तुम्हारी नजर में कोई लड़की हो तो कबीर का घर बसा दो। तुम्हारा एहसान मैं कभी नहीं भूलूंगी,' उसने दुबारा लिखा था। पाकिस्तान में यह ख्याल किया जाता था कि भारत में मुसलमान लड़कियों के ब्याहने के लिए लड़कों की कमी थी, इसीलिए भारतीय मुसलमान घरानों की लड़कियां अपने लिए लड़कों की तलाश में पाकिस्तान के चक्कर काटती रहती थीं।

इस बार अपनी जेठानी की चिट्ठी जब उसने पढ़ी तो बेगम मुजीब को कई साल पुरानी, हंसी-हंसी में कही गई एक बात याद आने लगी—'कुदसिया! तुम्हारी जेबा और मेरे कबीर की जोड़ी कैसी रहेगी?' तब तो ये दोनों बच्चे अभी घुटनों के बल चलते थे। कुदसिया ने अपनी जेठानी की बात हंसकर टाल दी थी।

एक सप्ताह में दूसरी बार उसकी चिट्ठी आई थी। उसकी जेठानी बेहद परेशान थी। घर वाला कई बरसों से बीमार था। लाखों रुपये उसके इलाज पर खर्च हो चुके थे। बहू भाग गई थी। बेटी का शौहर हर चौथे रोज बदतमीजी करता था। घर में हंगामा मचाए रखता। कभी खुशियां लुटाते, हंसते-खेलते वे लोग मिट्टी में मिल गए थे। कोई पूछने वाला नहीं था। भटक रहे थे। ख्वार हो रहे थे। बेगम मुजीब को अपनी जेठानी पर बहुत तरस आ रहा था। कितनी भली औरत थी! हर वक्त खिली-सी रहती। कभी कोई घटिया बात उसके मुंह से नहीं निकलती थी। जब कुदसिया ब्याह कर आई, तो कितनी खातिर किया करती थी उसकी! कोई बात मुंह से निकली कि वह उसे पूरा कर देती। कुदसिया के शौहर की इच्छा थी कि सिविल लाइन की कोठी इन्हें मिल जाए। एक पल भी उसने सोचने में नहीं लगाया, स्वयं शहर वाले घर में रहने के लिए राजी हो गई और अपने देवर के लिए उसने अपना खानी

कर दिया। और फिर कुदसिया के बच्चों से कितना प्यार करती थी, जैसे उनमें उसकी जान हो! किसीका माथा गर्म हो जाता तो दौड़ी हुई आती। दो दिन अगर बच्चों से न मिले तो उसे कल नहीं पड़ती थी। हमेशा उसका घरवाला कहता, 'बीवी! तुम अलग ही क्यों हुई? उन्हें अपने पास रखतीं, अपने परों के नीचे। देवरानी के बग़ैर तो तुम्हारा पल नहीं गुजरता।' दिन में दस बार उसका टेलीफ़ोन आता। 'क्या हो रहा है? क्या पक रहा है? क्या खाया जा रहा है? बच्चे क्या कर रहे हैं? गर्मियों में कहीं उन्हें गर्मी तो नहीं लगती? जाड़ों में उन्हें ठंड तो नहीं लगती?' कोई चीज़ उन्हें अच्छी लगती तो पूरा कोस, रास्ता चलकर या तो खुद आती या किसी नौकर को भिजवाती। और फिर जब उसका देवर अल्लाह को प्यारा हुआ, कैसे माथा पीट-पीटकर वह रोती थी! उसके बाद कितनी देर वह इनके यहां ही टिकी रही। जाहिद को विलायत भेजने की तजवीज़ भी उसीकी थी। जब ख़र्च की बात चली तो नोटों से भरी हुई एक संदूकची उसने ज़ाहिद के सामने ला रखी। यह और बात थी कि बेगम मुजीब को इसकी जरूरत नहीं थी। लेकिन उसने अपनी ओर से कोई क़सर ही नहीं छोड़ी थी।

बेगम मुजीब हमेशा अपने-आपको जेठानी के एहसानों में दबा हुआ महसूस करती थी। जेठानी क्या थी, वह तो उसकी सास थी! सास ही की तरह उसकी ख़ातिर करती थी। सास की तरह ही उसके बच्चों को लाड़ करती थी।

आजकल जो उसकी मानसिक स्थिति थी, बेगम मुजीब सोचती, क्यों न ज़ेबा का विवाह वह कबीर से कर दे? अगर वह महमूद के साथ शादी करने को राज़ी नहीं हो रही थी, अपने ताऊ के बेटे के साथ ब्याह करने में उसे कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। क्या हुआ जो पहले उसका ब्याह हो चुका था! उसकी बीवी उसे छोड़कर भाग गई थी। इसमें उसका क्या कसूर था? और फिर ज़ेबा होगी तो उसके बच्चों को प्यार से संभाल सकेगी। अगर कोई परायी आ गई तो पता नहीं बच्चों का क्या हाल हो? इस तरह सोचते हुए बेगम मुजीब ने अपना इरादा पक्का कर लिया। वह ज़ेबा को कबीर के लिए राज़ी कर लेगी। और अगर उसने इससे भी

इकार कर दिया तो वह इस लड़की को कभी मुंह नहीं लगाएगी। कुछ खाकर मर जाएगी।

कुछ दिनों से जेबा हर शाम अम्मी के कमरे में आती और कितनी-कितनी देर उसके पास बैठी कभी उसका सिर दबाती रहती, कभी उसके बालों में तेल की मालिश करती रहती। बार-बार कहती, "अम्मी, अब आप ठीक हो जाएं। जो आप कहेंगी, मैं मान लूंगी। आपका कहना हरगिज नहीं टालूंगी।"

उस शाम जब जेबा ने इस तरह की बात कही, बेगम मुजीब ने अपनी जेठानी की चिट्ठी उसके सामने ला रखी। जेबा एक नजर चिट्ठी को पढ़ गई।

"तो फिर मेरे लिए क्या हुक्म है ?" जेबा ने अपनी अम्मी से पूछा।

"तुम्हारी ताई के मुझपर बड़े एहसान हैं। मैं इस कर्ज को उतारना चाहती हूं। अगर तुम कबीर के साथ…" अभी यह बात उसके होंठों पर ही थी कि जेबा चौंककर औंधी जा गिरी। एक क्षण-भर में वह ठंडी हो गई। उसके हाथ-पांव मुड़ गए। बेगम मुजीब कितनी देर उसके साथ जूझती रही। आखिर जब जेबा को होश आया तो वह छम-छम आंसू बहाती, अपनी मां के कदमों में गिर गई। "मुझे बेशक कोई और सजा दे दो, मुझसे मेरी जान ले लो, यह जुल्म मुझपर मत ढाओ! मुझे देश-निकाला मत दो!"

बेगम मुजीब बेदम होकर जेबा की ओर देख रही थी।

"मैं महमूद से ब्याह कर लूंगी," जेबा ने बिलखकर कहा। और उसकी आंखों से आंसुओं की झड़ी लग गई।

३४

जेबा ने अपने-आपको अपने कमरे में बंद कर लिया। सारी शाम उसके अविरत आंसू बहते रहे। राजीव की चिट्ठियों से उसकी सहूरतों

भरी हुई थी। एक-एक चिट्ठी निकालकर पढ़ती। उसके दिल में हूक-सी उठती। एक-एक चिट्ठी को पढ़ती और सामने अंगीठी में उसे जलाती जाती। कुछ देर के बाद उसकी मुहब्बत की हसीन दास्तान एक मुट्ठी भर ख़ाक़ होकर रह गई। एकसाथ जीने और मरने के सारे इक़रार, सारे सपने प्यार के एक नये सफ़र के, तमाम गीत जो अछूते पड़े थे, अध-खिली कलियों की तरह शूलों से विंध गए, कुचले गए। धूल में मिल गए।

फिर राजीव की तसवीरें एक-एक करके ज़ेवा ने अपने एलबम में से निकालनी शुरू कर दी। हर तसवीर को देखती। जी भरकर उसे प्यार करती। सीने से लगाती और फिर सामने अंगीठी में फेंक देती। आख़िरी तसवीर राजीव की सबसे ताज़ा थी। अभी कल ही तो उसने भेजी थी। ज़ेवा ने जी भरकर उसे देखा तक नहीं था। कितनी देर वह तसवीर ज़ेवा के होंठों के साथ चिपकी रही। कितनी देर जैसे उसकी छाती से ही अलग न हो रही हो। जैसे कोई बादल फटता है, इस तरह ज़ेवा के आंसुओं की बाढ़ बह रही थी। उसने अपने सीने से नोचकर उस तसवीर को भी अंगीठी में फेंक दिया। लेकिन वह तसवीर जली नहीं। लाल-पीली दहक रही अंगीठी के एक किनारे पर जा गिरी। राजीव विटर-विटर ज़ेवा की ओर देख रहा था। एक प्रिय मुसकान मुसकरा रहा था। अंगीठी के दहकते अंगारों के पीछे, एक सुन्दर स्वप्न की तरह सुरक्षित पड़ा था। ज़ेवा की आंखों के सामने। ज़ेवा की पहुंच से दूर। जैसे कोई अग्नि-परीक्षा से निकलकर अपनी मुहब्बत का सबूत दे रहा हो।

और फिर ज़ेवा दीवानों की तरह उस तसवीर से मुख़ातिब होकर आपसे-आप बोलने लगी :

'राजीव, मेरी जान, आज की शाम अपने कमरे में यह अंगीठी मैंने नहीं सुलगाई, यह तो चिता है हमारी पाक मुहब्बत की। तुम्हारी यह ज़िद कि तुम इसे भस्म नहीं होने दोगे, एक ख़्वाब है। ज़िन्दगी की असलियत कठोर होती है। समाज के बंधन बड़े संगीन होते हैं।

मुहब्बत एक चीज़ है, मज़हब एक चीज़। मैंने बेशक़ तुम्हें मुहब्बत की है, लेकिन मैं एक मुसलमान घर में पैदा हुई हूं। मुहब्बत मैंने अपनी

मर्ज़ी से की, लेकिन मेरी पैदाइश में किसी और ताकत का दख़ल था। उस ताकत के सामने मैंने आज घुटने टेक दिए हैं।

हम हिन्दुस्तानी नौजवान लड़के-लड़कियां, हिन्दू क्या और मुसलमान क्या, अपनी विरासत की बद्दुआ के मारे हुए हैं। हमें विरसे में अलहदगी मिली है, दूरी मिली है। वैर मिला है। मुसलमानों की नज़र में कुरान नज़ल हुआ था। अल्लाह की दी हुई नेमत को वैसे-का-वैसा संभालकर रखना होगा। कुरान में जो कुछ कहा गया है, वह हर्फ़-आख़िर है। चौदह सौ साल इस्लाम के इतिहास में, उसमें कोई तब्दीली नहीं हो सकी। इधर हिन्दू, कई सौ बरस मुसलमानों के पड़ोस में रहकर, कई सौ बरस उनकी गुलामी करने के बाद आज भी उनके छूने से भ्रष्ट हो जाता है। उसके घड़े में से पानी नहीं पी सकता।

सूफ़ी अपना सिर पीटकर रह गए। भक्त भगवान का वास्ता दे-देकर चले गए। हिन्दू के लोटे में टोंटी नहीं लग सकी। मुसलमान अपने कूंजे को नहीं छोड़ सका।

महात्मा गांधी ने 'ईश्वर अल्लाह तेरा नाम' कहकर इस मसले को सुलझाने की कोशिश की। गांधीजी ने सोचा, हिन्दू और मुसलमान दोनों में, अंग्रेज की गुलामी से छुटकारा पाने की एक-सी लगन, उनको एक लड़ी में पिरो देगी। आज़ादी आई, लेकिन हिन्दू-मुसलमान की भीतरी खाई वैसी-की-वैसी बनी रही, बल्कि देश के बंटवारे की शक्ल में, पाकिस्तान की शक्ल में और भी गहरी हो गई। गांधीजी ने सोचा, भारत के हिन्दू-मुसलमानों को वह एक मुट्ठी कर देंगे। यह हो सकता था, अगर देश के निर्माण में, देश के विकास में दोनों कंधे-से-कंधा मिलाकर जुट जाते। यह मुमकिन था, अगर हिन्दू और मुसलमान अपने सपने एक-से कर लेते।

लेकिन ऐसा नहीं हो सका। इससे पहले कि देश के बंटवारे से गांधीजी के सीने के घाव भर पाते, बापू के सीने में तीन गोलियां दाग कर उन्हें ख़त्म कर दिया गया।

राजीव, तुम्हें मालूम है कि मेरे अब्बा गांधीजी के दीवानों में से थे। लेकिन नमाज़-रोज़ा के वे हमेशा पक्के रहे। गांधीजी भी यही चाहते थे। ज़रूरत इस बात की है कि आदमी अपने धार्मिक विश्वासों को राजनीति में

अलग करके रखे। लेकिन हर किसीके लिए ऐसा कर पाना आसान नहीं होता। मेरे अब्बा यह कर पाए, लेकिन अम्मी से यह नहीं हो सकेगा। और मेरी अम्मी, मेरे अब्बा की निशानी हैं।

आज कई साल हो चुके हैं, वे मेरी बहन सीमा को माफ़ नहीं कर पाईं। अभी तक उन्होंने उसे मुंह नहीं लगाया। तुम्हारे साथ मुहब्बत करके मैंने अम्मी को बेहद तकलीफ़ पहुंचाई है। अब उन्हें मैं और परेशान नहीं कर सकती। मैंने सोचा था, इतने बरस आज़ाद भारत में रह चुकने के बाद एक मुसलमान बेगम बदल गई होगी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। और मैंने अपनी हार मान ली है। अब मैं और अपने-आपको ग़लतफ़हमी में नहीं रख सकती। अब और मैं तुम्हें धोखा नहीं दे सकती।

अब तुम जल जाओ, मेरी जान! कितनी देर इन दहकते अंगारों का सेंक सहते रहोगे। अब अपने-आपको शोलों के हवाले कर दो। जलने में भी एक मज़ा है। आग के अलाव में कूद पड़ना और फिर लपटों की लाल-पीली-नीली लौ में गुम हो जाना। तुम और यूं बिटर-बिटर मेरी तरफ़ मत देखो। और यूं मुझे शर्मिन्दा मत करो। मैं गुनहगार हूं लेकिन मैं मजबूर हूं। मैं अपनी मां को तड़पते नहीं देख सकती। मैं तुम्हें मुहब्बत करती हूं। मैं तुम्हें मुहब्बत करती रहूंगी। आख़िर कितने लोगों की मुहब्बत इस दुनिया में परवान चढ़ती है? प्यार की एक और हार सही। मुहब्बत की एक और मौत सही।

तुम जल जाओ। तुम जलते क्यों नहीं? तुम्हारा मतलब है, आग बुझ जाएगी, शोले ठंडे पड़ जाएंगे, और तुम वैसे-के-वैसे अंगीठी के एक किनारे से मुझे एकटक देखते रहोगे? यह कैसे हो सकता है? आग में से भी कभी कोई निकल सका है? आंच से भी कभी कोई बच सका है?

अब तुम जल जाओ, मेरी जान! यूं मंद-मंद मुसकराते हुए मेरी ओर मत देखो। मैं तो मर चुकी हूं। मरे हुए को मारना ठीक नहीं। हमारी मुहब्बत की कहानी ख़त्म हो चुकी है। मैं अपनी मां के हाथ से ज़हर का प्याला पी चुकी हूं। अपनी मां के हाथों से अपने अरमानों का गला घोंट चुकी हूं।

मैं नहीं कहती कि कोई मुहब्बत परवान नहीं चढ़ती। क़िस्मत वाले

होते हैं, जो प्यार करते हैं और फिर प्यार को पा भी लेते हैं। क्या ख़बर, किस जन्म में वे लोग एक-दूसरे के लिए तड़प रहे थे ! किस जन्म में एक-दूसरे का पीछा कर रहे थे ! किस जन्म में एक-दूसरे के इन्तज़ार में थे !

हम भी इन्तज़ार कर लेंगे उस दिन का, जब हम देश के लोग, पहले इन्सान होंगे फिर हिन्दू या मुसलमान। जब हिन्दू पानी से मुसलमान पानी अलग नहीं होगा। जब मुसलमान की नज़र में हर ग़ैर-मुस्लिम काफ़िर नहीं होगा। जब किसी मुसलमान की परछाईं से कोई हिन्दू भ्रष्ट नहीं हुआ करेगा।

वह दिन जब हम भारतीय पैदा होंगे, भारतीय होकर परवान चढ़ेंगे। वह दिन जब हम भारतीय होकर जिएँगे, भारतीय होकर मरेंगे। जब हम इस्लाम की असलियत को पहचानेंगे। जब हम हिन्दू धर्म की रवादारी को क़बूल करेंगे।'

अचानक ज़ेबा को लगा, जैसे अँगीठी के शोलों में से झाँक रही राजीव की मुसकरा रही तसवीर खिलखिलाकर हँस दी हो। एक लमे-लमे में जैसे ख़ुशियाँ लुटा रही हो। चारों ओर जैसे चमेली की कलियाँ खिल गई हों।

और फिर आग के शोले मद्धिम पड़ने लगे। बुझने लगे। हारे-हारे-से दिखने लगे।

बाहर, शाम की परछाइयाँ कब की ढल चुकी थीं। रात हो रही थी। क़दम-क़दम अँधेरा बढ़ता जा रहा था। पल-पल रात गहरी होती जा रही थी।

इतने में भोंपू की आवाज़ सुनाई देने लगी। लंबी और लंबी होती जा रही थी। भयानक और भयानक। जैसे सीने को चीरती हुई घुमती चली जा रही हो।

और फिर कालू ने आकर उसका दरवाज़ा खटखटाया, "ज़ेबा बीबी ! पाकिस्तान ने हिन्दुस्तान पर हमला कर दिया है। पाकिस्तान के हवाई जहाज़ हिन्दुस्तान के शहरों पर बम गिरा रहे हैं। अपने शहर में ब्लैक-आउट हो गया है।"

"मेरी जिन्दगी में तो पहले ही ब्लैक-आउट हो चुका है।" अचानक ज़ेबा के मुंह से निकला। उधर कालू एक-एक करके घर की सारी बत्तियां बुझा रहा था।

घोर अंधेरा। चारों ओर मौत जैसी ख़ामोशी। बेगम मुजीब, ज़ाहिद, ज़ेबा, सारे अपने-अपने कमरों में से निकलकर गैलरी में आ गए थे। टुकुर-टुकुर एक-दूसरे के मुंह की ओर देख रहे थे। सहमे-सहमे से। परेशान-परेशान नज़रें। किसीको कुछ नहीं सूझ रहा था कि क्या करे, क्या न करे!

इतने में कालू ने रेडियो चालू कर दिया। पाकिस्तान की ओर से हिन्दुस्तान के हवाई अड्डों पर अचानक आक्रमण के समाचार सुनाई पड़ रहे थे। लोगों को हवाई हमले से बचाव के लिए चौकस किया जा रहा था। मेरठ को खास तौर पर ख़तरा था। एक तो यहां पर महत्त्वपूर्ण छावनी थी, दूसरे दिल्ली से खदेड़े हुए दुश्मन के हवाई जहाज़ यहां बम बरसा सकते थे।

"यह भी क्या मालूम कि पाकिस्तानी हवाबाज़ बम तो दिल्ली पर फेंके और जा गिरे वह मेरठ पर!" ज़ाहिद ने व्यंग्य किया।

"दुश्मन का हमला!" ज़ेबा ने घबराकर कहा। शहर का भोंपू फिर बजने लगा था।

"दुश्मन!" बेगम मुजीब को लगा, जैसे कोई बम उसके सीने में आ लगा हो। इतने में ज़ाहिद अपनी मां और बहन को अपनी बांहों में लपेटे कोठी के बाहर लॉन में ले आया। लॉन के एक ओर इमली के पेड़ के नीचे वे जा खड़े हुए। म्युनिसिपल कमेटी का भोंपू एक सांस बजता चला जा रहा था और फिर दूर तड़-तड़ एंटी-एयरक्रैफ्ट गोलियों के चलने की आवाज़ आने लगी।

"हमला है दुश्मन का।"

"मुकाबला हो रहा है दुश्मन के साथ।"

"हम दुश्मन के दांत खट्टे कर देंगे।" बहन-भाई आप-से-आप बोले

जा रहे थे।

बेगम मुजीब की छाती पर जैसे गोलिया बरस रही हों। उसका जेठ शेख़ शब्बीर दुश्मन था। उसका देवर जुबैर दुश्मन था। इस्मत, उसकी ननद दुश्मन थी। इरफान, इस्मत का घरवाला, दुश्मन था जिसका रिश्ता उसने ख़ुद करवाया था। कबीर दुश्मन था, नूरी दुश्मन थी, जिनको बेगम मुजीब ने गोदी में खिलाया था। उसकी जेठानी दुश्मन थी, हमेशा इसे बहू कहकर बुलाती थी। अभी तो कल उसकी चिट्ठी आई थी।

"यहीं इस इमली के पेड के नीचे हम खाई खोद लेंगे।" ज़ाहिद कह रहा था, "जब हमला हुआ, यहां आकर छुप जाया करेंगे।"

जेबा सामने गुलाब की क्यारी की ओर देख रही थी। काले गुलाब की अधखिली कली जैसे गर्दन उठाकर उसकी ओर झांक रही थी। जेबा ने उसकी ओर पीठ फेर ली। भोंपू लगातार बज रहा था।

"दुश्मन का हवाई जहाज गिरा दिया गया है।" कालू कोठी की छत पर से चिल्ला रहा था। पता नहीं कब से वह छत पर चढ़कर तमाशा देख रहा था।

और फिर भोंपू की आवाज़ बदल गई। कुछ देर के बाद भोंपू बोलना बंद हो गया। अब आकाश साफ था।

"नामालूम दुश्मन ने कितना नुकसान किया होगा! कितने हवाई अड्डे बरबाद किए होंगे! कितने हवाई जहाज नष्ट किए होंगे!"

"हमने भी कोई कच्ची गोलियां नहीं खेलीं। तुम्हारा क्या मतलब है कि हम दुश्मन के लिए तैयार नहीं होंगे? हमारे लड़ाकू हवाई जहाज पाकिस्तान के शहरों की चटनी पीसकर रख देंगे।"

"कल हमारी फौजें लाहौर में जा घुसेंगी।" ज़ाहिद दांत पीसकर कह रहा था।

बेगम मुजीब ने सुना और उसके सोते सूख गए। इस्मत लाहौर में थी। जुबैर लाहौर में था। कबीर लाहौर में था, नूरी लाहौर में थी।

"दुश्मन के हम छक्के छुड़ा देंगे।" जेबा के दांत जैसे उसके होंठों में खुभ रहे हों।

बेगम मुजीब सोचती, इस्मत का शौहर इरफान उनका दुश्मन था!

अव तो वह फ़ौज में ब्रिगेडियर हो गया था। हो सकता है, उसीकी कमान में पाकिस्तान की फ़ौजें भारत पर हमला कर रही हों। उसके छोड़े हुए गोले इस धरती को लहू-लुहान कर रहे हों। उसके वरसाए हुए वम हमारे शहरों को तहस-नहस कर रहे हों। वह मंसूवे वना रहा होगा, हमारे शहरों को लूटने के, हमारे फ़ौजी ठिकानों को मटियामेट करने के।

अगले दिन फिर हवाई हमला। उससे अगले दिन एक और।

उस शाम जव भोंपू वजना वंद हुआ और वे कोठी के अंदर गए तव टेलीफ़ोन वज रहा था। दूसरी ओर राजीव था। हमेशा की तरह आज शाम ज़ेवा तेज-तेज़ क़दम टेलीफ़ोन सुनने नहीं गई। यह देखकर ज़ाहिद टेलीफ़ोन सुनने लगा। ज़ेवा वैसी-की-वैसी वैठी अम्मी के साथ वातें कर रही थी। कुछ देर के वाद उसे यूं लगा, जैसे उसका दिल वैठा जा रहा हो। उसके हाथ-पांव में जैसे सुइयां चुभ रही हों और फिर वह उठकर अपने कमरे में चली गई।

राजीव और ज़ाहिद कितनी देर टेलीफ़ोन पर वातें करते रहे। राजीव ने उनका कुशल-मंगल पूछने के लिए टेलीफ़ोन किया था। वातों-वातों में राजीव ने वताया कि वे लोग लड़ाई के मोर्चे पर घायलों के इलाज के लिए डाक्टर, वालंटियरों का एक जत्था वना रहे थे। पंजाव और कश्मीर की सीमा पर डाक्टरों की आवश्यकता थी। ज़ाहिद ने सुना और वह भी तैयार हो गया। इसके वारे में राजीव उसे और विस्तार से वताता रहा। अलीगढ़ के मेडिकल कॉलेज के कुछ प्रोफेसर और कुछ लड़के इस टुकड़ी में शामिल हो रहे थे।

ज़ेवा ने सुना और कहने लगी, "मैं भी चलूंगी। क्या मैं नर्स नहीं वन सकती?"

वेगम मुजीव सुन-सुनकर हैरान हो रही थी। यह सव उन सवके साथ लड़ेंगे। एक-दूसरे पर गोलियां चलाएंगे। एक दूसरे को मारेंगे। कोई उसका वेटा था। कोई उसका भतीजा था। भाई भाइयों को काटेंगे। वहनें अपनी वहनों की वेहुरमती देखकर खुश होंगी, पड़ोसी पड़ोसियों की लूटमार करेंगे।

यह हो क्या रहा था? दुनिया किधर जा रही थी? क़यामत शायद

इसीको कहते हैं। यह थी प्रलय जिसके बारे में लोग कहानियां किया करते हैं। बाप बेटे को नहीं पहचानेगा। भाई बहनों को नहीं पहचानेंगे। यह सब कुछ सोचती हुई बेगम मुजीब, कानों को हाथ लगाने लगी। तौबा-तौबा करने लगी। उसका जी चाहता, धरती जगह दे और वह उसमें समा जाए। अब और जी सकना उसके लिए मुमकिन नहीं होगा।

अगले दिन सचमुच भारतीय फ़ौजों ने लाहौर पर चढ़ाई कर दी। इधर प्रधानमंत्री ने लोकसभा में नये आक्रमण की सूचना दी, उधर खबर आई, भारतीय फ़ौजें लाहौर में घुस गई थीं। शालीमार बाग़ तक पहुंच गई थीं। भारतीय फौज की एक टुकड़ी बागबानपुरा जा पहुंची थी। बड़ी मुश्किल से उन्हें लाहौर के बाहर रोका गया। लाहौर का हवाई अड्डा भारतीय तोपों की चपेट में था।

"अब लाहौर की ईंट के साथ ईंट बजाई जाएगी।"

'लाहौर शहर खाली हो रहा है। लोगों के काफिले लाहौर छोड़कर जा रहे हैं।"

"लाहौर पर हमारा कब्जा हुआ तो पाकिस्तान की कमर टूटकर रह जाएगी।"

"लाहौर तो पाकिस्तान की नाक है।"

"अब पाकिस्तानी कभी भारत को नहीं ललकारेंगे।"

"इस बार हम दुश्मन के दांत खट्टे करके रहेंगे।"

"वह मार मारेंगे कि हमेशा-हमेशा उन्हें याद रहे।"

"अमरीका के दिए हुए पैटन टैंकों का हमारे जवान इस तरह निशाना बनाते हैं, जैसे वे खिलौने हों।"

' कहते हैं, पाकिस्तानी चालक पैटन टैंकों को खाली छोड़कर भाग जाते हैं। उनको यह खतरा लगा रहता है कि कहीं टैंक में आग गई तो वे अंदर ही जलकर भस्म हो जाएंगे। मुसलमान अगर जल जाए तो क़यामत वाले दिन उसे उठाया कैसे जाएगा?"

बेगम मुजीब यह सब सुन-सुनकर दीवानी हो रही थी, कानों में उंगलियां दे लेती। क्या तो उसकी बेटी, और क्या उसका बेटा, क्या तो उसके मिलने-जुलने वाले, और क्या अड़ोसी-पड़ोसी, हर कोई इस तरह

की बातें करता था। समाचारपत्र दुश्मन की कहानियों से भरे होते थे। रेडियो पर पाकिस्तान को बुरा-भला कहा जाता। दुश्मन का मज़ाक उड़ाया जाता। जगह-जगह दुश्मन की हार की ख़बरें सुनाई जातीं। इतना ज़हर फैलाया जा रहा था, इतनी गंदगी उछाली जा रही थी, बेगम मुजीब सोचती, इसकी बदबू से तो उनकी अपनी नाक सड़ांध से भर जाएगी। नफ़रत के इस मलबे में वे लोग ख़ुद दबकर रह जाएंगे।

३६

लाहौर पर खुल्लम-खुल्ला आक्रमण देखकर पाकिस्तान ने लड़ाई का बाक़ायदा ऐलान कर दिया। उधर पाकिस्तान के प्रेसिडेंट अय्यूब ने लड़ाई की घोषणा की, इधर भारत में कई लोगों को हिरासत में ले लिया गया। इनमें महमूद भी था। उनके घर पर अचानक छापा मारा गया था और पुलिस महमूद को पकड़कर ले गई। यह भी सुनने में आया था कि महमूद को गिरफ़्तार करने के लिए आई पुलिस टुकड़ी ने उनके घर की तलाशी ली थी और ढेर सारा असलह बरामद किया था। इसमें हथ-गोले थे, बारूद था, देसी रिवाल्वर थे।

"यह सब झूठ है।" उस दिन दोपहर ढलते समय रुख़साना ज़ाहिद को बता रही थी। वैसी-की-वैसी सजी हुई जैसे अभी ब्यूटीशियन के यहां से होकर आ रही हो। तंग पायचों वाली शलवार, घुटने-घुटने तक लंबी कमीज़, सिर पर जार्जट का दुपट्टा, पांव में ज़री का पंजाबी जूता। उसने गोल कमरे में क़दम रखा, तो सारा घर जैसे महक उठा हो।

"पुलिस ने कब छापा मारा?" ज़ाहिद उसके भाई महमूद की गिरफ़्तारी को सुनकर परेशान था।

"सुबह-सवेरे आए। अभी हम सोकर भी नहीं उठे थे।" रुख़साना ने साधारण तौर पर कहा।

"बहुत बुरी बात है।" ज़ाहिद ने अपने होंठों में कहा।

"इसमें कौन-सी बुराई है? महमूद के ढंग ही कुछ ऐसे थे। कई बार हम लोगों ने उसे समझाया है, लेकिन उसकी खोपड़ी जैसे उल्टी हो।"

"इसका मतलब यह है कि अब वह जेल में बंद रहेगा?" जाहिद को जैसे रुखसाना की बेरुखी पर विश्वास न हो रहा हो।

"इस तरह के लोग हिरासत में आराम से रहते हैं।"

"फिर भी जेल आखिर जेल है।"

"कोई नहीं, घर से बिस्तर चला गया है। दोनों वक्त खाना पहुंचा दिया जाता है। पढ़ने के लिए किताबें वह ले गया है।"

जाहिद हैरान था, किस लापरवाही से रुखसाना इस सब कुछ का जिक्र कर रही थी; जैसे कोई गर्मियों में पहाड़ पर गया हो।

"अब्बा कहते हैं, अच्छा है, जेल में वह बुरी संगत से बचा रहेगा।" और रुखसाना आगे बढ़कर, नौकर की लाकर रखी हुई चाय बनाने लगी।

"यह भी कोई बात हुई।" जाहिद जैसे कुछ समझ न पा रहा हो।

"इसमें परेशान होने की क्या बात है जाहिद, मेरी जान···"

और फिर कमरे में जैसे एकदम खामोशी छा गई। रुखसाना पहली बार जाहिद से इस तरह मुखातिब हुई थी। एक क्षण-भर के लिए ऐसे लगा, जैसे चारों ओर कलियों के गुच्छे-के-गुच्छे चिटक पड़े हों। एक चुंधिया देने वाली रोशनी जैसे कमरे में कौंध गई हो। एक खुशबू की लपट जैसे उसे मदहोश कर रही हो। उसकी आखें एक नशे-नशे में मुंद गई हों।

अगले क्षण रुखसाना के होंठ जाहिद के होंठों पर थे। उसके साथ दीवान पर बैठी उसने उसे अपने बाहुपाश में ले लिया था और दीवानों की तरह उसे लाड़ किए जा रही थी। बार-बार उसके बालों में उंगलियां फेरती और उसे चूमने लगती, जैसे उसका जी न भर रहा हो। उसे चूम-चूमकर वह बेहाल हो रही थी।

कितनी देर वे गुत्थमगुत्था हुए दीवान पर पड़े रहे। रुखसाना पर जैसे एक वहशत-सी छाई हो। जाहिद को अपनी बाहों में लपेटकर चूम जाती। चूम-चूमकर बेहाल हो रही थी। आखिर जब उसे होश आया

मामने तिपाई पर पड़ी चाय ठंडी हो चुकी थी।

"महमूद का इस तरह गिरफ़्तार···" जाहिद अभी तक महमूद के वारे में परेशान था।

"जाहिद, मेरी जान, इसमें परेशान होने की कोई वात नहीं है। मेरे अव्वा कहते हैं, जव लड़के की मर्ज़ी होगी, हम उसे छुड़ा लेंगे।"

"यह कैसे मुमकिन हो सकता है?"

"सव कुछ मुमकिन होता है। कल सरकार को क्या मुसलमानों की वोटों की ज़रूरत नहीं होगी? और हमारे इलाके की सव वोटें मेरे अव्वा की मुट्ठी में हैं।"

"पहले भी महमूद एक वार क़ैद काट चुका है।" जाहिद को जेवा ने यह वता रखा था।

"हां, उसमें भी मेरे अव्वा की मर्ज़ी शामिल थी। वह सोचते थे, लड़के को अक़्ल आ जाएगी लेकिन महमूद तो विलकुल विगड़ चुका है। वुरी संगत में पड़ चुका है। दिन-भर भारत के मुसलमानों का रोना रोता है।"

"लेकिन उसकी वात में कोई वज़न तो है।" जाहिद यह देखना चाहता था कि रुख़साना कितने पानी में है।

"भारतीय मुसलमानों का मसला उनकी ग़रीवी है। उनका आर्थिक पिछड़ापन है। और कुछ भी नहीं। उनको नौकरियां दो। उन्हें व्यापार और दस्तकारी में लगाओ। कोई पाकिस्तान की ओर आंख उठाकर नहीं देखेगा। पाकिस्तान का तो वस नाम ही है। मैंने खुद वहां जाकर देखा है। एक हुजरे की तरह वह देश अंदर-वाहर से ख़ाली है।"

"जव तक हिन्दू अपना हिन्दूपन नहीं छोड़ते, मुसलमानों को कोई-न-कोई डर खाता रहेगा। इस देश की निजात सेक्यूलरिज्म में है।" जाहिद की राय थी।

"मुश्किल यह है कि इस्लाम के हमारे नज़रिये में सेक्यूलरिज्म की कोई जगह नहीं।"

"और तो और, उर्दू में सेक्यूलरिज्म का तर्जुमा 'लादीनीआत' या 'ग़ैर-मज़हवियत' किया जाता है, जो विलकुल ग़लत है।" जाहिद हंस

"असल में सेक्यूलरिज़म का मतलब है, मज़हबी जिन्दगी को दुनियावी जिन्दगी से अलग रखा जाए। लेकिन अकसर मुसलमानों को यू लगता है कि इस्लाम इसकी इजाज़त नहीं देता।"

जैसे रुख़साना ज़ाहिद के दिल की बात कह रही हो। वह इस लड़की की सूझबूझ और इसके स्वस्थ दृष्टिकोण पर चकित हो गया, गद्‌गद हो रहा था।

फिर रुख़साना बावर्चीख़ाने में गई और ताज़ी चाय बनाकर ले आई। और वे गरम-गरम चाय पीने लगे।

"मैं जानबूझकर आज इस वक़्त आई हूं।" रुख़साना ने चाय का घूंट भरा और सामने सोफ़े पर बैठे ज़ाहिद को बताने लगी, "मैं हेयर-ड्रेसर के यहां बैठी हुई थी कि मैंने शीशे में से देखा, अम्मीजान रिक्शे में बाज़ार की ओर जा रही थीं। जेबा तो इस वक़्त स्कूल होती है।"

"कोई ख़ास बात ?" ज़ाहिद रुख़साना की ओर देख रहा था। उसका यौवन जैसे ठाठें मार रहा समुद्र हो। रसोई से चाय बनाने गई तो वह अपने नखशिख को सवार आई हो। सजने की शौकीन। उसकी सुराहीदार गोरी गर्दन पर झुके हुए उसके जूड़े में से उसके बालों की एक लट झांक रही थी, जैसे चुम्बन के लिए बेचैन हो रही हो। उसकी हर नज़र ज़ाहिद के कलेजे में जाकर यूं लगती थी, जैसे जिन्दगी में पहले उसने कभी महसूस नहीं किया था।

रुख़साना क्षण-भर के लिए रुकी और फिर जैसे रटे-रटाए बोल उसके होंठों से फिसल गए, "मुझे यह पूछना है कि लन्दन में आपका किसीके साथ कोई कौल-इकरार तो नहीं हुआ ?"

ज़ाहिद ने सुना और उठकर रुख़साना को अपनी छाती से लगा लिया। फिर होंठों पर होंठ। फिर एक-दूसरे के बाहुपाश में। फिर जैसे एक तूफ़ान उमड़ आया हो। ज़ाहिद प्यार करके हटता और रुख़साना उसे चूमना शुरू कर देती। एक के बाद दूसरा।

यू वे बेहाल हो रहे थे कि बाहर एक रिक्शा आन रुकी। ज़ाहिद की अम्मीजान थीं। रुख़साना और ज़ाहिद संभलकर एक-दूसरे के आमने-

सामने सोफ़े पर बैठे चाय पीने लगे।

बेगम मुजीब सीधी गोल कमरे में आई। रुख़साना और ज़ाहिद को बैठे चाय पीते देखकर कहने लगी, "बेटी, मैं तो आपके यहां गई थी। महमूद का सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ।"

"इसमें दुःख की क्या बात है अम्मीजान ! कुछ दिन का आराम उसकी सेहत के लिए अच्छा होगा। लीजिए, आप भी चाय पीजिए।"

और रुख़साना अम्मी के लिए चाय बनाने लगी, जैसे वह घर उसका अपना हो।

३७

चाय पीते हुए रुख़साना बार-बार कह रही थी, " 'कश्मीर' भारत का अटूट हिस्सा है। यह बात तो भारतीय मुस्लिम लीग भी मानती है। 'ज़मात-उल-उलमाय-हिन्द' वाले भी मानते हैं। शेख़ अब्दुल्ला के गद्दी से हटाए जाने और हिरासत में लिए जाने के बाद भी मुस्लिम-लीग का प्रेजिडेंट मुहम्मद इसमाइल अपने इस विश्वास पर क़ायम है।"

"मुझे तो लगता है कि कश्मीर के लिए लड़ते हुए हमारे पड़ोसी कहीं अपना पाकिस्तान ही न गंवा बैठें।" बेगम मुजीब चिन्तित थी।

"कम-से-कम पूर्वी पाकिस्तान तो उनके हाथ से जाता रहेगा।" ज़ाहिद कहने लगा।

"अगर भारत चाहे तो दो दिन में पूर्वी पाकिस्तान को पश्चिमी पाकिस्तान से काटकर रख सकता है।" रुख़साना बोली।

यूं बातें हो रही थीं। लड़ाई की कोई ताज़ा ख़बर नहीं थी। फिर रुख़साना अपने घर को चल दी। कालू उसके लिए सड़क से एक रिक्शा पकड़ लाया था।

उधर रुख़साना गई, इधर ज़ेबा की रिक्शा आकर रुकी। गोल कमरे में बैठी बेगम मुजीब हैरानी में बार-बार हाथ मल रही थी। "यह सुनकर

कि महमूद पकड़ा गया है, मैं खास तौर पर उनके यहा अफ़सोस करने गई।" वह अपने बेटे-बेटी को बता रही थी, "उनके घर में तो जैसे किसी-को परवाह ही न हो।"

"रुखसाना को आपने नही देखा। हेयर-ड्रेसर के यहा से होकर इधर आई थी।" जाहिद कह रहा था।

"यह तो अच्छा ही हुआ कि उसे शुरू मे पकड़ लिया गया, नही तो क्या पता क्या गुल खिलाता।" ज़ेबा ने नाक चढ़ाकर कहा।

"रुखसाना कह रही थी कि उसके अब्बा ने जानबूझकर उसे गिरफ्तार करवाया है ताकि हिरासत में अपनी हरकत से बचा रहे।"

"अम्मी ! आप जानती नही," ज़ेबा बेहद परेशान थी, "महमूद तो कट्टर से कट्टर मुसलमानों से भी चार कदम आगे है।" ज़ेबा का दिल जैसे लहू-लुहान हो। किस तरह का लड़का उसकी अम्मी उसके माथे मढ़ रही थी। "इधर बेशक कुछ लोग मानते हैं कि कश्मीर पर पाकिस्तान का हक है, कश्मीर उनको मिलना चाहिए।"

"यह नही सोचते कि कश्मीर एक ऐसी रियासत है जहा मुसलमान ज्यादा गिनती मे है। अगर कश्मीर पाकिस्तान मे मिल गया तो हिन्दुस्तान मुसलमानो के जैसे हाथ कट जाएगे।" बेगम मुजीब कहने लगी।

"अम्मी, महमूद तो जमाते-इस्लामी के मौलाना सदरुद्दीन और मसूद-उल-नदवी का चेला है। वह तो कहता है कि भारतीय मुसलमानों को जिहाद करके हिन्दुस्तान मे 'हुकूमते इलाहिया' कायम करनी चाहिए। इसके लिए अगर जरूरत पड़े तो जान पर भी खेल जाना चाहिए।"

"यही नही, रुखसाना मुझे बता रही थी, वह तो कई ग़लत किस्म की जमातो के साथ जुड़ा हुआ है। कही तोड़-फोड़, कही दगा-फ़साद, कही फिरकावाराना बदमज़गी, इस तरह की बेहूदगी मे आम तौर पर उसका हाथ होता है।"

सुनते-सुनते बेगम मुजीब उठ खड़ी हुई। खबरो का वक्त हो रहा था। उसने रेडियो लगाया। लड़ाई वैसी-की-वैसी जोरों पर थी। दुश्मन के टैंकों को बरबाद किया जा रहा था। शत्रु के फौजी-ठिकानों पर भारतीय हवाबाज़ बम बरसा रहे थे। दुश्मन के कई हमलो को नाकाम कर दिया

गया था।

दुश्मन ! दुश्मन ! ! दुश्मन ! ! ! बेगम मुजीब कान लपेटकर बाहर चली गई। इतना कुछ हो चुका था। ढेर-सा पानी पुल के नीचे से गुज़र चुका था। लेकिन पाकिस्तान को दुश्मन कहते हुए वह किसीको सुन नहीं सकती थी। 'भाई बेहूदा हो सकता है, भाई बेसमझ हो सकता है, भाई बदचलन हो सकता है, लेकिन भाई दुश्मन तो कभी नहीं होता।' वह अपने-आपसे कहती।

एक तो पाकिस्तान को 'दुश्मन' कहते हुए किसीको नहीं सुन सकती थी। दूसरे, महमूद की निंदा करते हुए किसीको सुनकर बेगम मुजीब के मुंह का ज़ायका बिगड़ जाता था। उसे लगता, जैसे हर किसीकी यह साज़िश हो। भले-चंगे, खाते-पीते, घर के लड़के को बुरा-बुरा कहकर लोग बुरा बना रहे थे। वह तो उसके आंगन में सेहरा बांधकर आएगा, मन-ही-मन उसने पक्का इरादा किया हुआ था।

खबरें ख़त्म हुई तो ज़ेबा किसी काम से रसोई में गई। एक ख़ुशबू-सी उसे महसूस हुई। फिर उसकी नज़र एक कोने में पड़े मसले हुए टिशु-पेपर पर पड़ी। उसीकी ख़ुशबू थी, लेकिन टिशु-पेपर का रसोई में क्या काम ? ज़ेबा ने झुककर देखा, टिशु-पेपर से किसीने अपने होंठ साफ़ किए थे। लिपस्टिक के निशान थे। यह तो रुख़साना की लिपस्टिक का रंग था।

'रुख़साना रसोई में क्या कर रही थी ?' फिर ज़ेबा आप-ही-आप मुसकराने लगी। उसने टिशु-पेपर को उठाकर देखा, उसीके सैंट की ख़ुशबू थी। ज़ेबा को बेहद लाड़ आया। दीवानों की तरह उसने रुख़साना की लिपस्टिक के रंगे टिशु-पेपर को उठाकर चूम लिया।

अपने कमरे में लेटी ज़ेबा कितनी देर एक नशे-नशे में डूबी रही। रुख़साना कितनी किस्मत वाली थी ! ज़ाहिद कितना ख़ुशक़िस्मत था ! किसीके मन की मुराद का पूरा हो जाना ! किसीको किसीकी मंज़िल का मिल जाना—हाय, उनकी दुनिया कितनी सुरीली होगी ! कैसे उनके दिन होंगे; जैसे रिमझिम फुहार से कोई झूला झूल रहा हो ! ऊपर और ऊपर कोई उड़ता चला जाए ! किसीकी ज़ुल्फ़ें खुल-खुल जाएं ! किसीकी चुनरी उड़-उड़ जाए।

रखशाना इस घर में जाएगी तो यह घर कितना भरा-भरा लगेगा ! कितनी गहमा-गहमी होगी ! उसका अपना रंग था। अपनी रौनक़ थी। लेकिन तब ज़ेबा कहा होगी ?

यह सोचकर ज़ेबा का दिल बैठने लगा। एकदम उसका चेहरा बुझ गया, जैसे चारों ओर काली घटा उमड आई हो। एकदम उसे आगे-पीछे अंधेरा-अंधेरा दिखाई देने लगा। और फिर उसकी आखों में से छम-छम आंसू टपकने लगे। कुछ देर के बाद वह सिसकियां भरने लगी। अकेली, अपने कमरे में बंद वह खून के आंसू रो रही थी।

"राजीव का टेलीफोन है।" बाहर ज़ाहिद उसे आवाज़ दे रहा था। ज़ेबा ने दरवाज़ा नहीं खोला। न वह अपने पलंग से उठी और न उसने जवाब दिया।

ज़ाहिद एक-दो मिनट इंतज़ार करके फिर राजीव से बातें करने लगा, 'ज़ेबा ! शायद गुसलखाने में है।" उसने राजीव को बताया।

उधर बेगम मुजीब का यह हाल था कि जब से भारत और पाकिस्तान में खुल्लमखुल्ला जंग शुरू हुई थी, आठों पहर ट्रांजिस्टर लगाए खबरें सुनती रहती। कभी दिल्ली, कभी लाहौर, कभी बी० बी० सी० लंदन। कोई कुछ कहता, कोई कुछ।

यह बात निश्चित थी कि घुसपैठियों को कश्मीर में सफलता नहीं मिली थी। इस हकीकत को पाकिस्तानी भी मानते थे। कश्मीर में मुसलमानों और हिन्दुओं ने मिलकर आक्रमणकारियों के सारे मंसूबे बेकार कर दिए थे। पाकिस्तान हमलावरों का पीछा करते-करते वे तिथवाल और हाजीपुर जैसे महत्त्वपूर्ण चौकियों पर जम गए थे।

बेगम मुजीब की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। हिन्दुस्तानी फौज की जीत सुनकर उसे अच्छा-अच्छा लगता। फिर अचानक इस खयाल से कि पाकिस्तान हार रहा है, उसके मुंह का जायका बिगड़ जाता।

कभी उसका जी चाहता कि हिन्दुस्तान जीते, अपने देश पर हमला करनेवालों के दांत खट्टे कर दे। फिर उसका मन कहता, पाकिस्तान न हारे। उस देश का अपमान न हो।

रेडियो पर, भारतीय फौजों की शानदार जीत की कहानियां सुनने

भी उसे लगता, जैसे वह खुद फ़ौज के साथ लड़ रही हो। तड़-
ोलियां चला रही हो। एक वेपनाह जोश में फ़ौज को आगे-ही-आगे
रही हो। फिर एकदम जैसे उसके हाथ-पांव ठंडे पड़ जाते। पाकि-
न पर कोई वम न गिरे, उसका अंग-अंग पुकार उठता। पाकिस्तान में
ीका वाल भी वांका न हो।

हिन्दुस्तान की जीत में उसे लगता, जैसे उसका शौहर शेख़ मुजीव
ीत रहा था। पाकिस्तान की हार में उसे महसूस होता, जैसे उसके मियां
ा भाई शेख़ शब्बीर हार रहा था।

किसकी जीत वह मांगे? किसकी हार के लिए दुआ करे? वेगम
मुजीव की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। चक्कर-चक्कर, अंधेरा-अंधेरा
उसकी आंखों के आगे छाया रहता।

३८

ज़ाहिद और राजीव डाक्टरों के जत्थे के साथ लड़ाई के मोर्चे पर
चले गए। दोनों के पास विलायत की डिग्रियां थीं। एक-आध दिन दिल्ली
में सिखलाई के वाद उन्हें पश्चिमी सीमा पर भेज दिया गया।

वेगम मुजीव देखती रह गई। न वह 'न' कर सकती थी, न वह 'हां'
कर सकती थी। उसका एक ही एक वेटा पाकिस्तान के ख़िलाफ़ जंग लड़ने
के लिए चला गया था। चाहे डॉक्टर था, वम नहीं फेंकेगा, वंदूक़ नह
चलाएगा, लेकिन उसपर तो कोई वम फेंक सकता था, उसे तो गोली क
निशाना वनाया जा सकता था। किसी मशीनगन को थोड़े ही पता हो
है कि उसकी वरसाई गोलियां किसकी छाती में लग रही हैं, किसके
को छेद रही हैं।

ज़ाहिद और राजीव एक ही मोर्चे पर तैनात थे। ज़ाहिद क
चिट्ठी में राजीव का ज़िक्र होता, राजीव की हर चिट्ठी में ज़ा
कुशल-मंगल का हाल। जैसे दो वुत एक जान हों। इकट्ठे रहते थे,

काम करते थे। इकट्ठे खाते-पीते। बेगम मुजीब को हर रोज़ चिट्ठी लिखते थे। जाने से पहले इसने उनसे वायदा लिया था। जब ज़ाहिद फारिग न होता तो राजीव चिट्ठी लिखता। जब राजीव ड्यूटी पर होता, ज़ाहिद चिट्ठी लिखता। दोनों इसे 'मेरी प्यारी अम्मीजान' कहकर अपनी चिट्ठी शुरू करते। दोनों की चिट्ठी 'आपका बेटा' कहकर खत्म होती। ज्यादा चिट्ठियां राजीव लिखता। दोनों उर्दू में अंग्रेज़ी का प्रयोग करते। ज़ाहिद कुछ कम, राजीव कुछ अधिक।

फिर एक दिन बेगम मुजीब अपने दिल को टटोलती रह गई। पाकिस्तान के किसी स्टेशन पर उसके रेडियो की सूई घूमी और उसने सुना : 'ब्रिगेडियर मुहम्मद इरफ़ान को छम्ब सैक्टर में लासानी बहादुरी दिखाने के लिए पाकिस्तानी फ़ौज का सबसे ऊंचा एज़ाज़ पेश किया गया था। ब्रिगेडियर इरफ़ान की कमान में पाकिस्तानी फ़ौजों ने दुश्मन की एक के बाद एक पांच चौकियों का सफाया किया था। दुश्मन के सैकड़ों सिपाहियों को मौत के घाट उतारा था, पूरी-की-पूरी भारतीय रेजिमेंट ने पाकिस्तान की आगे बढ़ रही फौज के सामने हथियार डाल दिए थे।' कुछ इस तरह ब्रिगेडियर इरफान की बहादुरी के कारनामे सुनाए जा रहे थे।

बेगम मुजीब की ननद इस्मत के मियां ब्रिगेडियर इरफान ने सैकड़ों भारतीय फ़ौजियों को गोलियों का निशाना बनाया था। एक ही हमले में पांच चौकियों पर कब्ज़ा कर लिया था। कई भारतीय फौजों को कैदी बना लिया था। इस सब कुछ के लिए उसे पाकिस्तान के सबसे उत्तम तमगे के साथ सम्मानित किया गया।

बेगम मुजीब की समझ में नहीं आ रहा था कि इस सब कुछ के लिए वह खुश हो या नहीं। उसके देश की हार हो रही थी। उसकी ननद का शौहर जीत रहा था। पाकिस्तानी छम्ब सैक्टर में आगे, और आगे बढ़ते हुए कश्मीर को भारत से अलग कर देना चाह रहे थे। और ब्रिगेडियर इरफान इस मोर्चे पर पाकिस्तानी फौजों की अगवाई कर रहा था। अगर कश्मीर को इस तरह भारत से काट दिया गया तो पाकिस्तानी फौजें रियासत पर कब्ज़ा कर लेंगी।

बेगम मुजीब क्या चाहती थी? 'कश्मीर भारत का अटूट अंग है,'

कई वार वह यह कहा करती थी। हमेशा उसका वेटा यह कहता था। उसकी वेटी यह कहती थी। अगर व्रिगेडियर इरफ़ान की फ़ौज भारतीय चौकियों का सफ़ाया कर सकती है तो वह भारतीय फ़ौज के अस्पतालों पर भी तो हमला कर सकती है। उन्होंने तो मस्जिदों पर भी वम वरसाए थे। और इस तरह के किसी फ़ौजी अस्पताल में उसका वेटा जाहिद था, राजीव था।

वेगम मुजीव सोचती, अगर लड़ाई भारत और पाकिस्तान के वीच न होती तो वह इरफ़ान की इस जीत पर उसे तार भेजती। खुद जाकर उसे मुवारकवाद देती। वह तो इसके वेटे की तरह था, स्वयं इसने उसका रिश्ता करवाया था। और फिर इस्मत के साथ इसका प्यार भी कितना था! इस्मत को वह ननद थोड़े ही समझती थी, वह तो जैसे इसकी वेटी थी। वेटियों की तरह तो वेगम मुजीव ने उसे पाला था, उसका विवाह किया था।

वहुत दिन नहीं गुज़रे और वही वात हुई जिसके वारे में वेगम मुजीव सोचती और उसका दिल वैठ-वैठ जाता। एक सुवह उसके नाम तार आया कि जाहिद जंग के मोर्चे पर घायल हो गया था। वेगम मुजीव ने तार पढ़ा और ज़ेवा की वांहों में ढेर हो गई। ज़ेवा की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। कोठी के वाहर सड़क पर उसने डाक्टर गोयल को वुला भेजा। टीका लगाकर डाक्टर वेगम को होश में ले आया। अव समस्या यह थी कि जाहिद के वारे में पूछताछ कहां से की जाए। होश में आकर वेगम मुजीव वार-वार ज़ेवा से पूछती, "कितनी चोट आई? कहां चोट आई?" ज़ेवा अपनी अम्मी को क्या वताती।

वेगम मुजीव को परेशानी में वुख़ार आ गया। उसका वुख़ार वढ़ने लगा। कुछ देर के वाद उसका शरीर जैसे जल रहा हो। उसका मुंह लाल सुर्ख हो गया। ज़ेवा ने फिर डाक्टर को टेलीफ़ोन किया। डाक्टर ने उसके माथे पर ठंडे पानी की पट्टियां रखने के लिए कहा। लेकिन यूं लगता, जैसे वुख़ार वेगम मुजीव के सिर पर चढ़ता जा रहा हो। कुछ देर के वाद उसने अनाप-शनाप वोलना शुरू कर दिया।

"लाहौर पर कब्ज़ा क्यों नहीं करते? शहर के वाहर जाकर क्यों

रुक गए है ?"

ज़ेबा पानी में बर्फ के टुकड़े डालकर ठंडी-ठंडी पट्टियां उसके माथे पर रखे जा रही थी।

"तुम क्यों नहीं फौज में भर्ती होती ? यहां बैठी क्या कर रही हो ? दुश्मन ने हमारे देश पर हमला कर दिया है।"

ज़ेबा हैरान-सी अपनी अम्मी के मुंह की ओर देख रही थी और एक के बाद एक, उसके माथे पर पट्टियां रखे जा रही थी।

"यह अंगूठी प्रधानमंत्री के फ़ंड में भेज दो। इस दुश्मन को सबक सिखाना होगा।" बेगम मुजीब ने अपने हाथ की उंगली में से हीरे की अंगूठी उतारकर ज़ेबा की हथेली पर रख दी।

ज़ेबा के अश्रु फूट आए। यह अंगूठी बेगम मुजीब के शौहर की निशानी थी। उसे सबसे अधिक प्यारी थी। क्या मजाल है जो कहीं आगे-पीछे हो जाए। हमेशा उसे सीने से लगाए रहती।

इतने में रुखसाना आई। वैसी-की-वैसी सजी हुई। खुशबू-खुशबू। एक नज़र तार को देखकर उसने मेरठ छावनी एक टेलीफ़ोन किया, दूसरा टेलीफ़ोन किया। शाम तक सूचना आ गई कि ज़ाहिद की दाईं टांग पर गोली लगी थी। खतरे की कोई बात नहीं थी। उसके साथी सर्जन राजीव ने चीरा देकर गोली निकाल दी थी। मरीज़ को दिल्ली या मेरठ भेजा जा सकता था, लेकिन एक-आध दिन राजीव उसे अपनी देख-रेख में रखना चाहता था।

रुखसाना का कोई 'अंकल' छावनी में बड़ा अफ़सर था। उसने उससे फ़रमाइश की कि अगर मुमकिन हो सके तो ज़ाहिद को मेरठ के अस्पताल में तब्दील कर दिया जाए।

"यह कोई मुश्किल नहीं होना चाहिए।" रुखसाना के 'अंकल' ने उसे हौसला दिलवाया।

रुखसाना ने आते ही बेगम मुजीब को संभाल लिया। बेगम मुजीब का भी जैसे रुखसाना को देखकर बुखार उतरना शुरु हो गया। रुखसाना टेलीफ़ोन कर चुकी तो बेगम मुजीब के सिरहाने बैठ गई। उसने उसके सिर को अपनी गोद में रख लिया और उससे मीठी-मीठी बातें करने लगी,

"मैं तो हमेशा कहती हूं, लड़ाई बुरी चीज़ है—चाहे छोटी हो, चाहे बड़ी। और फिर लड़ाई अपने पड़ोसियों के साथ, इस जैसी बेहूदगी कोई नहीं। और फिर पड़ोसी भी ऐसे, जैसे भारत और पाकिस्तान। एक परिवार। दो जिस्म, एक जान। मेरी अम्मी पहले ख़बरें अपने रेडियो स्टेशन की सुनती हैं। पाकिस्तान की हार की कहानी सुनकर फट लाहौर या कराची स्टेशन लगा देती हैं, यह सुनने के लिए कि वे लोग हारे नहीं हैं। यह अच्छी लड़ाई है। पाकिस्तान कहता है, हम जीत रहे हैं, हिन्दुस्तानी कहते हैं, हम जीत रहे हैं।"

"और ख़बरें सुनने वाले भी इस तरह के लोग हैं, इधर हिन्दुस्तान में भी और उधर पाकिस्तान में भी जो हाथ जोड़ते रहते हैं कि हिन्दुस्तान भी जीते, पाकिस्तान भी जीते।" ज़ेबा ने फीकी-सी हंसी हंसते हुए कहा।

"नहीं, नहीं, नहीं! दुश्मन की हार हो! दुश्मन की हार हो!!" रुख़साना से यूं बातें करते हुए बेगम मुजीब की आंख लग गई।

३९

कुछ दिनों के बाद ज़ाहिद को दिल्ली छावनी के अस्पताल में भेज दिया गया। मेरठ अस्पताल में भेजना संभव नहीं था। ज़ाहिद की टांग में ही गोली नहीं लगी थी, उसको और भी चोटें आई थीं। वास्तव में उसके निकट, कुछ दूरी पर दुश्मन का बम आकर फटा था, जिससे वह बुरी तरह निढाल हो गया था। राजीव ने दिन-रात एक करके उसे बचा लिया था। हर कोई कहता, यह तो चमत्कार है। जगह-जगह पट्टियां, जगह-जगह पलस्तर। ज़ाहिद की एक से अधिक हड्डियां टूटी थीं।

ज़ाहिद के साथ राजीव भी मोर्चे से लौट आया। वास्तव में डाक्टरी कोर के अफ़सरों को इस बात की चिन्ता थी कि ज़ाहिद का केस बिगड़ न जाए। राजीव ने शुरू से उसे संभाला था। जब तक कि वह ख़तरे से

बाहर न हो जाए, उसे राजीव की देख-रेख में रखना उचित था।

बेगम मुजीब ने अपने बेटे को देखा तो उसका दिल डूबने लगा, जैसे पट्टियों में लिपटा हुआ गुड्डा हो। शरीर का कोई ही अंग ऐसा होगा जहां उसे चोट न आई हो। क्या सिर, क्या छाती! क्या बाहें, क्या टांगें! लेकिन एक राजीव था कि उसे पूरा विश्वास था। बेगम मुजीब को वह ढाढस बंधा रहा था, "जाहिद पूरी तरह खतरे से बाहर है।" पट्टियों में लिपटा हुआ जाहिद भी, आंखों-ही-आंखों से मुसकराकर मां का हौसला बढ़ा रहा था। अम्मी के साथ जेबा थी, रुखसाना थी—दोनों हक्की-बक्की-सी जाहिद को देख रही थीं। वे तो इसका अनुमान भी लगा नहीं सकती थीं कि जाहिद इस तरह गंभीर रूप से घायल हुआ था। राजीव कितनी देर तक उन्हें समझाता रहा, चोट कहां-कहां आई थी, हर चोट की अब क्या हालत थी। टूटी हुई हड्डियां पलस्तर में थीं, और कुछ दिन में वे जुड़ जाएंगी। वक़्त जरूर लगेगा लेकिन जाहिद ठीक हो जाएगा।

बेगम मुजीब, जेबा और रुखसाना राजीव के यहां रुक गईं और बारी-बारी से, अस्पताल में जाहिद की देखभाल करने लगीं।

दो-चार दिन के बाद रुखसाना को मेरठ लौटना पड़ा। महमूद का मामला बिगड़ गया था। यूं लगता, जैसे पुलिस की हिरासत में उससे पूछताछ हुई और पुलिस ने उससे कुछ बकवा लिया था। फिर तफतीश हुई और पता चला कि उसका तो कई गंभीर अपराधों में हाथ था। यूं लगता कि उसे सजा होकर रहेगी। उसके अब्बा का रसूख धरा-का-धरा रह जाएगा। ज्यों-ज्यों मामला आगे बढ़ता, और-और गंद उछलता। महमूद और-और शिकंजे में फंसता जाता। अब उसके अब्बा ने बड़े-से-बड़े वकील को मुकदमे की पैरवी के लिए तय कर लिया लेकिन यूं लगता कि महमूद को सजा होकर रहेगी। बेगम मुजीब सुन-सुनकर हैरान होती रहती। जैसे-जैसे उसकी करतूतों के बारे में सुनती, जेबा अपने-आपको जैसे जीता हुआ महसूस करती।

फिर भी राजीव से जो दूरी उसने तय कर ली थी, उसे बनाए रखनी। उधर जब तक जाहिद ठीक न हो जाए, राजीव ऐसी कोई हरकत

करना नहीं चाहता था जिससे किसी का दिल दुखे।

फिर ज़ाहिद को मेरठ के अस्पताल में तब्दील कर दिया गया। कुछ दिन अस्पताल में रहकर वह घर आ गया। लेकिन जितने दिन बेगम मुजीब और ज़ेबा दिल्ली में राजीव के यहां रहीं, उसने जैसे बेगम मुजीब का दिल समूचा जीत लिया हो। कितना प्यारा लड़का! कितना क़ाबिल सर्जन! कितना मीठा बोलने वाला! कितनी क़ुरबानी! एक क्षण के लिए उसने कभी यह महसूस नहीं होने दिया था कि ये लोग उसपर किसी तरह का बोझ थे। जितने दिन ये वहां रहे, राजीव या तो अस्पताल में ज़ाहिद के पास होता या फिर इनकी ख़िदमत में।

ज़ेबा अजीब हारी हुई-सी महसूस करती। अजीब थी उसकी मजबूरी। राजीव को चाहती थी लेकिन अपनी विधवा मां को उससे ज्यादा प्यार करती थी। कभी राजीव के साथ अकेली न होती। कभी नजर उठाकर उसकी आंख-से-आंख न मिलाती। एक छत के नीचे वे रहे, एक मेज़ पर खाते-पीते, लेकिन उसकी मां का संयम, ज़ेबा ने एक बार भी अपने-आपको शर्मिंदा नहीं होने दिया। एक बार भी अपनी मां को दिए वचन को नहीं झुठलाया।

उधर महमूद के मुकदमे की ऐसी भयानक ख़बरें आ रही थीं। फिर भी ज़ेबा अपनी अम्मी के साथ किए इक़रार पर वैसी-की-वैसी स्थिर थी।

महमूद के अब्बा कहते, लड़ाई का शोर-शराबा ख़त्म हो जाए तो मैं अपने बेटे को छुड़ा लूंगा। रुख़साना महमूद को बुरा-भला कहती, लेकिन इसमें उसे भी कोई शक नहीं था कि उसके अब्बा अपने बेटे को रिहा नहीं करवा सकेंगे। उन लोगों के रहन-सहन, खान-पीन, शान-शौक़त में कोई फ़र्क नहीं आया था।

रुख़साना की मुहब्बत का सदका, ज़ाहिद आज और कल और, दिन-पर-दिन अच्छा होता जा रहा था। रुख़साना प्रायः उनके यहां मौजूद रहती। ज़ाहिद का दिल बहलाए रखती।

ज़ाहिद चार दिन लड़ाई के मोर्चे पर क्या रह आया था, सारा दिन पाकिस्तान से हुई जंग की कहानियां उन्हें सुनाता रहता। छम-जोड़ियां

के इलाके में कभी पाकिस्तान का पलड़ा भारी हो जाता, कभी भारत का। कैसे हिन्दुस्तानी फौज में—सिख, ईसाई, हिन्दू और मुसलमान एक-जान होकर लड़ते थे! कहीं 'हर-हर-महादेव', कहीं 'अल्लाह हू अकबर', कहीं 'सत श्री अकाल' के नारे सुनाई देते। कैसे पाकिस्तान ने पहले अपने घुसपैठिए कश्मीर में भेजे। उनका ख़याल था कि कश्मीर के लोग फूलों के हार लेकर उनका स्वागत करेंगे। घुसपैठियों ने तोड़-फोड़ की वारदातें कीं, आग लगाई, पुल बरबाद किए। लेकिन फिर एक वक़्त आया जब पाकिस्तान के लिए घुसपैठियों को बचाकर बाहर निकालना मुश्किल हो गया। छम-जोड़िया के सैक्टर में पाकिस्तान का इस तरह सिर-धड़ की बाजी लगाकर लड़ने की वजह यह भी थी कि पाकिस्तानी अपने घुसपैठियों को जम्मू और कश्मीर में से किसी तरह निकालना चाहते थे। उन्हें डर था कि उनके लोग जंगलों में, पहाड़ों में भटकते मर जाएंगे।

ज़ाहिद पर छम-जोड़िया के सैक्टर में हमला हुआ था। उस दिन बेगम मुजीब उसके पास बैठी अपने बेटे को ब्रिगेडियर इरफ़ान को मिले तमगों के बारे में बता रही थी। कमरे में ज़ेबा भी बैठी थी और रुख़साना भी।

"तो फिर आपके बेटे को चाहे इम्मन फूफी के मियां का ही फेंका बम आ लगा हो।" ज़ाहिद ने कहा और कमरे में जैसे एक स्तब्धता छा गई हो।

"क्या मतलब ?" कुछ देर बाद बेगम मुजीब पूछने लगी।

"हां न हां, यह इरफान फूफा का ही बम था।" ज़ाहिद गंभीर हो रहा था।

"तभी तो तुम्हारा बचाव हो गया है।" ज़ेबा हंसने लगी।

"इसमें हंसने की कोई बात नहीं," रुख़साना का चेहरा दहकने लगा, "हिन्दुस्तान के मुसलमानों को फ़ैसला करना है—कौन हमारा दुश्मन है, कौन हमारा दोस्त है ?"

"पाकिस्तान की हुकूमत हमारी दुश्मन है। पाकिस्तान के लोग हमारे दोस्त हैं।" ज़ेबा ने गढ़ा-गढ़ाया जवाब दिया।

"इरफान फूफा का बम मेरी जान भी ले सकता था, जैसे उसने मेरे

और कई साथियों को मारा।"

"जो बम अम्बाला पर फेंके जा सकते हैं, वे मेरठ पर भी गिर सकते हैं।" रुख़साना आग-बबूला हो रही थी।

"हमारी पीढ़ी पर ख़ुदा की मार है।" बेगम मुजीब हाथ मलती हुई उठ खड़ी हुई और कमरे में से निकल गई।

"बेशक भाई-बहन हैं, पड़ोसी हैं, लेकिन लड़ाई में एक-दूसरे के दुश्मन हैं।" रुख़साना कह रही थी।

"जब सुलह हो जाएगी, फिर बहन-भाई बन जाएंगे।" ज़ेबा के मुंह का मज़ा ज़हर जैसा कड़वा हो रहा था।

उधर अपने कमरे में कार्नस पर रखी इरफ़ान की तसवीर के सामने खड़ी बेगम मुजीब उससे पूछ रही थी, "इरफान! तुमने ज़ाहिद को निशाना बनाकर, ज़ाहिद के साथियों को बम से उड़ाकर, ज़ाहिद के देश पर हमला करके तमग़ा ले लिया है—क्या यह सच है इरफ़ान? क्या यह सच है?"

४०

हर कोई कहता था कि उसे सज़ा हो जाएगी, लेकिन महमूद के अब्बा को पूरा भरोसा था कि वह रसूख से, अपने पैसे से, बेटे को छुड़ा लेंगे। जब कोई इसका ज़िक्र करता, बेगम मुजीब को जैसे अच्छा-अच्छा लगता। मन-ही-मन वह महमूद को ज़ेबा के साथ जोड़े हुए थी। उधर ज़ेबा थी कि जब भी कोई महमूद का नाम लेता, उसके दिल की कोई धड़कन जैसे गुम हो जाती।

ज़ाहिद ठीक हो रहा था। उसने उठना-बैठना शुरू कर दिया था। घर में एक कमरे से दूसरे कमरे तक चला जाता। दिन में, बाहर धूप में जा बैठता। बेगम मुजीब सोचती, ज़ाहिद एक बार ठीक हो जाए तो रुखसाना के साथ वह उसका निकाह कर देगी। उसे तो बस बाक़ायदा

पैग़ाम ही देना था। रुख़साना के घरवाले इसके इंतज़ार में थे।

ज़ेबा के बारे में, अलबत्ता कुछ नहीं कहा जा सकता था। महमूद के घरवालों की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। उनका लड़का अभी हिरासत में था। अभी मुक़दमा चल रहा था। अभी उनका वकील ज़ोर लगा रहा था।

अजीब-अजीब कहानियां लोग गढ़ते थे। बेगम मुजीब सुनतीं और उनका दिल बैठ-बैठ जाता। फिर वह सोचतीं, लोगों को बेकार राई का पहाड़ बनाने की आदत होती है। और फिर हमारी पुलिस भी तो सच्ची-झूठी बातें जोड़ती रहती है। पिछली बार भी तो महमूद के साथ उन्होंने यू ही किया था।

इधर जब से ज़ाहिद और राजीव, लड़ाई के मोर्चे से लौटे थे, उनकी बातें बेगम मुजीब के दिमाग़ की जैसे नित्य नई खिड़कियां खोल रही हों। राजीव हर सप्ताह ज़ाहिद को देखने के लिए आता था।

राजीव और ज़ाहिद उसे बताते कि पाकिस्तान के बच्चे-बच्चे की ज़बान पर आजकल यह नारा है -

हंसके लिया है पाकिस्तान, लड़के लेंगे हिन्दुस्तान।।"

"यह तो मेरा भाई महमूद भी हमें सुनाया करता है," रुख़साना कहने लगी। "महमूद ग़ज़नवी ने हिन्दुस्तान को सत्रह बार लूटा, शहाबुद्दीन ग़ोरी ने दस बार हमला किया और फिर कहीं भारत पर इस्लामी राज क़ायम कर सका; बाबर के पांचवें हमले के बाद यहां मुग़ल-राज की नींव डाली गई; अहमद शाह अब्दाली आठ बार यहां लूट-मार करके लौट गया। पाकिस्तान भी किसी-न-किसी दिन क़ामयाब हो जाएगा।"

"बीमार आदमी है।" ज़ाहिद ने नाक चढ़ाते हुए कहा।

"ये लोग नहीं जानते कि आज का भारत वह पुराना भारत नहीं।" ज़ेबा कह रही थी।

"आज का भारत हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई सबका भारत है।" ज़ाहिद समझा रहा था, "पाकिस्तान के लोग बेशक हमारे 'हम-मज़हब' हैं, वे हमारे 'हम-वतन' नहीं। मज़हब की अपनी जगह है, वतन की

अपनी। मजहब की मुहब्बत एक चीज़ है, वतन का प्यार एक और। कश्मीर में सबसे पहले घुसपैठियों की ख़बर सबरोट के एक मुसलमान गूजर ने दी। जोड़िया के एक मुसलमान आबादी वाले गांव ने घुसपैठियों को मुंह नहीं लगाया, गुस्से में आकर उन्होंने जुम्मां के रोज़ मस्जिद में नमाज पढ़ रहे लोगों पर बम फेंककर इकावन नमाज़ियों को भून डाला। चीमा के मोर्चे पर चौथी ग्रेनेडियर का हवलदार अब्दुल हमीद बजका वाली जीप में जा रहा था कि उसने देखा कि कोई डेढ़ सौ गज के फ़ासले पर पाकिस्तान का एक पैटन टैंक आ रहा है। एक आंख झपकने की देर में वह एक टीले के पीछे जा छिपा और उसने इस्पात के बढ़ते हुए दैत्य पर गोलियों की वर्षा कर दी। उसके देखते-देखते पैटन टैंक में से शोले निकलने शुरू हो गए। इतने में एक और पैटन टैंक आगे बढ़ा। हमीद ने उसे भी निशाना बनाया। फिर दो और टैंक सामने आए, हमीद ने बिना किसी खौफ़ के, उनमें से एक को नकारा कर दिया। लेकिन चौथे पाकिस्तानी टैंक ने हमीद को दबोच लिया। अल्लाह का नाम उसके होंठों पर था, और हवलदार अब्दुल हमीद अपने देश के लिए जान पर खेल गया। हमीद को बहादुरी का सबसे बड़ा मान, परम-वीर चक्र मरने के बाद दिया गया है।"

"लड़ाई से कई महीने पहले पाकिस्तान के विदेशी मामलों के वज़ीर भुट्टो ने खुल्लम-खुल्ला कहा था कि पाकिस्तान ने कश्मीर को हथियाने की योजना पूरी कर ली है।" जेबा याद दिला रही थी।

"और यह स्कीम हमारे भाई महमूद के मुताबिक कुछ इस तरह थी," रुखसाना कहने लगी, "पाकिस्तानी घुसपैठिए पहले श्रीनगर के हवाई अड्डे और रेडियो स्टेशन पर कब्ज़ा करेंगे। फिर हुकूमत की बाग-डोर संभाल ली जाएगी। चौदह अगस्त, १९६५ का आज़ादी का दिन पाकिस्तानी जम्मू-कश्मीर की राजधानी श्रीनगर में मनाएंगे। अगर इसमें क़ामयाबी न हुई तो पाकिस्तानी फ़ौजें छम्ब-जोड़ियां सैक्टर में अंतराष्ट्रीय सरहद पार करके अखनूर और जम्मू पर कब्ज़ा कर लेंगी। और फिर बाक़ी रियासत पर। और अगर यह भी योजना पूरी न हुई तो पाकिस्तानी फ़ौजें पैटन टैंकों और सेबर-जैट हवाई जहाजों की मदद से पंजाब पर हमला

कर देंगी। सात सितंबर को ब्यास नदी पर धरनेवी सड़क के पुल पर कब्जा किया जाएगा। आठ सितंबर को लुधियाना जीता जाएगा। दस सितंबर को फील्ड मार्शल अय्यूब लालकिले में अपनी जीत का जश्न मनाएंगे।"

ये सब सुन-सुनकर बेगम मुजीब के पसीने छूट रहे थे। यूं भी कभी हुआ है! अंधेरगर्दी। यूं भी कभी पड़ोसी, पड़ोसियों के साथ करते हैं!

"जैसे इधर लोगों ने कांच की चूड़ियां पहन रखी हों।" जैबा ने दांत पीसकर कहा।

"यह तो शाबाश है हिन्दुस्तान के मुसलमानों पर कि एक-जबान होकर उन्होंने अपनी हुकूमत का साथ दिया," जाहिद ने कहा, "अजमेर-शरीफ की दरगाह से फरमान हुआ कि हजरत ख्वाजा गरीबनवाज का हर फिदायी जरूरत पड़ने पर अपने देश की हिफाजत के लिए अपने-आपको कुर्बान कर दे। जमात-उल-उलमाये हिन्द के जनरल सेक्रेटरी मौलाना असद मदनी ने प्रधानमंत्री को तार देकर यकीन दिलाया कि भारत के मुसलमान पाकिस्तान के नापाक इरादों को कामयाब नहीं होने देंगे। जमात कश्मीर को भारत का अटूट अंग समझती है और इसके लिए वह हर कुर्बानी देने को तैयार है। दिल्ली के शाही इमाम ने पाकिस्तानी हमले का मुकाबला करने के लिए सरकार को पूरी मदद की पेशकश की।"

उस शाम, मक्का-शरीफ में हिन्दुस्तानी मजलिस के सदर-अल-हज मौलाना मुहम्मद करमअली ने भारतीय मुसलमानों से अपील की कि वे चौबीस सितंबर को जुम्मा की नमाज के बाद अल्लाह का शुक्र मनाएं कि वे एक बड़े इम्तिहान में पूरे उतरे हैं। पाकिस्तान के भारत पर हमले के दौरान वे अपने देश के प्रति पूरे-पूरे वफादार रहे थे।

यह खबर सुन रही बेगम मुजीब के सीने पर जैसे कोई तीर आ लगा हो। क्या वह भी अपने देश के प्रति पूरी वफादार थी? क्या वह भी रवादारी और हिन्दू-मुस्लिम-एकता की शाहराह पर चल रही थी जिस पर सारी उम्र उसका शौहर चलता रहा था? बेगम मुजीब के भीतर जैसे एक तूफान उमड़ आया हो।

बेगम मुजीब अपने कमरे में बैठी इन विचारों में डूबी जा रही थी

कि उसे लगा, जैसे राजीव आया हो। हां, यह उसीकी आवाज़ थी। पिछले कई दिनों से वह ज़ाहिद को देखने आया करता था। रात-भर ठहरकर अगले दिन लौट जाता। बेगम मुजीब को चाहिए था कि उसके स्वागत के लिए गोल कमरे में जाए। लेकिन उसके पांव में जैसे सकत न हो। अपने कमरे में पलंग पर पड़े हुए, उसे लगता जैसे किसी अंधेरे कुएं में वह धंसती चली जा रही हो। चक्कर-चक्कर, अंधेरा-अंधेरा। उसका दिल बैठता जा रहा था।

यही नहीं, अगले दिन हमेशा की तरह राजीव शाम की गाड़ी से लौट गया। बेगम मुजीब को बेशक़ याद था, लेकिन उसके चलने से पहले वह घर लौटकर नहीं आई। किसीसे, बाहर मिलने के लिए गई हुई थी, जहां उसे देर हो गई।

रिक्शा से उतरकर, जल्दी-जल्दी वह गोल कमरे की तरफ़ बढ़ी। पर्दा हटाकर उसने देखा कि सामने सोफे पर ज़ाहिद और रुख़साना, रुख़साना और ज़ाहिद···। और फिर आंख झपकने की देरी में पर्दा वैसे-का-वैसा खिसककर अपनी जगह पर आ गया। बेगम मुजीब अपने कमरे की ओर चल दी।

ज़ेबा के कमरे के पास से गुज़रते हुए उसे लगा, जैसे अन्दर से सिसकियों की आवाज़ आ रही हो। हां-हां, ये सिसकियां ही तो थीं। ज़ेबा अपने पलंग पर औंधी पड़ी लहू के आंसू रो रही थी।

बेगम मुजीब उसके कमरे में गई। अम्मी को देखकर ज़ेबा की चीख़ निकल गई। "तुझे हो क्या रहा है ?" मां ने पूछा। एक बार, दो बार, और फिर ज़ेबा ने अपने सामने पड़ा हुआ लिफ़ाफ़ा उठाकर उसे पकड़ा दिया।

राजीव की चिट्ठी थी। 'ज़ेबा ! तेरी अम्मी की अगर यही शर्त है तो मैं मुसलमान हो जाता हूं।' बेगम मुजीब का मुंह खुले-का-खुला रह गया।

उसके कलेजे में एक अजीब-सी कसक थी। कितनी देर अपने कमरे में वह पसीना-पसीना-सी हुई पड़ी रही। उससे अपनी बेटी का दुःख और नहीं देखा जाता था। महमूद का कुछ पता नहीं था। राजीव अजनबियों की

तरह आता था, अजनबियों की तरह जाहिद से मिलकर चला जाता था। आज कितने दिन हो गए थे! आज की शाम भी ऐसा ही हुआ था।

साझ ढल रही थी। बेगम मुजीब चादर उठाकर अपने शौहर के मजार की ओर चल दी। उसकी कब्र के पास पहुंची कि वह बेहाल होकर उसके ऊपर गिर पड़ी। छल-छल आसू बहाती हुई बेगम मुजीब अपने बच्चों के अब्बा से कह रही थी, "मेरे सिरताज! मेरे सिरताज!! मैं क्या करू? मैं कहां जाऊ?"

